प्रियंवद

छुट्टी के दिन का कोरस

छुट्टी के दिन का कोरस

'छुट्टी के दिन का कोरस' कथाकार और इतिहासवेत्ता प्रियंवद का तीसरा उपन्यास है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रियंवद अपने विशिष्ट सरोकारों और अनूठे शिल्प के लिए सुपरिचित हैं। वे व्यतीत व वर्तमान की सरल-वक्र रेखाओं, भास्वर-धूसर रंगों, दृष्टिगत-दुर्लभ वास्तविकताओं तथा स्वीकृत-विवादित निष्पत्तियों के रचनात्मक कायाकल्प से जिन कथा बिम्बों को मूर्तिमान करते हैं वे पाठक को अवान्तर/समान्तर दुनिया में ले जाते हैं। 'छुट्टी के दिन का कोरस' विवान (विन्सेंट डगलस) के विचित्र जीवन का महाकाव्यात्मक आख्यान है। यह गाथा 1947 की ऐतिहासिक तारीख़ के दोनों ओर फैली है। विवान स्मृतियों का सहचर है। अजीब-सी दिनचर्या में छुट्टी का दिन 'मायावी वास्तविकताओं और स्मृतियों में बसे निष्कवच यथार्थ का दिन होता था।' इंग्लैंड के पुराने ज़मींदार ख़ानदान का वारिस विन्सेंट डगलस भारत में जिस अप्रत्याशित जीवन से साक्षात्कार करता है, उसका अत्यन्त रोचक वर्णन प्रियंवद ने किया है। इतिहास में ठहर गए साक्ष्यों/प्रसंगों/व्यक्तियों/विमर्शों की अन्तरंग उपस्थिति से 'छुट्टी के दिन का कोरस' अविस्मरणीय बन गया है। एक भिन्न अर्थ में यह उपन्यास सम्बन्धों, आसक्तियों, निर्वेदजन्य स्थितियों और जीवन के अगाध का कोरस भी है। ग़ालिब फिर फिर उपन्यास में आते हैं और नयी व्यंजना पैदा करते हैं। दुःस्वप्नों से उबरकर 'आसमान के कोने से सुबह की पहली किरन' के उतरने तक रचना की ऊर्जा का विस्तार है।

'छुट्टी के दिन का कोरस' संश्लिष्ट प्रकृति का बेजोड़ उपन्यास है, ऐसा पाठक अनुभव करेंगे। हिन्दी के औपन्यासिक परिदृश्य में इसकी रचनात्मक आभा अलग से दिखेगी, ऐसा विश्वास है।

—सुशील सिद्धार्थ

ISBN : 978-81-263-1810-0

ज्ञान गरिमा के
65 वर्ष
भारतीय ज्ञानपीठ

छुट्टी के दिन का कोरस

(उपन्यास)

प्रकाशक / लेखक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फ़िल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

छुट्टी के दिन का कोरस

प्रियंवद

भारतीय ज्ञानपीठ

‘YES’

'मैं जल और थल में विचरता रहा
मुझसे किसी ने नहीं पूछा
तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, कहाँ जाना है?
और आज
जब मैं जल और थल में एकाकार हो रहा हूँ
मुझसे कोई नहीं पूछता
तुम कौन थे, कहाँ से आये थे और अब कहाँ जा रहे हो?'

दो चाँद देखने, थोड़ा खाँसने और कोयला तोड़ने की आवाज़ सुनने के बाद विवान डगलस की नींद खुल गयी। यह चैतन्य जागृति नहीं थी। यह धुँधलायी-सी जागृति थी जिसमें विवान बादलों की तरह तैर रहा था। घुटने मोड़कर छाती से चिपकाते हुए, उसे माँ की, परित्यक्त ईश्वर की, फिर ग़ालिब की याद आयी। विवान देर तक ऐसे ही पड़ा रहा। जागृति में आने के बाद भी स्वप्न अभी जीवित था। दोनों चाँद उसे साफ़ दिख रहे थे। एक चाँद वैसा ही था जैसा रातों को आकाश में होता है। दूसरा तेज़ी से उससे दूर होता हुआ भाग रहा था। विवान उसके साथ चलने की कोशिश में कुछ दूर भागा भी, फिर चाँद को उसने जाने दिया था।

कुछ देर निष्क्रिय रहकर विवान ने स्वप्न के बुझने का इन्तज़ार किया, फिर उठ गया। सुबह होने से थोड़ा पहले, चिड़ियों की आवाज़ों, अज़ान और ठंडी हवाओं से भी पहले, विवान की साँस फूलती थी। साँस नली की इस सूजन से विवान पहचान लेता था कि सुबह होनेवाली है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता था कि साँस नली की सूजन थोड़ा पहले शुरू हो जाती थी। तब विवान सुबह होने से पहले, सुबह होने के विश्वास में उठ जाता था। सुबह को न देखकर वह देर तक हैरानी से बाहर ताकता रहता। घड़ी की सुई से, तारों के लुप्त होने से, रोशनी की पताका से अधिक, सुबह होने का विश्वास, उसे अपनी साँस नली के सूजने और उससे जन्म लेनेवाली खाँसी के शुरू होने पर था। उसकी खाँसी पर इतना ही विश्वास, नीचे रहनेवाले लावारिस मय्यत कमेटी के मुंशी को भी था। विवान की खाँसी की तेज़ आवाज़ सुनते ही मुंशी अपनी कोयले की अँगीठी सुलगाने के लिए कोयले तोड़ना शुरू कर देता था। अगर वह विवान के खाँसने से पहले कभी उठ भी जाता, तो हाथ में हथौड़ा लिए चुपचाप बैठा कोयलों को देखता रहता। जैसे ही विवान डगलस की खाँसी शुरू होती, वह हथौड़े को कोयले पर पटकने लगता। कई बार विवान ने उसे सुझाव दिया कि वह कोयले रात को भी तोड़कर रख सकता है। उसने तब हैरानी से विवान को देखते हुए पूछा था कि विवान की खाँसी की आवाज़ सुनने के बाद उसके पास करने के लिए फिर क्या होगा? उसे शक था कि हो सकता है तब वह सुबह को पहचानने में और इसी कारण से, अपने सालों पुराने तरीके में कोई ग़लती कर दे। इस तरह साँस नली के सूजने से, खाँसी आने से, मुंशी के कोयले तोड़ने की आवाज़ से, दो चाँदवाले स्वप्न के पूरी तरह तिरोहित होने से, कुछ

स्मृतियों के स्पन्दन से होता हुआ, विवान डगलस, धीरे-धीरे अपनी चैतन्य जागृति में पूरी तरह लौटकर आ गया।

विवान डगलस ने सीने से सटे ओर मुड़े हुए अपने दोनों घुटने खींचकर सीधे किये। घुटनों ने सीधा होते समय एक महीन आवाज़ की। यह बहुत धीमी आवाज़ थी, वैसी ही, जैसे पेड़ पर बैठी नन्हीं चिड़ियाँ करती थीं। घुटनों से निकलती चिड़ियों की इस आवाज़ को विवान ने जब पहली बार सुना था तब वह बुरी तरह चौंका था। उसे लगा था कि उसके बिस्तर में ही कोई चिड़िया रात भर दुबकी बैठी रही है। विवान ने उसे ढूँढ़ा, तो वह बिस्तर से नहीं, घुटनों में मिली थी। कई बार विवान को लगता था कि उसके घुटनों की यह आवाज़ बदलती रहती है, उसी तरह, जैसे विवान के स्वप्न बदलते हैं, साँस नली की सूजन का क्षेत्र बदलता है, मुंशी के कोयला तोड़ने की गति बदलती है। विवान तब इस बदली हुई आवाज़ को, पेड़ पर बैठी चिड़िया के अलावा, किसी दूसरी चिड़िया की आवाज़ से पहचानने की कोशिश करता। शायद खिड़की पर आनेवाली गौरैया, या नीले पंखवाली चिड़िया या फिर लाल गले की बुलबुल से। जब घुटनों की यह आवाज़ बदलती, तो फिर इस नई चिड़िया की आवाज़ ही कई दिनों तक आती। विवान तब समझ लेता कि उसके घुटने अब और खराब हो गये हैं, क्योंकि तब आवाज़ के साथ घुटनों का दर्द भी बदल जाता था।

विवान डगलस पलँग से उतरा। दो बार बदन को झटका देने के बाद धीरे-धीरे चलता हुआ वह खिड़की पर आया। बिना सलाखों और बिना जालीवाली बड़ी खिड़की से नीचे झाँका उसने। नीचे मुंशी दिखा। अँगीठी में टूटे हुए कोयले डालने के बाद झुका हुआ, वह अँगीठी में फूँक मार रहा था। विवान डगलस ने सर उठाकर सामने देखा। अभी सुबह की रोशनी नहीं हुई थी। सामने का आकाश अभी काला था। यह कालिख रात की अपनी कालिख से अलग थी। यह दिन भर धधकती हुई छोटी-छोटी चिमनियों से बरसती हुई, महीन रेशोंवाली डरावनी कालिख थी जो छतों के बीच फँसे आसमान के टुकड़ों पर बेतरतीबी से पसरी रहती थी। यह चिमनियों से निकलकर सीधे ऊपर नहीं जाती थी, बल्कि निकलने के बाद, थोड़ा तिरछी होकर, चील की तरह तैरती हुई, मकानों की छोटी-छोटी छतों के बीच के आसमानों पर पसरती चली जाती थी। साँस की सूजन भी ऐसे ही तंग नली में पसरती होगी, विवान ने सोचा या फिर घुटने में दर्द या फिर जागृति के अन्दर माँ, परित्यक्त ईश्वर और ग़ालिब भी।

अँगीठी का धुँआ नीचे से ऊपर आने लगा। ऊपर उठते हुए, खिड़की से थोड़ा दूर हटकर वह धीरे-धीरे ऊपर की कालिख में मिलने लगा। कुछ देर में उनकी सन्धि-रेखा खत्म हो गयी। विवान डगलस ने सामने सड़क पर देखा। हैनीमैन की

मूर्ति के ऊपर का बल्ब अभी जल रहा था। उसके नीचे सड़क को बाँटनेवाले चबूतरे के फर्श पर काले कपड़ों में लिपटी हुई, तस्बीह के दानों पर उँगलियाँ फेरती औरत बैठी थी। उसके साथ आनेवाली दोनों लड़कियाँ उस हल्के अँधेरे में उछलती हुई रस्सियाँ कूद रहीं थीं। अभी जेल की विशालकाय दीवार के किनारे-किनारे, दीवार से चिपककर बैठे कैदियों से मिलनेवाले, घर से बनाकर लाया हुआ खाना और दूसरी ज़रूरत की चीज़ें लेकर जमा होना शुरू नहीं हुए थे। अभी बन्द मिल के दरवाज़े पर लगे हड़तालियों के तम्बू के स्पीकर पर मजदूर क्रान्ति और परिवर्तन लाने के लिए खूनी संघर्ष के गीत बजने शुरू नहीं हुए थे। अभी ओस गिर रही थी, अभी रातरानी महक रही थी, अभी सुबह होने में देर थी।

अँगीठी से उठनेवाला धुँआ अब सफेद रंग का हो गया था। विवान डगलस खिड़की से हट गया। थोड़ी-सी खाँसी सीने से ऊपर तक उठी। यह विवान डगलस की गर्म चाय का समय था। चाय से साँस नली को सेंक मिलती थी। सूजन कम होती थी। विवान कमरे से जुड़ी हुई रसोई की तरफ गया। रसोई के दरवाज़े के पहले दीवार पर लगे छोटे-से शीशे में उसने अपना चेहरा देखा। उसमें उसने तिहत्तर साल के विवान डगलस को देखा। इस शीशे पर उसे विश्वास नहीं था। उसने दीवार में बनी लकड़ी की दराज से एक लेन्स निकाला। इसमें विवान डगलस ने खुद को देखा। यह लेन्स उसकी खाल की एक-एक सलवट को, एक-एक रन्ध्र को, सौ गुना बड़ा करके दिखाता था। विवान ने उसमें अपनी काली तलीवाले गड्ढों की शक्ल और इसकी सलवटों में फँसे, मुरझाए हुए सफेद रोओंवाली खाल को देखा। उस पर जमे मैल की चिकनाहट को देखा। शीशे के विवान और लेन्स के विवान डगलस में फ़र्क था। एक ही खाल में, एक ही समय में, दो विवान डगलस थे। विवान जब चाहे, जिस विवान डगलस को चाहे, देख सकता था। विवान ने लेन्स वापस दराज में रख दिया।

विवान रसोई में आया। एल्युमिनियम की पुरानी केतली रखी थी, जैसी चाय की दुकानों पर होती है। उसकी पेंदी पर काला रंग लगा था। हत्थे पर कपड़ा लिपटा था। उसकी उठी नली का आख़िरी कोना चिटका हुआ था। चाय पलटने पर एक बूँद अलग से नीचे गिरती थी जो कई बूँदें हो जाने पर एक घेरा बना लेती थीं। उस घेरे में कुछ देर भाप उठती फिर उसकी पपड़ी सूखकर कत्थई रंग का धब्बा बन जाती। पत्थर पर ऐसे छोटे-छोटे कई धब्बे थे। विवान ने आग जलायी। आग पर चाय का पानी चढ़ाया। पानी में दूध, पत्ती और शक्कर डाली। उस छोटी-सी रसोई में आग पर काँपती हुई आग की नीली-पीली लौ रोशनी पैदा करने लगी। रसोई में भी एक छोटी खिड़की थी। इसमें सलाखें थीं। इस खिड़की से भी विवान ने बाहर देखा। ये पतझड़ के दिन थे जो इस खिड़की से ज़्यादा साफ़ दिखते थे। इस तरफ सुबह की

पहली रोशनी पेड़ों की नंगी शाखों को पकड़कर नीचे उतरने लगी थी। सड़क पर, छतों पर, टीन की चादरों पर, मुँडेरों पर, रात भर के टूटे हुए पीले पत्तों की तह बिछी थी। नीचे भैंस के चट्टे पर दूध लेनेवालों ने कतार लगा ली थी। तीन लड़के अलग-अलग भैसों को दूध देने के लिए तैयार कर रहे थे। विवान ने खिड़की से सर हटा लिया। अब सामने देखा उसने।

सामने विवान डगलस का कमरा दिख रहा था। इस कमरे में वह स्वप्न के, जागृति के, स्मृति के साथ रहता था। कमरे में बर्माटीक का नक्काशीदार, गोल पैरोंवाला पलँग पड़ा था। उसी लकड़ी की एक बड़ी अलमारी थी जिसके दोनों पल्ले बन्द होने पर, खुले बालोंवाली उदास लड़की का चेहरा पूरा हो जाता था। दराज़ों वाली एक छोटी मेज थी जिसके नीचे पैर फैलाने की जगह थी। एक कुर्सी थी जिसका रेक्सीन दो जगह से फटा था। उसके अन्दर का भरा हुआ फ़ोम गलने लगा था। दीवार पर दो साल पुराना कैलेंडर टँगा था। बड़ी खिड़की के ऊपर आधे गोले की शक्लवाला रंगीन काँच लगा था। खिड़की के नीचे की दीवार के हिस्से में दो खाने बने थे। इनमें पुराने अख़बार थे, खाली शीशी थी, कपड़े थे। रंगीन काँच के ऊपर बड़ा रोशनदान था। उसे खींचकर खोलनेवाली बँधी रस्सी टूट गयी थी। उसे दुबारा बाँधने के लिए सीढ़ी की ज़रूरत थी। विवान डगलस के पास सीढ़ी नहीं थी। विवान डगलस ने रोशनदान को बन्द रहने दिया था। वह पिछले सत्रह सालों से बन्द था। छत को रोकनेवाला लोहे का मोटा और लम्बा गर्डर उस छत को दो हिस्सों में बाँटता था। एक हिस्से में छत से लोहे के चार छोटे कड़े लटके थे। छत के दूसरे हिस्से में सीलन से उखड़ी हुई पपड़ियाँ थीं जो तेज़ हवाओं से टूटकर कमरे के फर्श पर बिखर जाती थीं। विवान का पलँग उस गर्डर के ठीक नीचे था। गर्डर पलँग को भी दो हिस्सों में बाँट देता था। पलँग का एक सिरा कड़ोंवाली छत की तरफ था और दूसरा सिरा पपड़ियोंवाली छत की तरफ था। कमरे में धूप भी दो हिस्सों में आती थी। कड़ेवाला हिस्सा हमेशा अँधेरे में रहता था। पपड़ियोंवाले हिस्से में, बदलते मौसमों के साथ-साथ, धूप भी बदलती हुई रहती थी। पलँग, कमरा, छत और धूप को पिछले सत्रह सालों से, इसी तरह दो हिस्सों में बाँटकर जीते हुए, विवान डगलस भी, नामालूम तरीके से दो हिस्सों में बँट गया था। विवान जब कड़ेवाले हिस्से की तरफ सर रखकर लेटता था, तो वह अपने वर्तमान से, घुटने की चिड़ियों से, लेन्स में दिखनेवाली खाल से अलग होकर अपनी अनश्वर स्मृतियों के आलोकित जगत में प्रवेश कर जाता था। जब छत की पपड़ी और धूपवाले हिस्से की तरफ सर रखकर लेटता था, तो लावारिस मय्यत कमेटी के दफ़्तर की नौकरी, वास्तविकताओं से बड़ी परछाइयों और लाखों मनुष्यों की आकृतियों, छवियों, गन्ध और जिजीविषाओं के कोलाहल भरे वर्तमान जगत में प्रवेश कर जाता था। विवान डगलस जब चाहता

था अपने जीवन में इधर-से-उधर जा सकता था। छुट्टी के दिनों में अक्सर वह दिन में कई बार, पलँग पर लेटकर, अपना सर इधर-से-उधर करता हुआ, कहीं न पहुँचानेवाली यात्राएँ करता रहता था।

चाय का पानी खौलने लगा। विवान डगलस ने उसे लोहे की जाली से छानकर एक बड़े मग में पलट दिया। मग को हथेलियों में दबाकर विवान ने फिर छोटी खिड़की से बाहर देखा। भैंसों के थनों से दूध की धार बर्तन में गिराते हुए लड़के आपस में बातें कर रहे थे। विवान डगलस ने एक बार हवाओं में उड़ती हुई सूखी पीली पत्तियों को देखा फिर कमरे में आ गया। मग लेकर विवान डगलस कमरे की बड़ी खिड़की की चौखट से चिपककर खड़ा हो गया। हैनीमैन की मूर्ति के ऊपर लगे पुराने बल्ब की सतह पर, रोशनी के चकत्ते तैरने शुरू हो गये थे। बेडौल शक्लों में वे धीरे-धीरे सफेद फफूँद की तरह फैल रहे थे। उनकी ज़द में सबसे पहले धुएँ और कालिख से सनी पत्थरों की दैत्याकार ऊँची चिमनियाँ आयीं, फिर कुछ पुरानी इमारतें, फिर वे चकत्ते बूँदों की तरह बेतरतीबी से गिरने लगे।

विवान डगलस के सामने जेल की खुरदरी, ऊँची दीवारें थीं। कुछ दिनों पहले जेल की दीवारें और ऊँची कर दी गयी थीं। उन पर तार लगा दिये गये थे। कोनों के बुर्ज पर तेज़ रोशनियाँ लगायी गयी थीं। विवान ने इसी जेल में पन्द्रह साल बिताये थे। जब वह जेल से छूटा था तो उसके पास जाने की कोई जगह नहीं थी। जेल में विवान डगलस की बनायी हुई टोकरियों के बिकने का हिसाब रखनेवाले, उसके पैसे देनेवाले दीवान ने, उसे इस नौकरी के बारे में बताया था। सत्रह साल पहले जेल से बाहर निकलने के बाद, एक शाम विवान ने लावारिस मय्यत कमेटी के इसी दफ्तर की इमारत में पाँव रखा था। उसका इंटरव्यू दो आदमियों ने लिया था। उन्होंने विवान से सिर्फ़ लाशों के बारे में पूछा था। क्या वह लावारिस लाशों से जुड़ी सारी कानूनी कार्यवाहियों को पूरा कर सकता है? क्या ज़रूरत पड़ने पर थाने और कचहरी जा सकता है? पोस्टमार्टम के बाद रिक्शे पर आलू के बोरों या बँधे हुए, किकियाते सुअरों की तरह लटकी लाशों को उतरवा सकता है? दंगों में, कुहासेवाली सर्दियों में या लू की लपेट में वह ज़्यादा काम से घबराएगा तो नहीं? वह कभी किसी लावारिस लाश को लेने से इन्कार तो नहीं करेगा? क्या वह कम पैसों में भी इसे एक नेक काम समझकर, ईमान और इज़्ज़त की नौकरी समझकर करने को तैयार है? कहीं वह इसे बीच में तो नहीं छोड़ेगा? क्या उसके घरवाले, नाते-रिश्तेदार, उसकी इस नौकरी से खुश होंगे? क्या वह कभी मरे हुए चूहे के साथ रहा है? क्या उसने ठंड से सूजकर फटी नसोंवाली या भूख से सिकुड़कर चटकी हुई हड्डियोंवाली लाश को छुआ है? वह लाशों के प्रेत बनने पर यकीन तो नहीं करता?

हाल के कोने में लगे बल्ब की रोशनी में, मेज पर झुके हुए वे दोनों आदमी

1858 में लिखी हुई किसी किताब से पढ़ते हुए ये सब सवाल पूछ रहे थे। उन दोनों के सामने पड़ी मजबूत हत्थोंवाली, पुरानी कुर्सी पर बैठे हुए, दीवार पर रेंगती छिपकली को देखते हुए विवान डगलस ने उनके हर सवाल पर चुपचाप सर हिला दिया था। उसने बहुत-से सवाल सुने भी नहीं या शायद सब सुने थे।

विवान को नौकरी मिल गयी थी। दफ्तर के ऊपर का यह कमरा, जिसमें विवान रहता था, कमेटी के सदर का था। उसने विवान को किराये पर रहने के लिए कमरा दे दिया था। कमरे को देने से पहले, उसने, हुक्का पीते हुए विवान को बताया था कि उसका भतीजा, जो कुछ दिन पहले ही अपनी ससुराल गया था, वहाँ एक अनजान नदी में उतरने की ग़लती कर बैठा। एक घड़ियाल उसे खींच ले गया। विवान को यह बताते हुए, कि अनजान नदी में उतरने की ग़लती वह कभी न करे, उसने विवान को यह भी बताया कि उसकी बेवा की और बच्चों की ज़िम्मेदारी अब उसी की है और इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के लिए उसने यह इन्तज़ाम कर दिया है कि नौकरी में उसके भतीजे की हाज़िरी लगती रहे। उसकी लाश नहीं मिली इसलिए उसे अभी मरा नहीं माना जा सकता है। इस नौकरी में एवजी आदमी का प्रावधान था। विवान डगलस उसके भतीजे के बदले कानूनी रूप से उस काम को कर सकता था। तनख्वाह उसके भतीजे के नाम पर, उसे मिलती रहेगी। उसका काम अँधेरा होने से पहले भूसाटोली से बकरमंडी, नाचघर होते हुए, अफीमकोठी तक की सड़क के किनारे लगे बयालिस लैम्पपोस्टों के बल्ब जलाना था। अभी तक एक दूसरा आदमी यह काम कर रहा था पर उसे अपने गाँव में रहना ज़रूरी हो गया है इसलिए वह इसे छोड़ देगा। कमरा देने की यह शर्त थी कि विवान को यह काम बिना पैसों के करना पड़ेगा।

सदर ने जब विवान के सामने यह शर्त रखी, तो विवान ने इसे उसी तरह सुना और मान लिया, जिस तरह नौकरी करने की शर्तों को सुना और मान लिया था। विवान घड़ियाल द्वारा खींचे जा चुके आदमी का प्रेत बनने को तैयार हो गया। वह आदमी जिस साइकिल पर चढ़कर, जिस हुक लगे डंडे से बल्ब जलाता था, वे दोनों चीज़ें सदर के घर पर थीं। विवान ने साइकिल और हुक लगा डंडा लेकर दोनों काम शुरू कर दिए। अँधेरा होने से पहले ही वह साइकिल पर डंडा लेकर निकल जाता और उसके सिरे पर लगे लोहे के हुक से एक-एक लैम्प पोस्ट के बल्ब के स्विच को झटके से नीचे करते हुए, रोशनी करता चला जाता। भूसाटोली से नाचघर होते हुए, अफीम कोठी तक की धूल भरी, पसीने और हँफन से भरी टूटी सड़कों के दोनों ओर, एक-दूसरे से सटी--घनी बस्तियों, दुकानों और गन्दगी के बीच अँधेरा होने से पहले रोशनी करते हुए, विवान ने अँधेरे उजाले के महीन रेशों को समझना और उनसे बात करना सीख लिया था। कैसे एक-एक बूँद पर, एक-एक कण पर, एक-

एक सलवट पर अँधेरा उतरता है, और कैसे फिर एक-एक बूँद पर, एक-एक कण पर, एक-एक सलवट पर रोशनी टपकती है, विवान हैरानी से इसे देखता था।

अँधेरे और रोशनी के ये कतरे विवान की ज़िन्दगी में पहले भी हमेशा से थे, पर विवान कभी इनके बीच नहीं रहा था, इसलिए उसने इनके जादू को, इनकी भाषा को, इनकी जलती-बुझती आँखों को नहीं देखा था।

जब तक सड़क के लैम्पपोस्ट जलते रहे, उस आदमी की, जिसे घड़ियाल नदी में घसीट ले गया था, हाज़िरी लगती रही। रोज शाम को विवान कुछ समय के लिए उसका प्रेत बन जाता। सदर के मरने के बाद विवान ने प्रेत बनना छोड़ दिया। सदर के कोई औलाद नहीं थी इसलिए यह कमरा विवान के पास ही बना रहा।

विवान की हथेलियों से चिपके मग की गर्माहट चली गयी। चाय खत्म हो गयी थी। सामने हैनीमैन की मूर्ति के नीचेवाले चबूतरे पर रस्सी कूदती दोनों लड़कियाँ थक गयी थीं। वे तस्बीह के दानों पर उँगलियाँ फेरती औरत के पास ही, पत्थर के फर्श पर बैठ गयी थीं। उन्होंने जेब से कुछ रंगीन चिकने पत्थर निकाल लिए थे। उन्हें ज़मीन पर फैलाकर वे अब गोटियों का खेल खेल रही थीं। विवान को पता था कि यही होगा। यही रोज होता था। विवान यह भी जानता था कि कुछ देर खेलने के बाद लड़कियाँ इससे भी ऊब जाएँगी। माला फेरती औरत अपनी गिनती तब तक पूरी कर लेगी। हैनीमैन के ऊपर का जलता हुआ बल्ब भी बुझ जाएगा। सुबह की तेज़ रोशनी फैलना शुरू हो जाएगी। इस रोशनी में आते ही औरत और लड़कियाँ पत्थर से उठकर तेज़ी से एक सड़क पर चली जाएँगी। जेल की दीवार के सहारे बैठे लोगों के, घर में बनाकर लाये खाने से, तब तक भभक भी उठने लगेगी, जिससे बेचैन होकर, जेल की दवारों पर बैठे, भूखी आँखोंवाले कौओं के झुंड नीचे उतरकर उनके आसपास मँडराने लगेंगे।

लड़कियाँ और औरत चली गयीं। पत्थर का वह टुकड़ा अब खाली हो गया। उस पर अब धूप की चमक गिरने लगी थी। उस पर अब जेल में कैदियों से मिलने आनेवाले लोग अपनी गठरियाँ, खाने के डिब्बे और बच्चे लेकर बैठने लगे थे। बन्द मिल के दरवाज़े पर लगे तम्बू के नीचे दो लोग और जाग गये थे। पहले के जागे हुए एक लड़के ने लाउडस्पीकर पर क्रान्ति का बहुत पुराना गीत बजाना शुरू कर दिया था।

विवान डगलस खिड़की से हट गया। मग उसने नीचे दीवार में बने खाने के कोने में रख दिया। वापस पलँग तक आया वह। सर उठाकर देखा उसने। ठीक ऊपर लोहे का गर्डर था। उस पर दो मधुमक्खियाँ बैठी थीं। छत्ते के लिए जगह

ढूँढ़ती हुई। गर्डर के एक तरफ विवान डगलस की स्मृतियाँ थीं, दूसरी तरफ हल्की-हल्की फाहे छोड़ती नींद थी, पतझर की पत्तियों की तरह पीली, चमकदार धूप थी, छुट्टी का दिन था। मुझे अपने दुर्ग में जाना चाहिए। विवान बुदबुदाया। माँ, परित्यक्त ईश्वर और ग़ालिब के साथ अपने अभेद्य दुर्ग में। विवान पलँग पर बैठा फिर उस हिस्से पर सर रखकर लेट गया जहाँ ऊपर देखने पर चारों कड़े लटकते दिखायी देते थे। विवान डगलस ने आँखें बन्द कर लीं।

आँख बन्द करने पर पहले घनीभूत अँधेरा होता था, फिर धीरे-धीरे उसमें खुलती हुई रेशेदार रोशनी होती थी। उसी तरह खुलती हुई, जैसे रात के सन्नाटे में, पूरी दुनिया में, पूरी दुनिया से छुपकर, नि:शब्द एक-एक पंखुरी खुलती है। इन रोशनियों के बाद रोशनी का एक चमकदार फूल आँखों के अन्दर काँपता था, फिर उसके अन्दर छवियाँ बनती थीं। ये छवियाँ उनकी होती थीं जिनसे मिलने के लिए विवान जीवन भर प्रतीक्षा करता रहा था। इन छवियों में उनकी प्रतीक्षाएँ भी शामिल थीं जिनसे वह सिर्फ़ एक क्षण के लिए मिला था और यह जानता था कि वे सब फिर कभी नहीं मिलेंगे। इनमें उनकी प्रतीक्षाएँ भी थीं, जिनकी मृत्यु वह देख चुका था। उनकी प्रतीक्षा भी थी, जो सिर्फ़ कल्पना में रहे थे, कभी प्रत्यक्ष नहीं दिखे थे। इन छवियों में रहनेवालों की ये शान्त प्रतीक्षाएँ विवान डगलस ने पूरे जीवन की थीं। ये कुछ भी हो सकती थीं। ये व्यक्ति हो सकते थे, धूमिल कुहासे में काँपता कोई नेत्र हो सकता था, दीवार से सरकता रोशनी का कोई कतरा हो सकता था, हवा में उड़ता टूटा पंख, गर्म रक्त हो सकता था, ढलान पर उड़ते नंगे होते हुए बाँस के पेड़ों के लाखों बीज, मकड़ी के जाल के तारों में चिपका कीड़ा या फिर कोई बहुत गहरा वीतरागी चुम्बन या फिर कविता की पंक्तियाँ, कुछ भी हो सकता था। रोशनी के इस फूल में बैठा हुआ विवान सोचता था कि हम शायद जीवन भर सिर्फ़ उनकी ही प्रतीक्षा करते हैं, जिनके लिए हम जानते हैं कि वे कभी नहीं मिलेंगे। ये प्रतीक्षाएँ कभी खत्म नहीं होतीं इसलिए ये धीरे-धीरे हमारे अन्दर ही रहने लगती हैं, उसी तरह, जैसे हमारे अन्दर हमारा एकान्त रहता है। एकान्त और उसमें रहनेवाली प्रतीक्षाओं का यह रहस्य उसी तरह दुर्बोध, अलभ्य था, जैसे सुख और दुख के रहस्य, स्वप्न और स्मृतियों के रहस्य, जन्म और मृत्यु के रहस्य, परछाइयों और काया के रहस्य, जैसे आकांक्षाओं और निर्लिप्तता के रहस्य, जैसे सुर्ख दहकती लालसाओं ओर निराशाओं के रहस्य थे। विवान की बन्द आँखों में रोशनी के फूल के अन्दर का यह खेल छुट्टी के दिन देर तक चलता था। यह फूल जिस तरह खुलता था, फिर उसी तरह धीरे-धीरे बन्द होता था। एक-एक पंखुरी के साथ। फिर हल्का अँधेरा होता था, फिर घनीभूत अन्धकार। विवान डगलस आँखें खोलता था। देर तक सुख की एक गीली पर्त काया पर चढ़ी रहती थी।

विवान डगलस की आँखें बन्द थीं। स्मृतियाँ, निष्कवच यथार्थ होती हैं क्योंकि वह हम जी चुके होते हैं। जबकि, हम जिसे अपना वर्तमान कहते हैं, वह वास्तविकताओं और उसकी छायाओं का मिला-जुला ऐसा समय होता है जिसमें ये दोनों एक-दूसरे के अन्दर से गुजरते हुए, एक-दूसरे का रूप धरते रहते हैं। हम जिन्हें जीते हैं, जिनसे होते हैं, जो हमारे अनुभव जगत का हिस्सा बनता है और जो हमारी चेतना, हमारे जीवन को नियन्त्रित करता है, वे कभी वास्तविक रूपाकार होते हैं, तो कभी सिर्फ़ उनकी चमकदार परछाइयाँ। सच्चाई यह है, कि इन दोनों की सन्धि-रेखा पर खड़े हुए हम, अपने अधिकांश समय को संशय रहित भ्रम के साथ, वास्तविकताओं की छायाओं में ही जीते रहते है। इस समय में, जिसे हम वर्तमान कहते हैं, एक ही शब्द के कई अर्थ होते हैं। एक ही चेहरे के पीछे कई चेहरे होते हैं, एक ही दृश्य के नेपथ्य में कई दृश्य छुपे रहते हैं। जो पवित्र दिखता है, उसका षड्यन्त्र अपवित्र घाटियों की किसी अँधेरी गुफा में चलता रहता है, जो प्रत्यक्ष दिखता है, वह मायाजाल होता है। जो मायावी है, वह वास्तविक, खुरदरी सच्चाई की तरह सामने आता है। पर स्मृतियों में ऐसा भ्रम, ऐसा छल नहीं होता है। वे हमेशा इकहरी, सपाट और पारदर्शी होती हैं। उनका सत्य कभी धुँधला, बहुअर्थी या ओझल नहीं होता। विवान डगलस का छुट्टी का दिन, ऐसी मायावी वास्तविकताओं और स्मृतियों में बसे निष्कवच यथार्थ का दिन होता था।

अँगूठी में सबसे पहले विवान, 'विन्सेंट डगलस' के नाम की पट्टी लगा हुआ अपना घर देखता था।

बड़े शहर से बीस किलोमीटर दूर, चट्टानों से घिरे, तीन हजार कच्चे-पक्के घरों की आबादीवाले कस्बे में विन्सेंट डगलस का घर था। 1914 की बड़ी लड़ाई खत्म होने के बाद, विन्सेंट डगलस के पिता विली डगलस ने अंग्रेजी फौज की नौकरी छोड़कर, देश के पश्चिमी हिस्से में पीली रेत और मोटी धूल भरे राजस्थान के शुरू होनेवाले मैदानों की सीमा पर, इस कस्बे का चुनाव करके यह घर बनवाया था। ग्रीक वास्तुकला की नकल पर, ऊँचे, चिकने गोल खम्भों पर पूरा घर टिका था। दरवाज़े से पोर्च तक जानेवाली सड़क के दोनों ओर फलों के पेड़ और खुशबूदार झाड़ियाँ थीं। पोर्च की चार सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद, गोल खम्भों और कमरों के बीच खाली जगह थी जो गर्मियों की पहाड़ी चट्टानों से टकराकर, आनेवाली लू और सर्दियों की गलानेवाली ठंड को, कमरों में घुसने से पहले ही रोक लेती थी। ऊँची छतोंवाले कमरों में, ऊपर की तरफ आयताकार रोशनदान बने थे। दीवारों में बड़ी खिड़कियाँ थीं जिनमें महीन जालियाँ लगी थीं। घर के सबसे ऊपर की छत दो ओर

से ढलानवाली थी जिसमें अलग-अलग हिस्सों में कई नन्हीं चिमनियाँ थीं। ये चिमनियाँ कमरों के फायरप्लेस के धुएँ को ऊपर फेंकती थी। सर्दियों में इस घर से निकलनेवाले धुएँ की वजह से इसे दूर से पहचाना जाता था। कस्बे के बहुत-से लोग इसे धुएँवाला घर भी कहते थे।

विली डगलस इंग्लैंड के उन पुराने जमींदारों के खानदान का था जो गोरी चमड़ी, नीली आँख और पीले बालोंवाले इनसानों को धरती पर सबसे ऊँची और विशिष्ट नस्ल का मानते थे। उनका विश्वास था कि ईश्वर की प्रिय सन्तान होने के कारण, पूरी दुनिया पर केवल उनकी ही हुकूमत होनी चाहिए और ऐसा अभी नहीं है, इसलिए अभी दुनिया में बहुत कुछ ग़लत है। 1919 में पहली बड़ी लड़ाई खत्म होने, अँग्रेजों के जीतने, दुनिया को आपस में बाँटकर उसके सारे खनिज स्रोतों पर कब्जा कर लेने के बाद, जब लड़ाई पूरी तरह खत्म हुई, तो विली डगलस ने फौज की नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़ने के बाद विली डगलस ने उसी कस्बे में चट्टानी पहाड़ों को काटने, तोड़ने और उसके पत्थरों को तराशकर, अलग-अलग आकृतियों और आकार में बदलनेवाली मशीनें लगा लीं। वह इमारतों के लिए बड़े-बड़े, चिकने पत्थर बनाने लगा। विली डगलस की पत्नी कम उम्र में ही, उस धुएँवाले घर में, मकड़ी के काटने से मर गयी थी। उसके बाद विली डगलस ने विन्सेंट को अपने पास नहीं रखा। उसे अपनी माँ के पास लन्दन भेज दिया। विन्सेंट की पूरी पढ़ाई लन्दन में अपनी दादी के पास रहकर हुई, जो अपने दूसरे बेटे के पास रहती थी। विन्सेंट पढ़ाई में कभी तेज़ नहीं था। इंग्लैंड में विली की सैकड़ों एकड़ जमीन थी। काश्तकारी की आमदनी, पुश्तैनी दौलत और विन्सेंट का बिना माँ का बच्चा होने के कारण, दादी और दूसरे रिश्तेदारों के साथ, कम उम्र में ही विन्सेंट को दुनिया घूमने का मौका मिला। साल में दो बार वह हिन्दुस्तान भी आता था। लन्दन में उसका ज़्यादा समय अपनी दादी के साथ बीतता जिसके पास हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों से जुड़े बहुत पुराने और विचित्र किस्से थे और उन किस्सों जितनी पुरानी ही, अपनी श्रेष्ठता और उनके लिए तुच्छता की गहरी भावना भी थी। दादी के इन किस्सों में, हिन्दुस्तान में अलग-अलग मौकों पर मारे गये अपने रिश्तेदारों की लम्बी सूची थी, जिन्होंने 20 जून 1756 में कलकत्ता के ब्लैक होल से लेकर 1857 के गदर तक ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश साम्राज्य की नींव रखने और इस रहस्यमय पूर्वी मुल्क में उसकी जड़ें जमाने में, गुमनामी में प्राण दिये थे। गहरी सर्दियों की बर्फीली रात में, आग के पास बैठकर उसने विन्सेंट को अक्सर ब्लैक होल में मरनेवालों की छपी हुई सूची में अपने रिश्तेदारों के नाम दिखाये थे। उसने 1902 में कर्जन के खुद के लिखे हुए उस समाधि लेख की तस्वीर दिखायी थी, जो 1821 के पुराने पत्थर को हटाकर नये पत्थर पर लिखा गया था। उसके किस्सों में

अपने लोगों की वीरता, नस्लीय श्रेष्ठता और महान सभ्यता के चमत्कारी गुणगान के साथ-साथ हिन्दुस्तान के दलदल, मच्छर, तंग गलियाँ, साँप, जादूगर, बीमारी, राजगद्दियों पर बैठे अय्याश, अफीमची, और मसखरों की जहालत, आग में जिन्दा जलायी जाती औरतें और हवा में उड़ते इनसान होते थे। फ़ायर प्लेस की आग के दहकते अंगारों की चमक और गर्मी में, विन्सेंट के अन्दर बचपन से ही एक विचित्र हिन्दुस्तान बनता-बिगड़ता रहा। यह हिन्दुस्तान उसमें कौतुक भरता था, उसे रहस्यमय तरीके से आकर्षित करता था, उसे अपने से जोड़ता था। विन्सेंट जब भी हिन्दुस्तान आता, उसकी दादी हमेशा उन शहरों की, उन क़ब्रों पर भेजती जहाँ उसके रिश्तेदारों ने महान ब्रिटिश साम्राज्य के लिए प्राण दिये थे। हिन्दुस्तान से विन्सेंट का रिश्ता इन क़ब्रों की वजह से ज़्यादा गहराई से जुड़ गया था।

1923 की सर्दियों की एक रात विन्सेंट की दादी 1857 के गदर के पहले के कुछ सालों में दिल्ली के रेजीडेंट रहे अपने पिता की जिन्दगी, शान और व्यक्तित्व की घटनाएँ सुनाती-सुनाती अचानक मर गयी थी। जिस तरह विन्सेंट की माँ अलमारी के कपड़ों में दुबकी मकड़ी के काटने से मरी थी, जिस तरह दादी अचानक मरी, उसी तरह अचानक 1925 के खत्म होने तक, बिना किसी खास कारण के, एक दावत में भुने हुए बकरे, पनीर और पचास साल पुरानी शाही शराब से सराबोर सर्द रात में, हिन्दुस्तान, गाँधी और रियासतों के राजाओं के बारे में हल्की-फुल्की बातें सुनते हुए, खिड़की के काँच के बाहर परिन्दों के बीच सुरमई रंग के आकाश में एक टूटते हुए तारे को पीली पत्तियों के बीच गुम होते आख़िरी क्षणों तक देखते हुए, 18 साल के विन्सेंट ने अचानक महसूस किया कि वह लन्दन की इस जिन्दगी से बहुत अन्दर तक ऊब चुका है। अपने इस यकीन पर उसे तब भरोसा हुआ जब पियानो से उठती हुई धुन को सुनकर, जिस पर थिरकने का उसने घंटों अभ्यास किया था, मायूसी के साथ वह कमरे के बाहर निकल गया। तीन दिन बाद उसने विली की लन्दन की जायदाद उसके कुछ खास रिश्तेदारों और कुछ मैनेजर्स की देखरेख में छोड़ी और हमेशा के लिए 1925 के उस हिन्दुस्तान में, जब यहाँ 1,452,174 लोग भिखारी या फकीर थे, जब ब्रिटिश इंडिया के किसानों पर महाजनों का एक अरब नब्बे करोड़ पौंड का कुल कर्ज था, जब अट्ठावन करोड़ से ज़्यादा लोगों ने रेल के तीसरे दर्जे में सफर किया था और जब अकेले हैदराबाद के निजाम के पास दो सौ मिलियन डालर का सोना जमा था, आ गया। अपनी पत्नी और माँ की ही तरह, अचानक ही 1930 में विली डगलस भी, बाघ शिकार में, हाँके के एक आदमी के द्वारा फेंके गये भाले से मर गया।

विली डगलस विन्सेंट के लिए एक भरा-पूरा बड़ा घर, आमदनी वाला बड़ा कारखाना, इंग्लैंड की जायदाद और अपने परिवार की गर्व करने योग्य परम्परा

छोड़कर मरा था। विन्सेंट ने हमेशा के लिए हिन्दुस्तान में ही रहना तय कर लिया। जैसे वह पहले करता था, हिन्दुस्तान की जगह अब वह साल में दो बार इंग्लैंड जाने लगा। वहाँ वह अपनी जायदाद देखता, उसका हिसाब समझता और कुछ दिन वहाँ की पहाड़ियों, हरे मैदानों और घने ऊनवाली भेड़ों के बीच बिताकर वापस लौट आता।

विन्सेंट डगलस ने विली डगलस के व्यापार और कारखाने को और आगे बढ़ाया। उन पहाड़ों का पत्थर खास रंग का, मुलायम और चिकना था। क़ब्र पर लगनेवाले पत्थरों में उसके पत्थर की माँग बसे ज़्यादा थी। उन पर खुदे हुए अक्षर कभी धुँधलाते नहीं थे। इन अक्षरों का न धुँधलाना उन्हें बहुत प्रिय था, जो मरनेवालों की क़ब्रों पर फूल चढ़ाने—चिराग जलाने आते रहते थे। क़ब्र पर लगे इन पत्थरों से विन्सेंट का अपना परिचय भी तब से था, जब वह दादी की बतायी हुई अपने खानदान के अचानक पता लगे किसी वंशज की, किसी नये शहर की, नयी क़ब्र के धुँधलाए अक्षरों को कपड़े से या पानी से साफ़ करके पढ़ा करता था। कम उम्र से ही विन्सेंट जमीन के ऊपर दिखनेवाले साफ़ और चमकदार चराचर जगत से ज्यादा, सतह के नीचे दबी मृतकों की दुनिया की मूक भाषा, संकेत और आवाज़ें अधिक गहराई से समझने लगा था।

पत्थरों को तराशने की नयी मशीनों को विन्सेंट बाहर से खरीदता रहता था। कभी-कभी वह बाहर की चट्टानों के पत्थर भी खरीदता था। ताजमहल में मुमताज की क़ब्र पर जो पत्थर लगे थे कुछ लोग अपने लोगों की क़ब्र पर वैसे पत्थर भी चाहते थे। वे विन्सेंट से बगदाद का 'अकीक', तिब्बत का 'फ़िराज़ो', लंका का 'लाजवर्द' तक चाहते। विन्सेंट ने एक अच्छा, खूबसूरत कैटलाग बनवाया था जिसमें 'संग-ए-मूसा', 'संग-ए-पश्म', 'संग-ए- नरबूद' के नमूने थे, तो 'मूँगा', 'सुलेमानी', 'गौरी' और 'लहसीना' के नमूने भी थे। पानी के बड़े जहाज़ों से ये पत्थर आते और बन्दरगाह पर उतरते थे। बन्दरगाह पर उसकी मशीनें या ये पत्थर जब उतरते, तो उन्हें काग़ज़ातों के साथ छुड़ाकर विन्सेंट तक पहुँचाने का दायित्व, वहाँ का बड़े क्लियरिंग एजेंट दामोदर कुंडेल का था। दामोदर कुंडेल के पुरखे ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से बन्दरगाहों का माल उतारने और बाहर भेजने का काम करते थे। परिवार बड़ा हुआ तो दामोदर के पिता को कलकत्ता छोड़कर इस बन्दरगाह में शाखा खोलने के लिए भेजा गया। वह यहीं रह गये। उनका काम बढ़ने लगा। घर से उनका सम्पर्क कम होता चला गया। दामोदर कुंडेल यहीं पैदा हुआ था और यहीं रहता था, हालाँकि कलकत्ता में अब भी उसके हिस्से की कुछ बची हुई जायदाद और कुछ बचे हुए रिश्तेदार थे। 1932 में विन्सेंट के कारखाने की नयी मशीनें बन्दरगाह पर आयी थीं। ये मशीनें महत्वपूर्ण थीं। संख्या में अधिक थीं और

ज़्यादा कीमती भी थीं। विन्सेंट जहाज़ लगनेवाले दिन खुद बन्दरगाह पर रहना चाहता था। पूरे पैसे देने से पहले वह मशीनों के काग़ज़ात, मशीनों की मजबूत, सुरक्षित पैकिंग और उन्हें वहाँ से लादकर उसके शहर भेजने की पूरी व्यवस्था स्वयं देखना चाहता था। विन्सेंट डगलस खुद बन्दरगाह आया।

विन्सेंट जब स्टेशन पर रेल से उतरा था, तो दामोदर कुंडेल उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था।

दामोदर कुंडेल ने स्टेशन पर ही विन्सेंट को बता दिया कि इस बार होटल में रुकना सुरक्षित नहीं है। ट्रेन के डिब्बे के पास ही खड़े-खड़े उसने विन्सेंट को दो महीने पहले हुए शहर के खतरनाक हिन्दू-मुस्लिम दंगे के बारे में बताया जिसके बारे में विन्सेंट ने अखबारों में भी पढ़ा था। मुहर्रम के पिछले चार दिनों से पूरे शहर में फिर हिन्दू-मुसलमानों के बीच तनाव बढ़ रहा था। विन्सेंट ने इसके बाद भी जब होटल में ही रहना चाहा, तब स्थिति की पूरी गम्भीरता, भयावहता और अपनी बुरी आशंकाओं के बारे में इत्मीनान से बताने के लिए, स्टेशन की कैंटीन में चाय पीते हुए दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट को धीरे-धीरे फुसफुसाते हुए विस्तार से पूरा घटनाक्रम बताया कि दंगे की चिंगारियाँ अभी तक बुझी नहीं हैं। रह-रहकर आग भड़क उठती है। लोगों के दिल और दिमाग़ उनके काबू में नहीं हैं। दोनों मज़हब के लोगों से काफ़ी तनातनी बढ़ गयी है। उसने बताया कि इस साल के मोहर्रम के अखाड़ों का मुजाहिरा भी एक बिल्कुल नयी बात है। पिछले कई सालों से मोहर्रम के जुलूसों को देखनेवाले लोगों का यह कहना है कि इस साल जैसा जोशो-ख़रोश कभी देखने में नहीं आया था। हजारों मुसलमान ''अल्लाहो अकबर'' के नारे लगाते हुए शहर की सड़कों से निकले। दर्सों अखाड़े, जिनमें सैकड़ों हथियारबन्द लोग थे, अपने करतब दिखाते और हिन्दू धर्म के ख़िलाफ़ बोलते हुए शहर की सड़कों पर खुले आम दिखायी देते थे। हथियारबन्द अखाड़ों के साथ पुलिस का कोई खास इन्तज़ाम भी नहीं था। अखाड़ों को हथियार की इजाज़त देते समय भी हाकिमों ने इस बात का ख्याल नहीं रखा, कि गवर्नर-इन-कौन्सिल की हथियारों की रोक के हुक्म को माना जा रहा है या नहीं। जो भी ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा एक मजमा बनाकर पटेबाजी और तलवारों के साथ दिखाता सामने आया, वह हथियारों की बन्दिश से बरी कर दिया गया। इस ढील या फिर यों कहें, कि इस तरह की शहबाजी का,जो नतीजा होना था, वही हुआ। मुसलमान समझ बैठे कि अब शहर का कोई पुरसा-हाल नहीं है। एक दिन उन्होंने अपनी दुकानों पर बैठे हुए कुछ हिन्दुओं को जबरदस्ती घसीटा और उन्हें झंटे की ताज़ीम के लिए खड़ा कर दिया। इस घटना के तीसरे दिन मुसलमान गुंडों

ने रास्ते में पड़नेवाले मन्दिरों पर गोश्त और हड्डियाँ फेंकीं। नगर के बड़े रईस राय साहब के मकान पर जूठे कुल्हड़ और गोश्त के टुकड़े फेंके। उनके मकान के सामने बड़ा भारी हो-हल्ला मचाया। ग़ज़ब यह कि इसे खुद डी.एम. साहब अपनी आँखों से देख रहे थे। दूसरे और जिन-जिन लोगों ने यह सब अपनी आँखों से देखा है, जैसे कथावाचक, इत्रफरोश, सुनार और कोचवान, उनका कहना है कि अगर उस दिन रायसाहब के घर पर बड़े हुक्मरान अचानक न पहुँच गये होते, तो रायसाहब का मकान और साथ ही चौक, सर्राफा बिना लुटे न रहता। फिर वही हुआ, जो होना था। मोहर्रम पर, हिन्दुओं ने मुसलमानों की इस दबंगी को जब देखा, तो वे भी चौंक उठे, घबराए और मुकाबले में खड़े होने की तैयारी करने लगे। हिन्दुओं के बाज़ार बन्द हुए। दिल में पड़ी हुई गाँठे और भी कड़ी हो गयीं। उधर मुसलमानों ने दो कदम आगे और बढ़ा दिये। चौक, सर्राफे तथा दूसरे बाज़ारों के हिन्दू व्यापारियों और रईसों के पास धमकी से भरे ख़त भेजने शुरू कर दिये। इसमें लिखा रहता था कि हमें इतने हज़ार रुपये दो, वरना इस्लामी खंजर तुम्हारे लहू से रंग दिया जाएगा। यह सब अभी चल रहा है और किसी भी वक़्त कोई भी बड़ा हादसा हो सकता है। कुछ देर तक साँस लेने और स्टेशन की कैंटीन में आसाम से आयी हुई नयी बाग की हरी और तीसरी चाय पीते हुए दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट के सामने अपने घर रुकने का प्रस्ताव रखा। हालाँकि विन्सेंट अँग्रेज था और मुल्क के हालात अभी ऐसे नहीं हुए थे कि अंग्रेजों को कोई खतरा होता, पर पास में रुपये अधिक होने के कारण विन्सेंट ने दामोदर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस समय तक समुद्र किनारे शाम को चलनेवाली खास तरह की तेज़ और ठंडी हवा शुरू हो गयी थी। ट्रेन की कुछ घंटे पहले की उमस और चिपचिपाहट से मुक्त होकर, हवा की खुशनुमा ताज़गी महसूस करते हुए विन्सेन्ट डगलस दामोदर कुंडेल के घर जाने के लिए उसकी लायी हुई बग्घीनुमा घोड़ा गाड़ी पर बैठ गया।

1932 की उस शाम, जब तक कि विन्सेंट दामोदर कुंडेल की बड़ी बेटी से नहीं मिला था, वह ग़ालिब के बारे में कुछ नहीं जानता था। उसकी दादी ने उसे 1857 के पहले की दिल्ली और दिल्ली के बहुत-से लोगों के बारे में बहुत कुछ बताया था। दिल्ली की 110 डिग्री फारेनहाइट की गर्मियों में बर्फ के इन्तज़ाम, घरों के तहखाने, लालकिले की बेगमों के बारे में बताया था। गोकशी, पतंगबाजी और उन गानेवालों तक के बारे में बताया था जो हिन्दुओं के गाँव में राम-सीता और मुसलमानों के गाँव में रुस्तम-सोहराब के किस्से गाते थे। उसे मुस्लिम भक्ति के सूफ़ी और हिन्दू सूफ़ी की भक्ति के बारे में भी बताया था। पर ग़ालिब के बारे में कुछ नहीं बताया था। हालाँकि ग़ालिब तब मसाइले तसव्वुफ़ का बयान करते हुए दिल्ली की गलियों में ही घूमता था। दुनिया को बाज़ीच:-ए-अत्फाल समझकर

इसका तमाशा देखते हुए, ईमान और कुफ़्र की कशाकश में, यूँ होता तो क्या होता, पूछता हुआ, जिगर में आधा धँसा तीर लिये, रगों में दौड़नेवाले लहू का क़ायल नहीं रहनेवाला गालिब, विन्सेन्ट की दादी को नहीं मिला था। 1932 की उस शाम, जब विन्सेंट बग्घीनुमा गाड़ी पर बैठकर स्टेशन से दामोदर कुंडेल के घर जा रहा था, विन्सेंट को ग़ालिब की ही तरह देश के बारे में भी बहुत कुछ नहीं पता था। उसे नहीं मालूम था कि गर्मियों में बालों में लगाने के लिए रेड़ी का खुशबूदार तेल 'रेरीना' बाज़ार में आ गया था। प्रसव के बाद दुर्बलता दूर करनेवाला 'सुखसंचारक'— द्राक्षासव और गर्भाशय के रोगों की निश्चित दवा 'प्रदरारि' बिकने लगी थी। 300 वर्ष पुराना और धरती के नीचे 400 फीट पर प्राप्त ताम्रपत्र पर लिखा, 'मंगलमुखी यन्त्र' उपलब्ध था जो सन्तान होने की गारंटी देता था। लीवर की रिस्टवाच साढ़े तीन रुपये में मिल रही थी, तो अमेरिकन एयर गन, जिकमिक कैमरे के साथ-साथ, प्रेमचन्द की नयी रचनाएँ 'कायाकल्प', 'प्रतिज्ञा', 'गबन' और कहानियों के संग्रह घरों में थे। नये डिजाइन के टेबिल क्लाथ,पेटीकोट और नयी-नयी लेसों के 50 नमूनोंवाली पुस्तक 'शिल्पकुंज' के साथ-साथ बाज़ार में सम्भोग पूर्व महिलाओं के इस्तेमाल के लिए पेटेंटैक्स जैली भी उपलब्ध थी जो वीर्य के कीटाणुओं का छह घंटे में नाश कर देती थी। रुद्राक्ष माला, 'नेत्रबन्धु सुरमा', शारदा फ्लूट हारमोनियम, हैजे का जानी दुश्मन 'रत्नामृत', आश्चर्यजनक सुगन्ध का मुश्क सोप, गुप्त पत्र व्यवहार करनेवली जादू की स्याही के साथ मिस मेयो की 'देवताओं के गुलाम', 'आयरलैंड के गदर की कहानियाँ' और आचार्य चतुरसेन शास्त्री के बनाये शक्तिवर्धक चूर्ण व पाक के साथ ओरिएंटल बीमा कम्पनी की पॉलिसी, का-हा-पैसरी, श्वेत कुष्ठ की दवा और राष्ट्रीय गान पुस्तिका का चौथा संस्करण बिक रहे थे।

चालीस साल की उमर और पैसों से मजबूत दामोदर कुंडेल का घर उस जमाने के उन हिन्दू घरों की तरह ही था जो बाहर से जल्दी नहीं दिखते थे। अगर दिखते भी थे, तो वे अपने बेहद मामूली दीवारों, ढाँचों और तंग गलियों के दरवाज़ों और सीढ़ियों से अन्दर प्रवेश करनेवाले होते थे। इन घरों के इस तरह बनने का समय और बनाने का मकसद, इन घरों व घर में रहनेवालों को हाकिमों, हुक्मरानों और लुटेरों की नज़र से छुपाना होता था। बाहर से दिखते इन तंग, अँधेरे प्रवेश द्वारोंवाले निहायत मामूली दिखते घरों के अन्दर, पाँव रखते ही एक खुला, बड़ा-सा हवादार घर सामने आता था जिसके अन्दर वैभव होता था। इन घरों के ढाँचों में लगभग अपरिवर्तनीय रूप से नीचे गोदाम, या दुकान या कोई दफ्तर होता था जिसके पास से ऊपर की तरफ कोई चौड़ी, खुरदुरी सीढ़ी जाती थी, जो पहली नज़र से उसी गोदाम का हिस्सा दिखती थी। इन सीढ़ियों से ऊपर जाने पर दो या तीन मंजिला घर होते थे जिनमें अनिवार्य रूप से लोहे का एक बड़ा जाल होता था। इस जाल से पूरे घर की

नीचे की मंजिलों के कमरों के अन्दर रोशनी और हवा आती थी। इस जाल के किनारे-किनारे खुली जगह और उसके बाद कमरे होते थे। इस खुली जगह पर धूप, चाँदनी, हवा, चिड़िया, बारिश अपने-अपने तरीके से, अपने-अपने समय में आते रहते थे।

घोड़ागाड़ी बड़ी सड़कों से होती हुई, एक पतली गली को पार कर एक दरवाज़े के सामने रुकी। वह लकड़ी की चौखटवाला पुराना दरवाज़ा था जिसके पल्ले पर नक्काशी और जिसके अन्दर अँधेरा था। घोड़ागाड़ी रुकते ही अँधेरे से दो आदमी बाहर निकले। वे घोड़ागाड़ी के पास आकर खड़े हो गये। उन्हें सामान उतारकर ऊपर जाने के लिए बोलकर दामोदर विन्सेंट को दरवाज़े के अन्दर ले गया। दरवाज़े के अन्दर घुसते ही बाहर ढलती हुई शाम की हल्की रोशनी में विन्सेंट ने उस बड़े और चौकोर गोदाम को देखा। वहाँ पुरानी इमारतों के अन्दर ही घूमती रहनेवाली हवाओं की ख़ास गन्ध और ठंडक थी। गोदाम में ऊपर जंगले से गिरती हुई रोशनी के कुछ टुकड़ों में, छोटी-छोटी कपड़ों की गाँठे, कुछ चमड़े के पट्टे, लोहे के पाइप और पेटियाँ थीं। दरवाज़े से ही मिली हुई खुरदुरी, ठंडी दीवारों के बीच में सीढ़ी ऊपर गयी थी। दामोदर के साथ उन सीढ़ियों से चढ़ता हुआ विन्सेंट पहली मंजिल पर पहुँचा। दामोदर कुंडेल के पीछे आते हुए विन्सेंट के सामने बेहद खुला, हवादार और बड़ा घर था।

उस घर के चारों तरफ की खुली जगह के पीछे कमरों के दरवाज़े थे, झूला था, पीतल के बड़े-बड़े गुलदान थे और ऊपर एक और जाल था जो छत पर था। घर में गहरी शान्ति थी, समुद्र की ठंडी, गीली हवा थी, 1932 की उतरती हुई रात थी और दामोदर कुंडेल की दो बेटियाँ थीं।

दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट के लिए मेहमानों वाला खास कमरा तैयार रखा था। विन्सेंट का सूटकेस इसी में रख दिया गया। कमरे में बर्मा टीक की दो बड़ी अलमारियाँ थीं जिनमें आदमकद शीशे लगे थे। पीतल का बड़ा हाथी था। छत पर फ़ानूस था जिसके अन्दर शमादान थे। टेबुल फैन था, बड़े पेंडुलम की घड़ी थी। कमरे की दो खिड़कियों पर सफेद रेशमी पर्दे लगे थे। छोटी-सी गोल मेज थी। चार गद्देदार कुर्सियाँ थीं। आबनूस के रंगवाले पलँग पर मच्छरदानी तनी थी। कमरे के दरवाज़े के ठीक सामने जाल दिखता था। जाल के पार झूला था, झूले के पार किसी कमरे का दरवाज़ा था। विन्सेंट ने पर्दा हटाकर खिड़की के बाहर झाँका। उसे पुरानी खपरैल की छतवाली इमारत में चुंगी का दफ्तर दिखा, इक्केवालों के खड़े होने का अड्डा दिखा, फायर ब्रिगेड की आग बुझानेवाली गाड़ियाँ दिखीं और बिच्छू काटने पर शर्तिया फायदा करनेवाली दवा का बोर्ड दिखा। इन सबके पीछे पुराने शहर की ऊँची मीनारें दिखीं, उन मीनारों के ऊपर आसमान से उतरती हुई पतंग दिखीं।

खिड़की की तरफ दिखनेवाला शहर पुराना था जिसके उदास, खाली छज्जे, अँधेरे में झूल रहे थे। यह शहर आगे जाकर शहर के बचे हुए कुछ आधुनिक हिस्सों में मिल जाता था, उसी तरह जिस तरह इस हिन्दू घर के दरवाज़े सटे हुए दूसरे हिन्दू घरों की दीवारों में बने दरवाज़ों में मिल जाते थे। इस तरह, कि बिना गली में आये हुए, अन्दर-ही-अन्दर बस्ती के पास निकला जा सकता था।

विन्सेंट का सूटकेस रखकर दोनों आदमी खड़े थे। दामोदर कुंडेल ने उनसे अपनी भाषा में कुछ कहा। वे बाहर चले गये। विन्सेंट गद्देदार, चौड़ी कुर्सी पर बैठ गया। उसके बदन पर दिन भर बहनेवाले पसीने की चिपचिपाहट और दुर्गन्ध थी। वह सबसे पहले नहाना चाहता था, फिर गर्म कॉफ़ी पीना, फिर थोड़ा काम करना चाहता था। दामोदर कुंडेल अभी तक खड़ा था। विन्सेंट दामोदर से नहाने के बारे में पूछना चाहता था, तभी उसने कमरे में आती दो लड़कियों को देखा। वे दोनों एक साथ आयी थीं। वे दामोदर कुंडेल की दोनों बेटियाँ थीं।

विन्सेंट कुर्सी से उठ गया। वे दोनों दामोदर के पास आकर खड़ी हो गयीं। उन्हें विन्सेंट के आगमन की प्रतीक्षा थी। वे आभूषणों से अलंकृत थीं। रेशमी चुन्नटदार कपड़ों में थीं और विन्सेंट के स्वागत के लिए तत्पर थीं। दामोदर ने विन्सेंट से उनका परिचय कराया। उनके नाम सुदेषणा और सुलक्षणा बताये। विन्सेंट के लिए दोनों नाम बहुत कठिन थे। वह तत्काल समझ नहीं पाया कि दोनों में कौन सुदेषणा है और कौन सुलक्षणा है। उसने हाथ जोड़कर दोनों का अभिवादन किया। कमरे की कुर्सियों पर वे सब बैठ गये।

विन्सेंट उनके नाम तो नहीं समझ पाया था, पर दोनों में कौन बड़ी और कौन छोटी है, यह उसने समझ लिया था। दोनों लड़कियों का रंग बहुत साफ़ था। छोटी बेटी लम्बाई में थोड़ी कम थी इसलिए उसका शरीर गदराया हुआ और उभरी हुई नीली नसोंवाला दिखता था। कोहनी तक बाँह और कॉलरवाले ब्लाउज में ढके होने के बाद भी, वह अपने शरीर की मांसलता को ढक नहीं पा रही थी। वह शहर की उन बहुत कम लड़कियों में थी जो उस उमर तक पढ़ाई कर रही थीं। बड़ी लड़की उससे दो साल बड़ी थी। उसका शरीर पतला और लम्बा था। उसका माथा चौड़ा था जिस पर कुछ बाल फैले थे। उसने भी कोहनी तक झालरवाली बाँह का बिना कॉलर का ब्लाउज पहना था। वह विन्सेंट से अँग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में बात कर रही थी।

बातचीत के दौरान ही दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट से पूछा कि वह सबसे पहले क्या करना चाहेगा? विन्सेंट ने बताया कि वह नहाना चाहता है, फिर एक कम गर्म कॉफ़ी पीना चाहता है। दामोदर कुंडेल ने उसके बाद के लिए विन्सेंट को तीन विकल्प दिये। पहला यह, कि अगर विन्सेंट चाहे तो वहाँ के सबसे बड़े क्लब में

जा सकता है जहाँ सिर्फ़ अँग्रेजों को जाने की इजाज़त है। इसके लिए दामोदर ने बताया कि उसने बन्दरगाह के सबसे बड़े अँग्रेज हाकिम से पहले से ही बात कर ली है और विन्सेंट उसका अतिथि बनकर क्लब में ताश या बिलियर्ड खेलने के बाद डिनर से पहले होनेवाले आज के विशेष नृत्य आयोजन में हिस्सा लेकर अपनी शाम बिता सकता है। दूसरा विकल्प था कि विन्सेंट घर पर ही रहे। वे सब एक साथ रात का खाना खायें और उसके बाद विन्सेंट यदि चाहे तो कुछ देर वे ताश खेल सकते हैं या चाहे तो घोड़ागाड़ी में समुद्र के किनारे सैर कर सकते हैं। तीसरा विकल्प था कि विन्सेंट अपनी मर्जी से जब चाहे खाना खा ले और जब चाहे सोकर थकान उतार ले। विन्सेंट ने दूसरा विकल्प चुना, पर इस शर्त के साथ कि खाना खाने के बाद वह थोड़ी-सी 'पोर्ट' पीएगा जो सम्भवत: दामोदर कुंडेल के पारम्परिक हिन्दू घर में पीना अवांछित हो। दामोदर कुंडेल को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी। इस बात को और पुख्ता ढंग से कहने और सिद्ध करने के लिए, उसने विन्सेंट को फिर एक बार याद दिलाया, कि अँग्रेजों से उसके परिवार के सम्बन्ध तब से हैं जब वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ता में श्रीमती इमहौफ से शादी की थी। उसके परिवार के लोग तब ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए, नावों की पुलबन्दी का ठेका लेते थे और इस शादी के इन्तज़ाम में उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारियाँ निभायी थीं। दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट को आश्वस्त किया कि इस पुराने सम्पर्क के कारण वह अंग्रेजों के तौर-तरीकों से पूरी तरह परिचित है और इसलिए, अगर विन्सेंट खाने के पहले भी शराब पीना चाहे, तो दामोदर कुंडेल के पास जहाज़ से खरीदी हुई ओबेन स्कॉच की एक बोतल भी है जो उसने विन्सेंट के लिए ही खरीदकर रखी है। विन्सेंट ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। विन्सेंट द्वारा दूसरा विकल्प चुन लेने के बाद, दामोदर कुंडेल ने अपनी बेटियों को भोजन का प्रबन्ध करने का निर्देश दिया जिस पर वे दोनों तत्काल उठ गयीं। विन्सेंट को नहाने के बाद गर्म कॉफ़ी पीनी है, इसकी याद भी उन्हें दिलायी और यह भी बताया कि गर्म कॉफ़ी के साथ कुछ काजू और घिसे हुए कच्चे केले में पुदीने की पत्तियाँ और किशमिश डालकर बने हुए कबाब भी होने चाहिए।

उन दोनों के जाने के बाद, विन्सेंट को साथ के दरवाज़े के अन्दर गुसलखाने में सब सामान दिखाने के बाद दामोदर कुंडेल भी चला गया। सबके चले जाने के बाद विन्सेंट ने अपने कमरे के दरवाज़े का पर्दा खींच लिया। उसने सूटकेस से रात के सोने के कपड़े, शेव का सामान निकाला और गुसलखाने के अन्दर चला गया।

दामोदर कुंडेल का घर बाहर से जितना पुराना, तंग और पिछड़े जमाने का दिखता था, उसके विपरीत घर में सब लोग खुले विचारों और आधुनिक जीवन-शैली के थे। दामोदर बंगाल के उस हिन्दू भद्रलोक की परम्परा में था जो मानते थे

कि इस देश में जो भी श्रेष्ठ आया है और अभी तक बचा है, वह अँग्रेजों की बदौलत ही है और जो पूरी निष्ठा के साथ, अँग्रेजी जीवन-शैली, शिक्षा, वस्त्र, भोजनादि का अनुगमन करते थे। उनकी तरह बनना चाहते थे और जिन्हें पूरा विश्वास था कि अँग्रेजों के चले जाने के बाद देश फिर से जहालत और जंगलराज वाले अँधेरों में लौट जाएगा, जहाँ से अँग्रेजों ने उन्हें बाहर निकाला था। दामोदर कुंडेल उन दिनों शहर के हिन्दू-मुस्लिम तनाव से ज़्यादा चिन्तित, देश की गतिविधियों से था जिसके बारे में उसने विन्सेंट को नहीं बताया था और जिसका तात्कालिक कारण पिछले साल मुस्लिम लीग के एक धड़े के इलाहाबाद अधिवेशन में दिया हुआ मुहम्मद इकबाल का भाषण और लन्दन की राउंड टेबल कॉन्फ्रेन्स थी। उसे लगता था कि जल्दी ही ब्रिटिश सरकार कोई फार्मूला निकालकर यहाँ की हुकूमत धीरे-धीरे हिन्दुस्तानियों को सौंपना शुरू करना चाहती है। कम्युनल अवार्ड में शासन में हिन्दुस्तानियों को हिस्सा देने की कुछ झलक थी और गाँधी की आँधी थमने का नाम नहीं ले रही थी। फिर भी, अपने समय और अपने समाज से बहुत आगे जाकर, दामोदर कुंडेल ने अपनी दोनों बेटियों को अँग्रेजी शिक्षा दिलवायी थी। उन्हें अपने चारों ओर होनेवाली घटनाओं के बारे में मुक्त होकर सोचना और बोलना सिखाया था। दामोदर कुंडेल ने किसी को बताया नहीं था,पर उसके अन्दर अंग्रेजों के चले जाने के भय की ही तरह, बेटियों के बड़े होते चले जाने और अभी तक अविवाहित रहने का भय भी था।

विन्सेंट जब नहाकर तैयार हो गया तब उसने कमरे की चौखट का पर्दा हटाया। पर्दा हटते ही सुन्दर नक्काशी वाली लकड़ी का झूला दिखा जिस पर छोटी बेटी बैठी थी। उसका एक घुटना मुड़ा था और उसका वह पंजा झूले के तख्ते पर था। वह पाँव के नाखूनों पर रंग लगा रही थी। इस तरह झुककर बैठने से उसका माँसल शरीर गुँथे आटे-सा दिखने लगा था। जो दो आदमी सूटकेस लाये थे, उनमें से एक दरवाज़े पर विन्सेंट की ख़िदमत में खड़ा था। विन्सेंट को देखकर वह दहलीज़ पर आया। उसने कॉफ़ी लाने के लिए पूछा। विन्सेंट के हाँ कहने पर वह अन्दर चला गया। कुछ ही देर में वह चाँदी की एक ट्रे लाया। ट्रे पर चाँदी की केतली और कप रखे थे। एक प्लेट में तले हुए काजू और कच्चे केले के खुशबूदार कबाब थे। आदमी के पीछे दामोदर कुंडेल की बड़ी बेटी भी आयी। मेज पर ट्रे रखकर वह आदमी खड़ा हो गया। बड़ी बेटी कमरे के अन्दर आयी। उसने स्वयं कप में कॉफ़ी डालकर विन्सेंट को दी। विन्सेंट ने कप ले लिया। उसने विन्सेंट के सामने काजू की प्लेट की। विन्सेंट ने दो काजू उठा लिये। उसने एक छोटी प्लेट में कबाब रखे। हर कबाब पर सींक लगायी। पुदीने की मिर्चवाली चटनी रखकर प्लेट बढ़ायी। विन्सेंट के एक हाथ में कॉफ़ी का कप था। उसने कुर्सी के सामनेवाली

छोटी मेज पर प्लेट रख दी। विन्सेंट कुर्सी पर बैठ गया। वह भी बैठ गयी।

''व्हाट एबाउट यू?'' विन्सेंट ने उससे कॉफ़ी और कबाब के लिए पूछा।

वह मुस्करायी, ''मैं शाम को कॉफ़ी नहीं पीती।''

विन्सेंट ने कबाब में लगी सींक से कबाब खाया।

''आप रात को क्या खाना चाहेंगे?'' उसने पूछा। वह मुस्करा रही थी। विन्सेंट ने देखा कि उसकी आँखें बहुत बड़ी और बहुत काली हैं। ये ऐसी आँखें थीं जिनके आसमानों में परिन्दे उड़ सकते थे और जो जब चाहे बोल सकती थीं।

''कुछ भी, पर बहुत थोड़ा-सा।''

''आपको कुछ भी चाहिए तो बाहर आदमी है, क्या मुझे इजाज़त देंगे?'' उसने पूछा। विन्सेंट कुर्सी से उठ गया। वह भी उठ गयी।

''खाने पर मिलते हैं।'' उसने कहा और चली गयी। विन्सेंट लड़की के पीछे चौखट तक आया था। उसके जाने के बाद विन्सेंट ने कमरे का पर्दा खींच दिया।

कबाब खाने और कॉफ़ी पीने के बाद विन्सेंट ने तरोताज़ा महसूस किया। उसने अपने काग़ज़ निकाले। जहाज़ कल सुबह बन्दरगाह पर आना था। विन्सेंट ने खाने के पहले के खाली समय में कल के लिए ज़रूरी क़ागज़ात तैयार करके एक ओर रख लिये।

दामोदर कुंडेल से विन्सेंट की दूसरी मुलाकात खाने के मेज पर ही हुई। इस बीच दामोदर बाहर हो आया था। उसने विन्सेंट को बताया कि जहाज़ बन्दरगाह पर सुबह आ जाएगा। विन्सेंट चाहे तो दोपहर तक पूरा काम खत्म करके शाम की गाड़ी से वापस लौट सकता है। खाने की मेज पर उन दोनों के साथ छोटी बेटी बैठी थी। बड़ी खाने की व्यवस्था में अन्दर व्यस्त थी। दामोदर कुंडेल ने इस बीच विन्सेंट को अपनी बड़ी बेटी की भोजन बनाने और प्रबन्धन की दक्षता के बारे में विस्तार से बता दिया था।

छोटी बेटी ने झूले पर बैठकर पाँव के नाखूनों में रंग लगाने के बाद, हाथ के नाखूनों पर भी रंग लगाया था। उसकी उँगलियों के सिरे गीले थे और महक रहे थे। उसका फूला हुआ शरीर खतरनाक तरीके से खुद के दबाये या फिर चबाये जाने के लिए पुरुष की उत्तेजना को आमन्त्रित करता था। उसकी आँखें हल्के सुरमई रंग की थीं। विन्सेंट ने गौर किया कि उसकी आँखें अगर चेहरे पर रुकती हैं तो उनके अन्दर एक गीलापन आता है। बड़ी बेटी खाना शुरू होने के बाद आयी। विन्सेंट से देर से आने के लिए क्षमा माँगकर वह भी बैठ गयी। खाने की मेज पर ही बातों-बातों में विन्सेंट ने अपनी दादी के बारे में बतया। दिल्ली की उसकी स्मृतियों और अनुभवों के बारे में बताया। ब्लैक होल से लेकर अपनी माँ, दादी और पिता विली डगलस की अकस्मात मौत के बारे में बताया और इस मुल्क के अलग-अलग शहरों में फैली

हुई अपने खानदान के लोगों की क़ब्रों और ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में दिये गये उनके योगदान के बारे में बताया। बड़ी बेटी ने तब विन्सेंट से पूछा कि उसकी दादी के समय में, दिल्ली में ही उन दिनों एक ग़ालिब भी था जिसे उसकी दादी ज़रूर जानती होंगी। 1932 की उस शाम, खाने की मेज पर दामोदर कुंडेल की बड़ी बेटी के मुँह से पहली बार विन्सेंट ने ग़ालिब का नाम सुना। उसने दुख और हैरानी से बड़ी बेटी को बताया कि दादी ने उनका जिक्र कभी नहीं किया। विन्सेंट ने उत्सुकता से ग़ालिब के बारे में जानना चाहा और पूछा कि ग़ालिब कौन था? बड़ी बेटी ने तब बताया कि ग़ालिब कौन है यह बताना मुश्किल है क्योंकि यह पूछने पर ग़ालिब खुद भी कहता था कि वह बतलाये क्या? अलबत्ता बेटी ने कुछ बातें ज़रूर विन्सेंट को बतायीं, कि उसका दुख बड़ा था और इब्ने मरियम भी उसका दुख दूर नहीं कर सकते, वह यह मानता था। उसने बताया कि वह कहीं बिना दरो दीवार का एक घर बनाकर रहना चाहता था पर वह जगह उसे कहीं नहीं मिली। यह भी, कि वह सहर तक जलनेवाली शमा के हर रंग को जानता था। इन सारी बातों के बीच छोटी बेटी बेनियाज़ी से चुपचाप खाना खाती रही। वह एक बार भी नहीं बोली। बस बीच में कभी-कभी अपनी गीली, हल्की सुरमई आँखों से विन्सेंट को देख लेती थी।

खाने के बीच में ही कमरे के दरवाज़े पर अचानक एक दस साल का उदास लड़का आकर खड़ा हो गया। उसके हाथ में एक नोटबुक थी। उसे दरवाज़े पर खड़ा देखकर बड़ी बेटी ने हाथ बढ़ाया। वह उसके पास आकर उससे चिपककर खड़ा हो गया।

''क्या खाओगे?'' बेटी ने धीरे-से पूछा।

''कुछ नहीं।''

''फिर?''

''यह सवाल नहीं निकल रहा है, सुबह स्कूल लेकर जाना है।'' लड़का आँख रगड़ते हुए बुदबुदाया।

''मेरे कमरे की मेज पर रख दो। मैं कर दूँगी। सुबह ले लेना।''

लड़का खुश हो गया। इतना खुश हो गया कि उसने मेज पर रखी बालूशाही को बिना पूछे उठा लिया और दाँतों से काटता हुआ चला गया। उसके जाने के बाद दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट को बताया कि वह बड़ी बेटी का बहुत दुलारा है। अपनी माँ से ज़्यादा उसे मानता है। अपना हर दुख पहले उसके पास लाता है। दामोदर कुंडेल ने हँसते हुए बताया कि जब यह पढ़ने स्कूल जाती थी और वह और भी छोटा था तब भी इसे नहीं छोड़ता था। यह उसे अपने साथ स्कूल ले जाकर पिछली बेंच पर चुपचाप लिटा देती थी। टीचर ने इसकी अनुमति दे दी थी।

यह सुनने के बाद, खाने की मेज पर ही विन्सेंट ने बड़ी बेटी को तब पहली

बार बहुत ध्यान से देखा। उसे वह बेहद सुन्दर, शिक्षित, गृहकार्यों में दक्ष, सुरुचि सम्पन्न, और ममतामयी लगी।

खाने के बाद सब विन्सेंट के कमरे में ही बैठ गये। विन्सेंट ने सूटकेस से पोर्ट की बोतल निकाली। उसने सबसे पूछा। किसी ने पोर्ट पीने की इच्छा नहीं दिखायी। एक गोल गिलास में थोड़ी-सी पोर्ट डालकर विन्सेंट ने फिर बड़ी बेटी से पूछा कि यह कैसे हो सकता है कि कोई कहीं जाना चाहे और उसे पता न हो कि उसे कहाँ जाना है? वह ग़ालिब के बारे में और जानना चाहता था। तब दामोदर कुंडेल ने बताया कि ग़ालिब को जानने के लिए यही बेहतर होगा कि उसकी ग़ज़ल ही सुनी जाये जिसे उसकी बड़ी बेटी बेहद खूबसूरत तरीके से गा सकती है। इतनी सब बातों के बाद, बड़ी बेटी ने 1932 की उस शाम, धीरे-धीरे उदास होती हुई आँखों से विन्सेंट को ग़ालिब के बारे में बताने के लिए, ग़ालिब की एक ग़ज़ल गाना शुरू किया।

"दिल ही तो है, न संगोख़िश्त दर्द से भर न आए क्यों?
रोएँगे हम हज़ार बार कोई हमें सताए क्यों?

दैर नहीं हरम नहीं दर नहीं आस्ताँ नहीं
बैठे हैं रहगुज़र प हम, कोई हमें उठाए क्यों?"

विन्सेंट ने देखा कि बड़ी बेटी की आँखों में धीरे-धीरे वही गीलापन तैरने लगा था जो छोटी बेटी की आँखों में था। इस गीलेपन में विन्सेंट ने बहुत-से उदास जुगनू देखे, गहरा निर्जन एकान्त देखा, बहुत-सी ऋतुएँ देखीं और भाषा को पार करके, अन्दर तक चीरनेवाला खामोश दुख देखा, जो धीरे-धीरे बड़ी बेटी के काँपते होंठों पर परछाइयाँ छोड़ता हुआ कमरे के अन्दर सबकी आत्माओं पर पंजे धँसाए झूल रहा था।

"क़ैदेहयातोबन्देग़म अस्ल में दोनो एक हैं
मौत से पहले आदमी ग़म से निजात पाए क्यों?

वाँ वह गुरूरे इज़्ज़ेनाज़ याँ यह हिजाबेपासे वज़अ
राह में हम मिले कहाँ, बज़्म में वह बुलाए क्यों?

हाँ वो नहीं ख़ुदापरस्त जाओ वो बेवफ़ा सही
जिसको हो दीनोदिल अज़ीज़ उसकी गली में जाए क्यों?

बन्दरगाह की धूमिल रोशनी में किनारे लगते जहाज़, बालू पर चमकती चाँदनी और कमरे के रोशनदान से आती ठंडी हवा में एक झटके से बड़ी बेटी की आवाज़ रुकी। एक क्षण के लिए कमरे में गहरा, बहुत गहरा सन्नाटा रह गया। साँस लेने की आवाज़ें थीं बस। बड़ी बेटी कुर्सी से उठ गयी। आँखों का गीलापन गले में आ चुका था। उसने विन्सेंट से क्षमा माँगी और चली गयी। दामोदर कुंडेल भी छोटी बेटी को लेकर चला गया। विन्सेंट ने गिलास की पोर्ट खत्म की और आँखें बन्द करके फिर कुर्सी पर बैठ गया।

रात में किसी वक़्त विन्सेंट की आँख खुली। वह उठ गया। उसे प्यास लगी थी। वह पानी पीना चाहता था। कमरे में पानी नहीं था। खाने का कमरा पास ही था और वहाँ पानी था। विन्सेंट ने बाहर जाने के लिए कमरे का पर्दा हटाया। सामने झूला था। झूले के पीछेवाला कमरा उसे दिखा। कमरे में रोशनी थी। रोशनी में बड़ी बेटी दिख रही थी। वह मेज पर रखे काग़ज़ों पर सर झुकाए कुछ लिख रही थी। विन्सेंट ने कमरे की लम्बे पेंडुलमवाली घड़ी में समय देखा। रात के दो बज रहे थे। पाँवों में स्लीपर डालकर विन्सेंट कमरे से बाहर आया। खाने के कमरे का दरवाज़ा बाहर से बन्द था। उसने एक क्षण सोचा फिर खुली जगह से होता हुआ बड़ी बेटी के कमरे की खिड़की के सामने खड़ा हो गया। किसी की उपस्थिति को समझकर बेटी ने सर उठाया। उसने सामने विन्सेंट को देखा। एक क्षण के लिए उसकी उन बड़ी आँखों में भय, कौतुक व जिज्ञासा जागी फिर वह सहज हो गयी। लिखना छोड़कर वह कुर्सी से उठ गयी। कमरे का दरवाज़ा खोलकर वह बाहर आयी। विन्सेंट ने उससे पहले क्षमा माँगी, फिर थोड़ा पानी माँगा। बेटी को आश्चर्य और दुख हुआ कि उसके कमरे में पानी नहीं रखा गया। उसने क्षमा माँगते हुए अपने कमरे में रखे गिलास में विन्सेंट को पानी दिया। विन्सेंट ने उसके कमरे की चौखट पर खड़े होकर पानी पिया।

विन्सेंट की नींद अब टूट चुकी थी। बड़ी बेटी ने एक क्षण विन्सेंट को खड़े देखा फिर वह समझ गयी।

''मैं कॉफ़ी पी रही हूँ...क्या आप पियेंगे?''

''हाँ।'' विन्सेंट ने कहा।

वह कमरे की चौखट से हट गयी। विन्सेंट अन्दर आ गया। यह उसका कमरा था। कमरे में बाहर खुलनेवाली दो खिड़कियाँ थीं जिन पर सफेद पर्दे थे। पलँग था, मेज थी, दो कुर्सियाँ थीं। कोने में तानपूरा था। एक लकड़ी के स्टैंड पर किसी पुराने मन्दिर का टूटा हुआ गन्धर्व रखा था। कोने की गोल घूमनेवाली अलमारी में किताबें थीं। कमरा बेहद सलीके से सजा था। उसने मेज पर रखे

फ्लास्क से गर्म कॉफ़ी उसी गिलास में निकालकर विन्सेंट को दी जिसमें उसने पानी पिया था। वह अपनी कुर्सी पर बैठ गया। उसके गिलास में पहले से कॉफ़ी पड़ी थी।

''इतनी रात को आप क्या लिख रही हैं?'' विन्सेंट दूसरी कुर्सी पर बैठ गया।

''मैं वही सवाल हल कर रही हूँ जो वह बच्चा दे गया था।''

''क्या?'' विन्सेंट ने हैरानी से उसे देखा, ''यह कैसा सवाल है?''

''सुनेंगे?'' वह मुस्करायी, ''हल करने की कोशिश करिएगा।''

विन्सेंट ने सर हिलाया। लड़की ने मेज से एक काग़ज़ उठाकर सवाल पढ़ा।

''यह सवाल बच्चे को मिला है?'' विन्सेंट ने आँखें फाड़कर पूछा।

''हाँ।''

''आप इसे कर लेंगी?''

''हाँ।''

''आप कर लेंगी?'' विन्सेंट ने दुबारा हैरानी से पूछा।

''हाँ।'' वह लड़की अप्रतिम विश्वास से बोली। वह मुस्करा रही थी। उसके होठ फैले थे। उन पर दुख की वह परछाइयाँ अब नहीं थीं जो उस समय थीं। विन्सेंट ने फिर उसकी बड़ी, गहरी, काली आँखों के आसमान पर कुछ जलते-जलते जुगनुओं को देखा। उसी क्षण, बिल्कुल उसी क्षण, रात के दो बजे जब बन्दरगाह की बालू के लम्बे किनारे पर उल्टी पड़ी मछुवारों की नावों पर केकड़े घूम रहे थे, लहरों पर जाल फेंकता, चाँदनी में झुलसता कोई नंगा बदन मछुवारा गा रहा था, जब नींद में विन्सेंट की दादी ने क़ब्र में करवट ली, उसी क्षण सम्मोहित विन्सेंट ने तय किया कि अगर यह लड़की इस सवाल को हल कर लेगी, तो वह इस विलक्षण लड़की को खोएगा नहीं। उससे शादी करने का प्रस्ताव दामोदर कुंडेल के सामने रख देगा।

कॉफ़ी खत्म करके विन्सेंट उठ गया।

''अगर आप इसे हल कर लें तो सुबह मुझे ज़रूर दिखाएँ। यह मेरे लिए अविश्वसनीय है।''

दामोदर कुंडेल की बड़ी बेटी भी उठ गयी। वह चुपचाप मुस्करा रही थी। विन्सेंट अपने कमरे में आया और गहरी नींद सो गया।

सुबह वह उठा तो उसकी मेज पर नीले रंग की चीनी पोर्सलीन के पेपर वेट से एक काग़ज़ दबा रखा था। उस पर सवाल और उस सवाल का उत्तर लिखा था।

25 से.मी. व्यास के एक गोल रास्ते पर चींटी और घरेलू मक्खी की दौड़ हुई। चींटी की एक छलाँग 5/10 मिलीमीटर की है। उसकी तीन छलाँग घरेलू मक्खी की एक छलाँग के बराबर है। दो मिनट में चींटी ने 2000 छलाँग लगायी जबकि घरेलू मक्खी ने 500।

ज्ञात है

1. दौड़ तीन सौ मीटर की है।

2. दौड़ के आठ घंटे बाद मक्खी ने बेइमानी शुरू कर दी। बजाय पूरा चक्कर गोल दौड़ने के वह व्यास में उड़ते हुए, रास्ते के सामनेवाले बिन्दु पर पहुँचने लगी। यह समय 1 सेकेंड का है और वह एक चक्कर दौड़ने के बजाय हर दूसरे चक्कर में यह बेईमानी कर रही है। यह बेईमानी उसने आठ घंटे के ठीक बाद शुरू कर दी।

3. उसी समय चींटी की एड़ी में मोच आ गयी और वह हर दो मिनट में केवल 1200 छलाँग लगा पायी।

बताओ

1. दौड़ में कौन जीता?

2. दोनों ने अपनी दौड़ कितने समय में पूरी की?

3. घरेलू मक्खी ने दौड़कर कितनी दूरी तय की?

4. चींटी ने गोल रास्ते के कितने चक्कर लगाए?

उत्तर

चींटी ने 11 घंटे 20 मिनट दौड़कर रेस जीत ली। मक्खी का समय 12 घंटे, 1 मिनट 16 सेकेंड का था। मक्खी 270 मीटर दौड़ी। चींटी ने गोल रास्ते के 382 चक्कर लगाये।

दूसरे दिन विन्सेंट के कमरे में बैठकर, सुबह की चाय पीते हुए दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट को बताया कि शाम को शहर के एक हिस्से में हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हो ही गया। उसने बताया कि अब एक और आफ़त उठ खड़ी हुई है। यह आफ़त आयी है श्री गाँधी-सेवा-समिति वाचनालय के एक साइनबोर्ड के रूप में। शहर के जनरलगंज मोहल्ले में श्री गाँधी-सेवा-समिति का दफ्तर है। इसी दफ्तर में इस समिति का एक वाचनालय भी है। समिति के दफ्तर और वाचनालय के नाम का एक साइनबोर्ड सड़क पर टँगा हुआ था। वह इस तरह टँगा हुआ था कि गाँधी-सेवा-समिति के दफ्तर के छज्जे के एक खम्भे से तार बाँधकर दूसरे सामनेवाले मकान के खम्भे में वह तार लगा दिया गया था। इसी तार पर समिति का साइनबोर्ड झूले की तरह लटक रहा था। इस साइनबोर्ड के नीचे बिजली के तार थे। साइनबोर्ड

बिजली के तारों से 2 फीट 6 इंच ऊँचा था। मोहर्रम के अलम कई सालों से इस बोर्ड के नीचे से बराबर निकलते चले आ रहे थे। यह बोर्ड 6-7 बरसों से लटक रहा था। मोहर्रम के अलम-बरदारों ने इस बोर्ड के नीचे से अलम ले जाने में आज तक कोई एतराज नहीं किया था। इस साल भी एक-दो रोज तक अलब बराबर बोर्ड के नीचे से निकले। लेकिन कल अलमवाले मुसलमान एकदम बिगड़ उठे और बोले कि यह बोर्ड हट जाएगा, तभी अलम निकलेंगे। गाँधी के बोर्ड के नीचे से अलम नहीं निकलेंगे। तनातनी अधिक बढ़ने की शुरुआत यहीं से हुई। समझदार मुसलमान इसको बुरा समझते थे और समझते हैं। पर इस कट्टरपन के आगे उनकी भी नहीं चल पायी। उस दिन बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर जब अलम आगे बढ़ा, तो दुर्भाग्य से छज्जों पर खड़े हुए कुछ हिन्दू भाइयों ने तालियाँ पीट दीं। इस पर अलम फिर पीछे को खिसक गया और लोग अड़ गये। उस दिन काँग्रेस के लोगों ने साइनबोर्ड को न हटाने के पक्षपाती हिन्दुओं को यह कहकर समझाया कि हमारी तरफ से तालियाँ बजी हैं, इसके लिए हमें कुछ प्रायश्चित करना चाहिए, और साइनबोर्ड एक ओर खिसका देना चाहिए। अब आप देखिए कि हमारे हिन्दू भाई इस बात को मान गये। साइनबोर्ड एक ओर हटा दिया गया और अलम निकल गये। अब कल गर्वनर सर मैलकम के पास मुसलमानों की तरफ से तार भेजे गये हैं कि बोर्ड नया है और वह गाँधी के नाम का बोर्ड है, इसलिए मुसलमान गाँधी-बोर्ड के नीचे से अपना अलम नहीं निकाल सकते। जबकि इस बात को सब मुसलमान जानते हैं, कि बोर्ड बहुत जमाने से वहीं पर टँगा रहा है। पर किसी की यह हिम्मत नहीं पड़ी कि वह इस झूठे तार का खंडन करता। गरज यह, कि मामला तूल पकड़ता जा रहा है। साइनबोर्ड अभी वहीं लटका हुआ है। ताज़िए दफनाए नहीं गये हैं। सुनते हैं, चहल्लुम के रोज़ ताज़िए दफनाए जाएँगे। आप होशियार रहिए। हम सबको एहतियात की ज़रूरत है। दामोदर कुंडेल गहरी साँस लेकर चुप हो गया।

विन्सेंट का जहाज़ बन्दरगाह पर लग चुका था। दामोदर कुंडेल चाहता था कि वे लोग जल्दी से निकलकर बन्दरगाह पहुँच जाएँ और काम खत्म कर लें। अगर झगड़ा बढ़ा तो हो सकता है काम पूरा न हो पाये और वापस जाने के लिए विन्सेंट को शाम की गाड़ी छोड़नी पड़े।

दोपहर तक विन्सेंट ने अपना काम खत्म कर लिया। उसने मशीनों के ज़रूरी भुगतान किये, काग़ज़ों पर दस्तख्त किये और मशीनों को गाड़ी से कारखाने तक पहुँचाने का दायित्व और धन दामोदर कुंडेल को दिया। इसी बीच दामोदर कुंडेल ने विन्सेंट को टुकड़ों में बता दिया कि उसकी छोटी बेटी को कभी-कभी आधे सर का दर्द होता है। वह सम्बलबाई का मरहम लगाती है। दर्द कभी-कभी दो दिन तक रहता है। जब तक दर्द रहता है उसे अँधेरे कमरे के एकान्त में रहना अच्छा लगता

है। यह भी बताया कि बड़ी बेटी के विवाह के लिए वह चिन्तित है। कोई सुयोग्य वर नहीं मिलता। उसने यह भी बताया कि अगर दोनों बेटियों की शादी हो जाए तो वह यहाँ का काम बन्द करके वापस कलकत्ता अपने पुश्तैनी मकान और कुछ जीवित बचे पुराने रिश्तेदारों के पास चला जाएगा। यह सब बताते हुए उसने दो बार बेटियों की माँ को याद किया और दो ही बार इस जीवन से मुक्ति की गहरी चाह दिखायी।

शाम को विन्सेंट जब सामान लेकर दामोदर कुंडेल के घर से जाने लगा तो उसकी दोनों बेटियाँ उसे सीढ़ियों तक विदा करने आयीं। बड़ी बेटी ने रास्ते के लिए खाना बाँध दिया था। दामोदर कुंडेल ने घोड़ागाड़ी बुला ली थी। वह विन्सेंट के साथ स्टेशन उसे गाड़ी में बैठाने आया।

स्टेशन पर विन्सेंट ने दामोदर से कहा कि वह उसकी बड़ी बेटी से शादी करना चाहता है। यदि दामोदर को और उसकी बड़ी बेटी को आपत्ति न हो तो मशीनों के साथ दामोदर भी आ जाए। विन्सेंट बाकी सब बातें वहीं कर लेगा। बड़ी बेटी को यदि इससे आपत्ति न हो तब दामोदर के आने से पहले ही वह स्वयं उसे एक तार देकर सूचित कर दे।

विन्सेंट को घर पहुँचने के दूसरे दिन एक तार मिला जिस पर लिखा था ''हैप्पी''। तीन दिन बाद मशीनों के साथ दामोदर कुंडेल भी आ गया। तीन महीने बाद 1933 में विन्सेंट ने दामोदर कुंडेल की बेटी से शादी कर ली। शादी के दस महीने बाद, विवान का जन्म हुआ। विवान के जन्म के पाँच महीने बाद, एक दिन दामोदर कुंडेल अपनी छोटी बेटी को ले आया। उसने बताया कि उसके सर में अब दर्द जल्दी-जल्दी होने लगा है और विन्सेंट उसे बड़े डॉक्टर को दिखा दे। ज़रूरी हो तो इंग्लैंड के डॉक्टरों से भी सलाह ले ले। वह छोटी बेटी को वहीं छोड़ गया। 1945 में जब विवान डगलस ने अँगूठी में घर देखा तो उसे माँ और विन्सेंट के साथ मौसी भी दिखी थी।

विवान के स्कूल के रास्ते में कस्बे का बाज़ार था जो सप्ताह में एक दिन लगता था। इस बाज़ार में दूर के गाँवों तक के लोग नावों से, बैलगाड़ी से, साइकिलों से तरह-तरह की चीज़ें लेकर बेचने आते थे। धूल से भरे इस बाज़ार में कुछ भी मिल सकता था। मछली, नारियल, रस्सी, गहने, अँग्रेजी शर्बत, काग़ज़ के धनुष-बाण, कठपुतली, देशी शराब, कच्चे केले, मोतियों की माला, रंगीन गोटे के कपड़े, सींक की झाड़ू, मिट्टी के खिलौने, कुछ भी। इसी मैदान के कोने में एक दुबला-पतला आदमी तिलिस्मी अँगूठियाँ बेचता था। स्कूल से लौटते समय विवान उस पूरे बाज़ार में

घूमता हुआ आता था। उसे सबसे आकर्षक, रहस्यमयी वह आदमी और उसकी दुकान लगती थी। उसके गले में कई मालाएँ रहती थीं जिनमें सीप, लोहे के टुकड़े और ताँबे के छेदवाले गोल सिक्के लटके थे। कुछ बालों के गुच्छे और एक हड्डी भी थी। उसकी एक बाँह पर कई ताबीज़ बँधे रहते थे। माथे पर तीन रंग का तिलक था। दो रंग की पगड़ी सर पर थी। आँखें और होठ हमेशा लाल रहते थे। जमीन पर ईंट के सहारे टीन का एक लम्बा टुकड़ा रखा था। उस पर सफेद रंग से अलग-अलग तरह की तिलिस्मी अँगूठियों की कीमतें लिखी थीं। उनकी आकृतियाँ बनी थीं। उनके वशीकरण की शक्तियाँ और उनके दूरगामी प्रभाव लिखे थे। उन ग्रहों के नाम थे जो उन अँगूठियों के पहन लेने से अपनी चाल बदल देते थे। उसी टीन के टुकड़े के पास एक चौकोर पेटी में मखमली कपड़ेवाले खाँचों और काँच के ढक्कनवाली पेटी में कई तरह की अँगूठियाँ रखी थीं। बाज़ार की धूल, भीड़ और शोर से गुजरता हुआ, तरह-तरह की चीज़ें, लोग, उनकी पोशाकें और बोलियाँ सुनता हुआ, तरह-तरह के रंग के बर्फ के गोले, कम्पट या चूरन खाता हुआ विवान, अँगूठीवाले और उसकी अँगूठियों को पहले तो दूर से देखता था, फिर थोड़ा पास से देखने लगा। वे कई तरह की अँगूठियाँ थीं। कुछ सिर्फ़ तार से बनी थीं तो कुछ ताँबे या पीतल के छल्लों में थीं। कुछ सिर्फ़ काले बँधे हुए कई धागों से सिर्फ़ एक गाँठ की बनी थीं। इनकी आकृतियाँ और इनके पत्थरों के रंग अलग-अलग थे। विवान जब उन्हें देखता तो उसे लगता कि उसे ये अँगूठियाँ खींचती हैं। इशारे से अपने पास बुलाती हैं। रात में घर का सबसे पुराना नौकर सत्यनारायण जब घर का सबसे आख़िरी काम करते हुए, मिट्टी के चूल्हे पर चढ़ी कढ़ाही में दूध उबालता था, तब वही विवान का कहानी सुनने का समय भी होता था। सत्यनारायण रोज़ विवान को कोई नयी कहानी ज़रूर सुनाता। उन कहानियों में कोई-न-कोई अँगूठी भी ज़रूर होती थी जो कभी किसी जिन्न के पास, राजकुमारी के पास, हंस के पास या मछली के पेट में होती। उन अँगूठियों में या तो किसी की जान बन्द होती थी या फिर हवाओं में उड़ने का या अदृश्य होने का रहस्य होता था। सत्यनारायण दूध उबल जाने के बाद उसे कढ़ाही से उतारकर बड़े भगौने में रखता। भगौने से फिर गिलासों में डालकर घर के सब कमरों में सोने की तैयारी करनेवालों के सिरहाने रख देता। जब तक वह यह सब करता विवान उसके पीछे-पीछे "फिर क्या हुआ" पूछता घूमता रहता। दूध देते हुए, काम खत्म करते हुए सत्यनारायण अपनी कहानी बढ़ाता चला जाता। सत्यनारायण का काम खत्म होते ही उसकी कहानी भी खत्म हो जाती। वह विवान को उसके बिस्तर पर लिटाकर चला जाता। विवान को नींद आती, नींद में सपने आते, सपनों में ऐसी ही कोई अँगूठी होती जिसका मालिक विवान होता था।

अँगूठियों को उस दुकान से गुजरते हुए विवान के पाँव हमेशा रुक जाते। एक दिन विवान अँगूठीवाले के बिल्कुल पास चला गया। उस आदमी ने कोहनी खुजलाते हुए पहले विवान को देखा फिर उन अँगूठियों को जिन्हें विवान देख रहा था।

''चाहिए?'' उसने विवान से पूछा।

सर हिलाकर विवान पीछे हट गया। उसकी आँखों में भय, कौतुक और उत्सुकता थी। अँगूठीवाले ने इशारे से विवान को पास बुलाया। विवान पास आ गया। उसने अपनी चादर के नीचे से एक बड़ी अँगूठी निकाली। फूँककर उसकी धूल साफ़ की, फिर पगड़ी के लटकते मुलायम कपड़े से उसे पोंछा, फिर दोनों आँखों को बन्द कर उसे आँखों से छुआया फिर कुछ बुदबुदाया, फिर चूम लिया, फिर आँखें खोलीं। उसकी आँखें अब ज़्यादा लाल थीं।

''आओ।'' उसने विवान को पास आने का इशारा किया। विवान उसके बिल्कुल पास आ गया।

''बैठो।'' उसने विवान को अपनी चादर के एक हिस्से पर बैठा लिया। स्कूल का बस्ता पास में रखकर विवान चादर पर बैठ गया।

''इस अँगूठी में तुम जो चाहो देख सकते हो।'' उसने मुस्कराकर कहा। विवान ने उसे पहली बार मुस्कराते देखा था। विवान ने इसीलिए पहली बार यह भी देखा कि उसका एक दाँत दूसरे पर चढ़ा है जो मुस्कराने पर ही दिखता है।

''सच?'' विवान ने गहरे अविश्वास से पूछा।

''हाँ...बोलो क्या देखोगे?''

विवान अचानक कुछ नहीं सोच पाया। कुछ देर बाद बोला।

''माँ को।''

अँगूठीवाले ने अँगूठी को एक बार हथेली में बन्द किया और खोला। अब अँगूठी का बड़ा पत्थर उसने विवान की आँखों के आगे कर दिया।

''लो...देखो।''

विवान ने पत्थर पर आँखें गड़ा दीं।

पहले अँगूठी के पत्थर का लाल रंग गायब हुआ। वहाँ हल्की सफेदी आयी, फिर बादलों जैसे रंग के हल्के रुई के गोले उसमें उड़ने लगे। वे रुई के गोले कुछ देर इधर-उधर जाते रहे फिर उनके बीच धीरे-धीरे घर दिखने लगा।

घर उसी तरह दिखा जिस तरह सड़क के मोड़ पर घूमते ही दिखता था। पहले पूरा घर, फिर घर का दरवाज़ा, फिर लम्बा घुमावदार कच्चा रास्ता, रास्ते के दोनों ओर फलों के पेड़, खुशबूदार झाड़ियाँ, फिर पोर्च, फिर गोल खम्भे, अन्दर का बरामदा। अँगूठी में फिर माँ दिखी। विवान ने देखा। घर में दिखनेवाली माँ और

अँगूठी की माँ में कोई फ़र्क नहीं था। अपने बड़े गुस्लखाने की दीवार के कोने में बनी अलमारी में रखी बहुत-सी परखनलियों में से एक परखनली निकाल रही थी। विवान आँखें चिपकाए देखता रहा। उसी अलमारी से उसने एक छोटा-सा बर्नर निकाला। उसकी ऊपर की रुई की बत्ती को उँगलियों से दबाकर उसके बिखरने को समेटा। गुस्लखाने के फर्श के कोने में बैठकर उसने बर्नर जलाया। उसी कोने में एक छोटी-सी शीशी उठाकर उसमें रखे पीले रंग के पेशाब को परखनली में डाला। उस परखनली में कुछ बूँदें केमिकल्स की डाली। क्लैम्प में परखनली को पकड़ा और बर्नर की पीली लौ के ऊपर घुमा-घुमाकर पेशाब को गर्म करने लगी। थोड़ी देर में पेशाब गर्म हुआ। फिर खौलने लगा। उसने बर्नर बुझा दिया। उसी तरह फर्श पर बैठी हुई, पेशाब को ठंडा करती हुई, वह उसे परखनली के अन्दर हिलाकर उसके रंग को देखती रही। रंग जब बिल्कुल भी नहीं बदला तब वह उठी। अलमारी में रखे एक चार्ट में बने रंग से उसने पेशाब के रंग को मिलाया। क्लैम्प से पकड़ी परखनली के पेशाब को उसने बाथरूम के फर्श पर बनी कोने की नाली में पलट दिया। अलमारी के पास वापस लौटकर उसने अलमारी में रखी एक डायरी में तारीख, समय, पेशाब का रंग लिखकर डायरी वापस अलमारी में रख दी।

''क्या हुआ? नहीं दिखी?'' विवान ने अँगूठीवाले की आवाज़ सुनी।

''दिखी।'' अँगूठी से सर हटाकर अँगूठीवाले को देखते हुए विवान बोला।

''क्या कर रही थी?'' उसने पूछा।

विवान चुप रहा। वह उसे नहीं बताना चाहता था कि वह उसके पिता का पेशाब गर्म करके उसकी शक्कर नाप रही थी। विवान ने फिर अँगूठी में देखा। अब वहाँ फिर लाल पत्थर था।

''एक बार सर हटा लेने से जादू टूट जाता है। अब क्या देखोगे?''

विवान के पास देखने के लिए कुछ नहीं था।

''पिता को।'' उसने कह दिया।

अँगूठीवाले ने एक बार फिर अँगूठी अपनी हथेली में बन्द की। आँख बन्द करके कुछ बुदबुदाया, अँगूठी पर फूँक मारी फिर हथेली खोलकर अँगूठी विवान को दे दी।

''लो देखो।''

विवान अपनी उँगलियों में अँगूठी पकड़कर फिर देखने लगा। फिर वैसे ही लाल रंग गायब हुआ, बादल आए, फिर घर आया। इस बार घर के आँगन के पास का छोटा-सा कमरा दिखा। कमरे में अँधेरा था। विवान ने देखा। कमरे के अँधेरे में उसकी मौसी लेटी थी। विन्सेंट अपनी गोद में उसका सर रखकर उसे दबा रहा था। मौसी के सर में जब दर्द उठता था तो उसके कमरे में विन्सेन्ट के जाने के बाद कोई

नहीं जाता था। विवान को नहीं पता था कि पिता मौसी का सर दर्द कैसे दूर करते हैं? विवान के लिए यह सब रहस्यमय था। अब वह अँगूठी में देख रहा था। मौसी के बाल खुले थे। पिता की उँगलियाँ उसके बालों में घूम रही थीं। उसकी भौंहों को सहलाती हुई, उसकी पलकों को सहलाती हुई, उसके होठों पर घूम रही थीं। मौसी के गले पर घूम रही थीं। विन्सेंट ने स्कूल में पढ़ा था कि सिर की नसें बहुत दूर तक फैली हुई, पाँव के अँगूठे तक से जुड़ी रहती हैं। पिता मौसी के सर के नीचे की नसों में उसका दर्द ढूँढ़ते हुए उँगलियाँ फेर रहे थे जो मौसी के खुले बालों के नीचे कभी गुम हो जाती थीं। विवान जानता था कि उसके पिता जमीन के नीचे दबी दुनिया के बारे में भी जानते हैं। वह सब जो कहीं दबा होता है और ऊपर से किसी को नहीं दिखता, वह सब पिता को मालूम रहता था। विवान को विश्वास था कि मौसी की देह पर उँगलियाँ फेरते पिता ज़रूर मौसी की खाल के नीचे दबे हुए दर्द को जैसे ही पहचान लेंगे, मौसी का दर्द ठीक हो जाएगा।

"दिखे?" विवान ने फिर सुना।

इस बार विवान ने अँगूठी से सर नहीं हटाया।

"हाँ।" अँगूठी में देखते हुए विवान बोला।

"क्या कर रहे हैं?"

विवान नहीं बताना चाहता था कि मौसी के सर को गोद में रखकर, उसका दर्द दूर करने की कोशिश कर रहे हैं।

विवान अचानक अपने घर से थक गया। उसने अँगूठी से सर हटा लिया। अँगूठी का पत्थर फिर लाल हो गया। उसने अँगूठी उस आदमी को वापस कर दी।

"तुम कुछ भी दिखा सकते हो?" विवान ने पूछा।

वह आदमी हँसने लगा। एक दाँत पर चढ़ा उसका दूसरा दाँत विवान ने फिर देखा।

"जाओ...पर किसी को बताना मत वर्ना अगली बार कुछ नहीं देख पाओगे।"

विवान का मन था कि वह अँगूठी में किसी दिन रोती-हँसती राजकुमारी, या जिन्न, या तोते या उड़नेवाले समुद्री घोड़े को देखे, जैसा सत्यनारायण रात को अपनी कहानियों में सुनाता था।

"सत्यनारायण को भी नहीं बताएँ?" विवान ने पूछा, "वह तो जादू की ऐसी अँगूठियों के बारे में जानता है।"

"नहीं...उसे भी नहीं।" अँगूठीवाले ने आँखें बड़ी करते हुए, उसकी पुतलियों को नचाते हुए कहा।

विवान ने अँगूठी के बारे में किसी को नहीं बताया। उस रात सत्यनारायण ने जब कहानी सुनायी और उसमें जादुई अँगूठी का ज़िक्र आया जिसमें मनचाही चीज़

दिखती थी, तो विवान ऊबकर, कहानी बीच में ही छोड़कर सोने चला गया।

1946 की गर्मियों की छुट्टियों तक सत्यनारायण के लड़के रामू से विवान की दोस्ती हो गयी। गर्मियों की धूल भरी लू, गहरे सन्नाटोंवाली दोपहरी और खुशबूदार झाड़ियों से महकती मिट्टीवाली सड़क के किनारे की ठंडी रातों में यह दोस्ती धीरे-धीरे गहरी हो गयी।

विवान का घर जहाँ खत्म होता था, उसकी दीवार के पीछे दूसरी बस्ती थी। यह बस्ती, इसकी कच्ची सड़कें और गलियाँ, फैलती हुई अपने बादवाले हिस्से में गुम हो जाती थीं। सत्यनारायण बँगले के पीछे बने नौकरों के कमरों में रहता था। उस आख़िरी दीवार में बने एक छोटे-से दरवाज़े से सत्यनारायण के घर से सीधे उस बस्ती में जाया जा सकता था। बस्ती में विन्सेंट के कारखाने में काम करनेवाले छोटे बाबुओं की, माल पहुँचाने-उठानेवाले व्यापारियों की, उसके कारखानों के टूटे पत्थरों के टुकड़ों से सिलबट्टा और देवताओं की मूर्तियाँ बनानेवालों और बेचनेवालों की दुकानें थीं, कुछ फुटकर घर थे।

रामू देशी खेलों का उस्ताद था। उसने अपनी इस नयी दोस्ती के प्रमाणस्वरूप विवान को पतंग उड़ाना, लट्टू नचाना और कंचे खेलना सिखाया। बदले में विवान ने उसे घर के गलियारे में पड़ी हरी मेज पर जाल लगाकर टेबुल टेनिस खेलना और तीन डंडे गाड़कर, अँग्रेजों का मशहूर खेल क्रिकेट सिखाया। टेबुल टेनिस खेलते समय विवान से लम्बाई में कम रामू, जब उछल-उछलकर सफेद गेंद को जाल से ऊपर फेंकता रहता था, तब सत्यनारायण की तेरह साल की लड़की भी, जो उमर से अधिक उभार अपनी देह में लिये थी और खस के पर्दों पर पानी डालती थी, गलियारे में घूमती खस की ठंडी और खुशबूदार हवा के लालच में, फर्श पर बैठी उन दोनों को खेलते हुए देखा करती थी। खेल के बाद बचे हुए खाली समय में रामू विवान को मुहर्रम के ताज़िए, पैकरों की तलवारें और घावों से बहता लहू दिखाता, दशहरे में उठनेवाली सवारी दिखाता, बस्ती के आगे लगनेवाले भीड़-भरे बाज़ारों में घुमाता, तो विवान उसे विन्सेंट के क्लब में होनेवाले क्रिकेट मैच में ले जाता, विजय मर्चेंट और वीनू मनकड के किस्से सुनाता, चर्च की प्रार्थना दिखाता और विन्सेंट के पास जमा बेशुमार पुराने सिक्के दिखाता।

उस बस्ती में कई पुरानी इमारतें थीं जिनके अन्दर घरों के बँटवारे होते-होते कई छोटे-छोटे आँगन, सीढ़ियाँ, कोठरियाँ और गुसलखाने बन गये थे। ये सब या तो किसी झगड़े के कारण या फिर केवल उसके होने की आशंकाओं के कारण जबरदस्ती बनाये गये थे इसलिए इनमें हवा और रोशनी के रास्ते बन्द थे। इनकी दीवारों पर काई, और इनकी ईंटों के बीच में जंगली बेलें थीं। इस इमारत के ऊपर

हिस्सों में बँटी छत पर जानेवाली कई अँधेरी सीढ़ियाँ ऐसी भी थीं जिनसे होकर छत पर सालों से कोई नहीं गया था और जो दूसरे कई ऐसे कामों में इस्तेमाल होती थीं जिनके लिए सीढ़ियाँ नहीं बनी थीं। इनमें से कई सीढ़ियाँ कुछ दरवाज़ों, रोशनदानों से बिल्कुल चिपकती हुई जाती थीं।

इमारत के ऐसे ही एक घर में शादी के मौके पर दूसरे शहर से आयी हुई मीना नाम की लड़की रात को, मोमबत्ती जलाकर नहाती थी। एक रात उस सीढ़ी से ऊपर जानेवाले एक लड़के ने, जो सीढ़ी से ऊपर छत पर न जाकर, सीढ़ी पर ही एकान्त में, शान्ति से बीड़ी पीने जा रहा था, उसने, ईंटों के बीच की झिर्री से झाँकती, पीली रोशनी देखकर उत्सुकता से झाँका, तो उसे मीना का नंगा बदन बहुत साफ़ और बहुत पास दिखा। उस लड़के ने अपने सूत्रों से पता लगाया कि मीना छः दिन तक शादी के लिए उस घर में रहेगी, और यह भी, कि उसे रोज रात में नहाने की पुरानी आदत है, और यह भी, कि गुसलखाने का बिजली का तार बर्स्ट हो गया है इसलिए वहाँ एक हफ़्ते तक दूसरा बल्ब नहीं लगेगा। उन दिनों दस पैसे में एक बड़ा समोसा या छिलकेवाले आलू की मसालेदार सब्जी के साथ एक बड़ा खस्ता मिल जाता या क्रीम की दोहरी पर्तवाली रंगीन बड़ी पेस्ट्री मिल जाती थी। उस लड़के ने अपने इस शोध के साथ सर्वाधिकार अपने मानते हुए, मीना को नंगा नहाता देखने के लिए दस पैसे का टिकट लगाकर, बस्ती के लड़कों को सूचित कर दिया जिनमें रामू भी था।

विवान रात को कमरे में बैठा विन्सेंट के पुराने सिक्कों को कपड़े से साफ़ कर रहा था जब दरवाज़े पर रामू आया। रामू विवान के कमरे के अन्दर नहीं आता था। सारी दोस्ती के बाद भी कुछ सीमाएँ थीं जिनसे दोनों परिचित थे और जिनका अतिक्रमण न करने के लिए सतर्क भी रहते थे। रामू को देखकर विवान उठकर कमरे से बाहर आया। रामू ने पहले चारों ओर देखा, फिर धीरे-से पंजों के बल उचककर विवान के कान में फुसफुसाते हुए, विवान को मीना के नहाने और उस दृश्य को देखने के लिए लगे टिकट के बारे में बताया। विवान ने रामू को सवालिया निगाहों से देखा। ''मेरे पास दस पैसे नहीं हैं।'' रामू गर्दन झुकाकर बोला। विवान अन्दर गया और मंघाराम की टाफी के पुराने टीन के डिब्बे से दस का सिक्का निकालकर रामू को दे दिया।

''तुमने देखा है?'' उसने विवान से पूछा।

''क्या?''

''लड़की को नहाते हुए?''

''नहीं।''

''देख लो, तुम्हारी भी बुकिंग करवा दूँ?''

विवान ने एक क्षण सोचा फिर कमरे के अन्दर जाकर डिब्बे से दस पैसे का

एक सिक्का और निकालकर रामू को दिया।

''कब?''

''कल रात को...आज तो वहाँ लाइन लगी है।''

दूसरे दिन रात को रामू विवान को उस सीढ़ी पर ले गया। सीढ़ियों पर पिल्लों की तरह कोनों में दुबके, साँस रोके, फूलते पिचकते लड़के कतारे से बैठे थे। मीना नहाने में आधा घंटा लेती थी। पन्द्रह मिनट कपड़े धोने में, पाँच मिनट उसे निचोड़कर बाल्टी में रखने में और पाँच मिनट कपड़े पहनने में। पचपन मिनट का समय होता था जब लड़के पत्थरों के बीच की झिर्री से वह अलौकिक दृश्य देख सकते थे। एक लड़के को देखने के लिए तीन मिनट का समय दिया जा रहा था। इस तीन मिनट की सीमा एक पुरानी कोकशास्त्र की पुस्तक में वर्णित आसन से प्रेरित होकर सुनिश्चित की गयी थी। इस तीन मिनट में वह कौन-सा अंग, किस रूप में और कितना देख सकता था, यह उसका सिर्फ़ और सिर्फ़ भाग्य ही तय करता था। लड़के ज़्यादा अच्छी तरह से दस पैसे का पूरा आनन्द ले सकें, इसके लिए टिकट लगानेवाले लड़के ने ईंटों के बीच की झिर्री को थोड़ा-सा और चौड़ा कर दिया था जिसका पता मीना को नहीं लगा था।

रामू और विवान के पहले सात लड़के थे। वे दोनों भी लाइन में लग गये। झिर्री से झाँकता लड़का झिर्री में आँखें धँसाए, उसे और धँसाता चला जाता। उसकी गर्म साँस से ईंट की पपड़ियाँ उखड़ने लगतीं। उसकी खाल की रगड़ से ईंट का खुरदुरापन चिकना हो जाता। तीन मिनट होते ही टिकट लगानेवाला लड़का उसका कपड़ा खींचता। वह दीवार से हट जाता। हटते हुए चेहरे की नसें फूली होतीं, होठ की पपड़ियाँ सूखी, चेहरा लाल और गहरी साँसें उसकी अतृप्त, उत्तेजित व फुफकारती वासनाओं को बाहर फेंकती होतीं।

पहले रामू ने मीना को नंगा देखा, फिर विवान ने। विवान ने इसके पहले किसी लड़की की निर्वस्त्र देह को नहीं देखा था। विवान ने जब देखा तब मीना कपड़े धो रही थी। वह घुटने मोड़कर, छाती से घुटने चिपकाए, फर्श पर बिछे कपड़े को घिस रही थी। विवान को उसकी झुकी हुई पीठ दिख रही थी। पीठ जहाँ खत्म होती थी उसके आगे का हिस्सा दीवार में दबा था। कपड़े रगड़ने में हिलती हुई मीना की पीठ की तनी, चमकदार, सुनहरे रोओंवाली खाल को ही विवान ने तीन मिनट तक देखा। उन तीन मिनट में विवान को एक ख्याल और आया कि क्या अँगूठी में भी यह सब दिख सकता है?

घर लौटते समय रामू ने विवान को बताया कि उसके हिस्से में मीना की बायीं टाँग आयी थी जिसे पूरा फैलाकर वह पानी से धो रही थी। रामू ने यह भी बताया कि मीना के घुटने के ऊपर एक तिल है और तिल के ऊपर की जाँघ बिल्कुल विवान

के बगीचे में लगे केले के तने की तरह चिकनी है। यह बात दूसरी थी कि तने पर कोई तिल नहीं होता वर्ना केले के तने और मीना की टाँग में कोई फ़र्क नहीं है।

निर्वसन मीना के दिव्य दर्शन के बाद, जैसा कि अगला चरण था, विवान ने जीवन में पहली बार वैशाख ऋतु के ब्रह्म मुहूर्त में हस्तक्रिया की। रामू ने बाद में विवान को वीर्य की शक्ति, निर्माण प्रक्रिया, कान्ति और ओज के बारे में विस्तार से बताया। रामू ने उसे वह कला भी बतायी जिसके द्वारा विवान दुनिया की किसी भी लड़की को 'फ़क' कर सकता है। घर-घर में प्रचलित सम्भोग के देशी शब्द की जगह विवान के परिवेश और अभिजात्य के अनुरूप, अँग्रेजी के सही शब्द का चुनाव कर लेने के सन्तोष, व सुख से भरे, और इस सन्तोष व सुख को बार-बार पाने का लोभ संवरण न कर पाते हुए रामू ने विवान को अपनी उन प्रिय स्त्रियों के बारे में बताया जिनके साथ वह काल्पनिक 'फ़क' करता था। उनमें विशेष रूप से ठेले पर मूँगफली बेचनेवाली एक मोटी अधेड़ औरत, एक बकरी और सरजू नाई का लौंडा था। रास्ते में चलते हुए अक्सर किसी लड़की को देखकर रामू विवान से धीरे-से पूछता 'फ़क' के लिए कैसी है? एक बार रामू ने विवान से पूछा कि वह किसे 'फ़क' करता है तो विवान चुप हो गया। वह रामू को नहीं बताना चाहता था कि वह हमेशा यह काम उसकी बहन के साथ करता था।

मीना प्रकरण के बाद ही एक दिन जब रामू क्रिकेट के खेल में बैटिंग कर रहा था, विवान की फेंकी हुई गेंद रामू की आँख पर लगी। पूरी आँख गेंद की ज़द में आ गयी थी। भौंह से खून भी निकला था, आँख तो लाल ही थी। विन्सेंट रामू को अस्पताल ले गया था जहाँ उसकी भौंह पर तीने टाँके लगे थे।

1947 में जब देश को आजादी मिली, विवान 14 साल का हो गया था। जिस दिन आज़ादी मिली उसके तीन दिन पहले स्कूल में विवान को इस महान घटना पर एक कविता लिखने को कहा गया। विवान ने इस पर कविता लिखने की कोशिश की, पर क्योंकि अपनी कल्पनाओं में वह तब तक सत्यनारायण की लड़की को देखने का आदी हो चुका था इसलिए इस महान घटना पर उसकी कविता अन्ततः कई सुरंगों में घूमने के बाद सत्यनारायण की लड़की की देह के पहाड़ों, कन्दराओं और घाटियों से होती हुई गोश्त और प्रेम की मिली-जुली, उलझी हुई फुफकारती अभिव्यक्ति बन गयी। उसी शाम छत पर, जब बारिश हो रही थी, रसोई के धुँआरे की आड़ में विवान ने उस लड़की को कविता सुनायी। लड़की कविता सुनकर उसका अर्थ व आशय नहीं समझ पायी। वह चुपचाप विवान को देखती रही। उसे उस तरह देखते पाकर विवान ने उसकी छातियों को देखा जो उसकी माँ के दिये हुए ढीले ब्लाउज

के अन्दर होने के बाद भी, पोर्च तक जानेवाले रास्ते के दोनों ओर लगे पेड़ों के अमरूद के बराबर थीं। अमरूद विवान की कमज़ोरी थे अत: उसने उसकी छाती पर बँधे ब्लाउज के हुक खोले। उसकी दोनों छातियाँ नंगी हो गयीं। उसके उभारों पर दो छोटे-छोटे लाल दाने थे, जैसे अँगूठीवाले की जादुई अँगूठी का पत्थर था। अब विवान को वे अमरूद की जगह दो बड़ी, गोल अँगूठियाँ दिखने लगीं जिनमें पत्थर भी थे। विवान उन्हें देखता रहा। विवान को लगा कि अँगूठी की ही तरह वह उसमें जो चाहे देख सकता है। शायद पिता के पेशाब को परखनली में उबालती माँ को या फिर अजीब आवाज़ों में दर्द से कराहती मौसी को या फिर अँधेरे में मौसी की देह पर दर्द की जड़ें ढूँढ़ते पिता को। पर वहाँ कुछ नहीं दिखा। लड़की विवान की तरह कुछ देर देखती रही फिर उसने तेज़ होती बारिश को देखा फिर ब्लाउज वापस खींचकर हुक बन्द कर लिये।

''क्या हुआ?'' विवान ने पूछा।

''कुछ नहीं, तुम अभी छोटे हो।'' लड़की ने कहा और बारिश में भीगती हुई चली गयी।

दो दिन बाद विवान ने कविता की पंक्तियों में कुछ संशोधन करके उसमें दो लाल पत्थरवाली अँगूठियाँ डाली और एक बार फिर छत पर लगे धुँआरे की आड़ में सत्यनारायण की लड़की को कविता सुनायी। इस बार लड़की ने अपनी छातियों को वापस कपड़े से न ढककर उसे विवान के हाथों में दे दिया, और उसी शाम विवान ने उस धुँआरे की आड़ में ही लड़की को बता दिया कि वह अब छोटा नहीं है।

1949 के अन्त में सत्यनारायण के ऊपर चोरी का इल्जाम लगा। विन्सेंट के एक सूदखोर गुमाश्ते ने रोते हुए सत्यनारायण को, घूँसों से मारते हुए दीवार के उसी दरवाज़े से बाहर निकाल दिया जिससे रामू और विवान बस्ती के अन्दर जाते थे। सत्यनारयण की लड़की ने मार खाते हुए, हाथ जोड़ते हुए, अपनी बेगुनाही सिद्ध करने के लिए अपने बच्चों की कसम खाते हुए,सत्यनारायण के पीछे छुपकर रोते हुए विवान को याचना की दृष्टि से देखा था जिसमें एक तरह का अधिकार भाव भी था, जो उसने विवान से, धुँआरे के पीछे प्राप्त किया था। विवान ने कुछ नहीं किया पर बाद में सन् 1966 में रिमाडी के जंगलों में एक अभियान पर निकले विवान ने एक गाँव में उस सूदखोर गुमाश्ते को देखा जो विन्सेंट के मरने के बाद गाँव में ही रहने लगा था। उसने वहाँ बहुत-सी ज़मीन खरीद ली थी। सूदखोरी का जाल फैला रखा था, मजदूरों को बन्धुआ बनाया हुआ था। सूखे में दस गुना ज़्यादा कीमत पर अनाज बेचता था। विवान ने उसे पहचान लिया था। वह विवान के आगे उसी तरह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा रहा था जैसे सत्यनारायण उसके आगे गिड़गिड़ाया था। उसके हाथ में बड़े नगवाली एक अँगूठी भी थी। उस अँगूठी में विवान को पहले

सत्यनारायण दिखा फिर उसके पीछे छुपी विवान को देखती हुई उसकी लड़की दिखी। विवान ने गुमाश्ते को उसी क्षण गोली मार दी थी।

1945 से 1950 के बीच विवान अँगूठीवाले के पास कभी-कभी रुककर घर देखता रहा। घर में कुछ नहीं बदला था। माँ उसी तरह दिन में तीन बार पिता की पेशाब परखनली में डालकर उबालती थी। मौसी के आधे सिर का दर्द उसी तरह अचानक उठता था। वह चीखती हुई उस छोटे अँधेरे कमरे में चली जाती। पीछे-पीछे पिता भी। अँगूठी के बाहर भी विवान ऐसा ही देखता था। बहुत बार उस छोटे अँधेरे कमरे के बाहर, थोड़ी दूर पर, दूसरे बड़े कमरे के सामने खुले गलियारे में बैठी माँ, विवान को चिपकाए हुए फटी आँखों से कमरे के लटके पर्दे के पीछे की सरसराहटों और दर्द से कराहनेवाली आवाज़ें सुना करती।

घर में माँ का पूजा का छोटा-सा कमरा अलग था। यह उसका अपना कमरा था जिसमें कोई नहीं आता था। मौसी भी नहीं, विन्सेंट भी नहीं। उसी तरह, जिस तरह मौसी के सर दर्द के बाद उस छोटे-से कमरे में कोई नहीं जाता था। पूजा के कमरे में कई तरह की परखनलियों की ही तरह कई तरह के ईश्वर थे। उनके आगे अगरबत्ती के छोटे स्टैंड, छोटे कलश, और ईश्वर के चारणों, द्वारपालों की तरह की कई छोटी-छोटी आकृतियाँ थीं। विवान को दोनों छोटे कमरे रहस्यमय लगते थे क्योंकि दोनों में विवान का प्रवेश वर्जित था। माँ के पूजा के कमरे के बाहर उसने अक्सर माँ को गाते हुए सुना था। वे भजन होते थे। कई बार विवान को लगा कि जैसे माँ कहीं जाना चाहती है, पर उसे पता नहीं था, कहाँ?

माँ इतवार को बाहर जाती थी। इतवार की छुट्टी का दिन अलग होता था। माँ, मौसी और विन्सेंट अपने-अपने तरीकों से, अपने छूटे हुए काम या अपने शौक पूरा करते थे। विन्सेंट सुबह चर्च की प्रार्थना में जाता। वहीं से वह क्लब चला जाता जहाँ बिलियर्ड खेलता और दोपहर को बियर पीकर वहीं खाना खाता। शाम को घर पर दोस्तों की दावत होती जो ब्रिज खेलने के बाद देर रात तक वाइन और खाने के साथ खत्म होती।

मौसी उस दिन घर का पूरा काम देखती, माँ नहीं। सुबह का नाश्ता, और विन्सेंट की रात की दावत का इन्तज़ाम वही करती। यहाँ तक कि विन्सेंट की तीनों समय की पेशाब भी वही उबालती। घर की सफाई करवाती, पुराने कपड़ों के ढेर धुलवाती, बगीचे की सब्जियाँ तुड़वाती। खाली दोपहर में वह अपने दो सन्दूक खोलकर बैठ जाती। उसमें से अपनी कई पुरानी चीज़ें निकालकर उन्हें साफ़ करती, सन्दूक में उनकी जगह बदलकर उन्हें वापस रख देती। इन चीज़ों में झूले पर

लगनेवाली चाँदी की पट्टी, दो रुद्राक्ष, चाँदी का वह सरौता जिसमें एक तरफ आदमी और एक तरफ औरत बने थे और जिसके चलने पर सम्भोग की मुद्रा पूरी होती थी, जरी-गोटेवाली दो बहुत कीमती साड़ियाँ, इंग्लैंड का सबसे मशहूर और महँगा इत्र, गहनों से भरी लकड़ी की नक्काशीदार छोटी पेटी, एक कपड़े में बँधे अनाज के दाने, और कुछ ताबीज़ थे।

इतवार को मौसी के सर में दर्द नहीं होता था। विवान ने मौसी और माँ को बातें करते हुए बहुत कम देखा था। कभी माँ कुछ कहती तो मौसी सर झुकाकर सुनती और उसे करती। उसने माँ की बात पर कभी जवाब नहीं दिया। वह कभी ऊँची आवाज़ में नहीं बोलती, कभी माँ से बहस नहीं करती। घर में इस तरह रहती जैसे घर उसका नहीं है। माँ मौसी से बात करते हुए कभी उससे नज़रें नहीं मिलाती।

केवल एक इतवार को ही विवान विन्सेंट के साथ चर्च गया था। चर्च में बहुत-से लोग आये थे। वे सब नये कपड़े पहने थे। वे सब जोर से हँसते और जोर से बोलते थे। विवान को चर्च में छुट्टी बिताना अच्छा नहीं लगा था। माँ के साथ जाना उसे अच्छा लगता था।

माँ इतवार को घर का कोई काम नहीं करती। अपने को घर में रखती भी नहीं। वह शनिवार की रात को ही छह पराठे बनाकर, आम के अचार के साथ एक डिब्बे में रख लेती। इतवार को वह रसोई में पाँव नहीं रखती। नौकरों से बात नहीं करती, यहाँ तक कि पूजा के कमरे में भी नहीं जाती।

वह सुबह जल्दी उठकर नहा लेती। विवान को भी तैयार कर लेती। उसका अपना रिक्शेवाला आठ बजे आ जाता। बाँस की बनी हुई ढक्कनदार टोकरी में वह पराठों का डिब्बा, दो छोटे तौलिए, पानी की एक बोतल, काग़ज़, पेन और रुपयों से भरा कपड़ेवाला बटुआ और तीन छोटी पत्तलें रखकर पोर्च तक पहुँचनेवाले कच्चे रास्ते पर तैयार खड़ी रहती। रिक्शे की घंटी सुनते ही वह विवान को आवाज़ देकर बुलाती और उसके साथ रिक्शे पर बैठकर चली जाती। जाते हुए वह घर में किसी से नहीं कहती कि वह जा रही है।

सबसे पहले वह कस्बे के तारघर में आती। तारघर एक पुरानी इमारत में था जहाँ पहले अँग्रेजों का थियेटर होता था। उसकी ढलुआ छत कई जगह से चटक गयी थी। इमारत के अन्दर सब कुछ पुराना था। उसमें दर्शक दीर्घा थी, नीचे बड़ा हाल था जिसकी दीवारों पर पेंटिंग के कुछ धूमिल रंग, कुछ तिरछी रेखाएँ बची थीं। हाल के एक सिरे पर स्टेज था जिस पर तारघर के सबसे बड़े अफसर की मेज, कुर्सियाँ और अलमारियाँ लगी थीं। उसी हाल में बहुत-सी मेजों पर छोटी-छोटी मशीनें थीं जो लगातार चलती थीं और जिनसे तार भेजे, पढ़े और लिखे जाते थे। इमारत के पीछे कस्बे के धोबियों के घर थे, जो छुट्टीवाले दिन भट्टी पर चढ़े पानी

में कपड़े पटकते हुए खाली मैदान पर रस्सियों से लटकाकर सुखाते थे। रस्सियों पर झूलते रंग-बिरंगे कपड़े विवान को तारघर की इमारत से पहले दिख जाते थे।

रिक्शा इस इमारत के बाहर पीपल के नीचे रुक जाता था। रिक्शे से माँ उतरती। उसके एक हाथ में टोकरी और दूसरे में विवान का हाथ होता। विवान जानता था कि वह विवान का हाथ इसलिए नहीं पकड़ती थी कि वह खो जाएगा, बल्कि इसलिए पकड़ती थी कि वह खुद न खो जाए। विवान ने इसीलिए किसी भी छुट्टीवाले दिन अपना हाथ नहीं छुड़ाया। तारघर की इमारत में घुसते ही एक कमरा था। उसके एक काउंटर पर तार लिये जाते थे। उसी कमरे के एक कोने में काँच के दरवाज़ेवाले केबिन में फोन लगा था जिससे बाहर फोन किये जा सकते थे। उस काउंटर पर कई कतारें लगती थीं जो दोनों ओर खुले दरवाज़ों से निकलकर, बाहर तक फैलती जाती थीं।

पहली कतार तार भेजनेवालों की थी। दूसरी कतार टेलीफोन से बात करनेवालों की होती थी। तार भेजनेवलों की कतार हमेशा लम्बी होती थी। अपने हाथ में भरे हुए फार्म लिए, कम-से-कम शब्दों में अपने सुख या दुख, जल्दी-से-जल्दी अपने आत्मीयों तक भेजने की बेचैनी और उत्तेजना से वे कतार में खड़े-खड़े पहलू बदलते, हिलते रहते। काउंटर पर बैठा बाबू फार्म लेता, उस पर लिखे शब्द गिनता,प्रति शब्द की दर से पूरे मजमून का पैसा जोड़कर पैसे लेता, रसीद काटता और फार्म को अपने सामने रखे दूसरे फार्म के साथ ईंट के चौकोर टुकड़े के नीचे दबाकर रख देता। छुट्टी के इस दिन की प्रतीक्षा में बहुत-से लोग अपने सुखों या दुखों की ख़बर भेजना दूसरे दिनों में स्थगित रखते थे। कम शब्दों में सुख या दुख को कहना या पकड़ना विवान ने तारघर में ही सीखा था। माँ के हाथ पकड़े जाने से उसने यहाँ तक भी सीख लिया था कि मौन से भी सुख या दुख बताया जा सकता है। उसमें सबसे कम पैसे लगते थे। सिर्फ़ पते के। जो कतार में खड़े थे उन्होंने अपने लिखे हर शब्द में अधिक-से-अधिक सुख या दुख भरा था। जैसे कविता में होता था, प्रार्थना में होता था, यातना में होता था। छुट्टी के दिन तारघर की वह पुरानी इमारत, धरती पर बिखरे असंख्य लोगों के बीच सुखों और दुखों का जाल बुनती रहती थी।

दूसरे कोने में शहर से बाहर टेलीफोन करनेवालों की कतार थी। माँ विवान को इस कतार में खड़ा करके बेंच पर बैठ जाती थी। विवान को वह तीस रुपये देती थी। कतार में खिसकता हुआ विवान काउंटर के दूसरे हिस्से में बैठे आदमी के पास जाकर काग़ज़ में पहले से लिखकर रखा हुआ फोन नम्बर, शहर और साधारण कॉल की श्रेणी बताकर तीस रुपये दे देता। 3 मिनट में बात पूरी न हो पाने पर कभी तीन मिनट का समय और लेना पड़ता। पूरे 6 मिनट के पैसे जमा होते थे जो तीन मिनट

में बात खतम हो जाने पर वापस लौटा दिये जाते थे। रुपये और काग़ज़ देकर विवान माँ के पास ही बेंच पर बैठ जाता। जिसका नम्बर मिलता जाता, काउंटरवाला चिल्लाकर उसका नाम बोलता। नाम सुनते ही बेंच पर बैठा या बाहर घूमता हुआ आदमी, हड़बड़ाता हुआ फोन लगे केबिन की तरफ भागता हुआ उसमें घुस जाता। बाहर बैठे लोग केबिन के काँच से उसे देखते रहते। उसके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करते। अपना नम्बर आने का इन्तज़ार करते, उसी तरह हँसने, रोने या फिर गुमसुम हो जाने के अपने उस अनिश्चित भविष्य से भरे हुए, जो उनके अपने नहीं, बल्कि दूसरी तरफ फोन पर बैठे व्यक्ति के हाथ में होता था।

माँ का नम्बर कभी जल्दी आता, तो कभी देर से। बेचैनी में विवान उठकर काउंटर पर बैठे आदमी से अपने फोन के बारे में पूछता। कभी माँ कहती तो, विवान अपने फोन की श्रेणी बदलकर 'अर्जेंट' में डलवा देता। दो बार माँ ने 'लाइटनिंग श्रेणी' में भी नम्बर दिया था जिसके पैसे बहुत ज़्यादा होते थे पर वह तत्काल मिलता था।

माँ का नम्बर मिलने पर काउंटरवाला व्यक्ति आवाज़ न देकर अपनी तरफ देखते विवान को इशारा कर देता। माँ जल्दी से उठती और अपने साथ विवान को और टोकरी को भी केबिन के अन्दर ले जाती। टोकरी विवान को पकड़ाकर वह फोन पकड़ लेती। टोकरी पकड़े हुए विवान माँ और स्टैंड के बीच में खड़ा रहता।

माँ अपने पिता से बात करती थी। वह हर इतवार को निश्चित समय पर किसी दूसरे फोन पर माँ के फोन का इन्तज़ार करते होते। माँ फोन पर जल्दी-जल्दी बोलती। तीन मिनट में वह ज्यादा-से-ज़्यादा बातें कर लेना चाहती थी। वह अपने पिता की तबीयत पूछती, विन्सेंट की पेशाब के बदलते हुए रंगों के बारे में बताती। उधर से उसके पिता शायद मौसी के सरदर्द के बारे में पूछते। इस पर माँ चुप हो जाती। इस चुप होने में भी तीन मिनट का समय बीतता था। माँ को इस बीतते समय का ध्यान दिलाने के लिए विवान उसकी साड़ी का पल्लू पकड़कर खींचता। माँ तब फिर फोन पर बोलने लगती। विवान की छुट्टियाँ, पढ़ाई ओर आगे हॉस्टल जाने के बारे में बताती। तब तक ऑपरेटर बीच में तीन मिनट बीत जाने की सूचना देता जिस पर माँ अक्सर तीन मिनट और माँग लेती। पहले तीन मिनट में वह अपने सुख-दुख निचोड़ चुकी होती इसलिए ये तीन मिनट उसके पास निश्चिन्तता के होते थे। इस दूसरे तीन मिनट में वह कभी विवान से अगर पूछती कि उसके पिता से बात करेगा, तो विवान हमेशा इन्कार कर देता। इस दूसरे तीन निमट में उधर से उसके पिता ज़्यादा बोलते और माँ ज़्यादा सुनती थी। इस पूरे 6 मिनट में विवान टोकरी पकड़े हुए शीशे के पार उस कतार को सरकते हुए देखता जो कम-से-कम शब्दों में बात करनेवालों की थी। उनके पार धोबियों की रस्सी पर सूखते हुए रंगीन कपड़े दिखते

थे।

दूसरे तीन मिनट बिना किसी सूचना और चेतावनी के समाप्त हो जाते थे। एक झटके से फोन कट जाता था। माँ फोन रखकर विवान के हाथ से टोकरी लेती और केबिन के बाहर निकल जाती। विवान काउंटरवाले के पास जाकर रसीद और बचे हुए पैसे मुट्ठी में दबाकर माँ को दे देता। माँ उन सबको वैसे ही टोकरी में डालकर, विवान का हाथ पकड़कर रिक्शे पर बैठ जाती।

माँ फिर यतीमखाने जाती। तारघर से लौटते समय माँ विवान से कोई बात नहीं करती। वह उन छह मिनट में ही होती जो तारघर के केबिन में उसने अपने पिता के साथ फोन पर बिताये थे। विवान अपनी कलाई पर उसकी उँगलियों के दबाव से, घूमने से, गीलेपन से, स्पन्दन से अन्दाज़ा लगाता रहता कि माँ कब उन छह मिनटों से बाहर आ जाएगी। इस बीच विवान उन लोगों के बारे में सोचता रहता जो तार देनेवालों की कतार में खड़े रहते थे। क्या वे भी तार देने के बाद अपने शब्दों से बाहर आने में समय लेते होंगे? माँ यतीमख़ाने पहुँचकर उन छह मिनटों को छोड़ देती थी, पर वे लोग कहाँ जाकर उन शब्दों को छोड़ते होंगे, विवान जानना चाहता था।

रिक्शा यतीमख़ाने के दरवाज़े पर रुक जाता। विवान रिक्शे से उतरता। इस बार माँ रिक्शे से नहीं उतरती। विवान यतीमखाने के अन्दर अकेला जाता।

यतीमख़ाना एक पुरानी गढ़ैया में था जिसका पिछला हिस्सा ढह गया था। उसके बाहर के दरवाज़े से अन्दर के बड़े दरवाज़े तक ऊँची चढ़ाई थी। माँ इस चढ़ाई की वजह से ही अन्दर नहीं आती थी। शुरू में वह दो बार आयी तो देर तक हाँफती हुई, रुकती हुई, चढ़ती रही। उसके बाद से अन्दर आना छोड़कर वह विवान को भेजने लगी। उस चढ़ाई पर चढ़ते हुए विवान थोड़ा आगे झुक जाता। वह चढ़ाई हाथियों या पालकीवालों के हिसाब से बनायी गयी थी। पत्थरों में हल्की खुरखुराहट छोड़ दी गयी थी जिससे पाँव न फिसलें। दो बार घूमकर वह चढ़ाई अन्दर के दरवाज़े तक पहुँचती थी। उस दरवाज़े के अन्दर बड़ी खुली जगह थी जिसके चारों ओर छोटे-छोटे कमरे बने थे। साईस, महावतों और चौकीदारों के इन कमरों में अब यतीम लड़के रहते थे। इतवार का दिन यतीमखाने के लड़कों के लिए भी अलग तरह से आता था जो रिक्शे पर बैठी विवान डगलस की माँ लेकर आती थी।

दफ्तर में यतीमख़ाने का मुंशी विवान के इन्तज़ार में बैठा होता। वह विवान को देखकर मुस्कराता और अपनी पुरानी, ऊँची, लम्बी पुश्तवाली कुर्सी से उतर जाता। छह अँगुलियों वाले एक पंजे के साथ, अपने दोनों पाँवों में चप्पल पहनकर, यतीमख़ाने के बाहर आने के लिए वह उसी चढ़ाई पर लुढ़कने लगता जिससे विवान अन्दर आया था। विवान उसके पीछे-पीछे होता। रिक्शे के पास आकर मुंशी थोड़ा

झुककर एक हाथ को माथे से छुआकर माँ को सलाम करता। माँ जवाब में धीरे-से मुस्कराती। अपनी टोकरी का ढक्कन खोलकर चमड़े के बटुए से सौ रुपये निकालकर मुंशी को देती। मुंशी रुपये लेकर अपने कुर्ते की दायीं जेब में रखता और बायीं जेब से पहले से ही बनाकर रखी हुई रसीद माँ को दे देता। माँ कभी-कभी उससे पूछ लेती कि खाने के लिए रुपये कम तो नहीं पड़ते, कभी पूछ लेती कि पिछले इतवार को बच्चों के लिए क्या खाना बनाया था, कभी खुद बता देती कि इस बार अगर ऐसा खाना बने तो बच्चों को अच्छा लगेगा।

माँ विवान को रिक्शे पर बैठने का इशारा करती। विवान रिक्शे का हुड पकड़कर रिक्शे पर चढ़ जाता। माँ अपनी गोद में टोकरी रखकर फिर उसका हाथ पकड़ लेती। रिक्शा जब तक दिखता मुंशी उसे खड़ा हुआ देखता रहता।

माँ का तीसरा पड़ाव एक पुराना मन्दिर होता। यह कस्बे के बाहर था। रिक्शेवाला वहाँ तक पहुँचने में थक जाता। विवान को कभी समझ में नहीं आया कि माँ के पास जब एक पूजाघर है और उसमें सब तरह के ईश्वर हैं, तब वह इस मन्दिर के परित्यक्त ईश्वर के पास क्यों आती है? विवान उस मन्दिर के ईश्वर को नहीं पहचानता था। वह माँ के उन ईश्वरों में से नहीं था जो परखनलियों की तरह पूजा के कमरे में कतार से रखे थे। माँ का आना जिस तरह तारघर में, यतीमखाने में निश्चित था, उसी तरह इस मन्दिर में भी निश्चित था। कस्बे का ही एक आदमी माँ के आने के पहले, सुबह मन्दिर साफ़ कर देता था। उसके कोनों पर लटके चमगादड़ों को भगा देता था। उनकी बीट साफ़ कर देता था। सूखे पत्ते बटोर देता। गर्भगृह के जाले छुड़ाकर, फर्श पर झाड़ू लगाकर, परित्यक्त ईश्वर को पानी से नहलाकर, धूप-बत्ती जला देता, फूल चढ़ा देता। विवान ने उस मूर्ति को बहुत बार ध्यान से देखा था। वह खंडित थी। उसकी नाक टूटी थी। पूरे पत्थर में छोटे-छोटे छेद हो गये थे। उसका चेहरा जितना भी था उस पर भावशून्यता थी, झाइयाँ, विषाद और विकृति थी। बाद के दिनों में, जब भी विवान ने सौ गुना बड़े दिखानेवाले लेन्स में अपनी आकृति देखी, तो उसे हमेशा इसी परित्यक्त ईश्वर की याद आयी। विवान का चेहरा बाद के दिनों में वैसा ही हो गया था।

माँ उसे छोटे-से मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ते समय विवान को अपने साथ ऊपर ज़रूर ले जाती। अन्दर एक पुजारी माँ की प्रतीक्षा में गर्भगृह के पहलेवाले मंडप में बैठा रहता। माँ को देखकर वह उठता। उसे गर्भगृह के अन्दर ले जाता। पुजारी के पास पहले से फूल, नैवेद्य, जल और धूपबत्ती होती। माँ मूर्ति के पास साफ़ किये हुए फर्श पर पुजारी की बिछायी चादर पर बैठ जाती। विवान को भी वह हाथ पकड़कर उसी चादर पर बैठा लेती। पुजारी धूपबत्ती जलाकर कुछ प्रार्थना करता, कुछ मन्त्र पढ़ता। माँ उसकी इन प्रार्थनाओं और मन्त्रों में अपने मौन के साथ शामिल रहती।

मिठाई को मूर्ति पर चढ़ाकर पुजारी उसे प्रसाद बनाता और माँ को दे देता। माँ उसका एक टुकड़ा तोड़कर उसे अतिशय श्रद्धा से माथे से छुआती फिर मुँह में रख लेती। विवान भी मिठाई लेता। उसी तरह माथे से छुआकर खा लेता।

पुजारी, फिर माँ और विवान को छोड़कर बाहर चला जाता। माँ तब उस ईश्वर से बातें करती। माँ उसे वह सब बताती जो छह मिनट में उसने कुछ देर पहले अपने पिता को बताया होता। विवान को लगता जैसे माँ के पिता माँ के फोन की प्रतीक्षा में बैठे रहते थे, उसी तरह यह परित्यक्त ईश्वर भी माँ की प्रतीक्षा में बैठा रहता है। माँ ईश्वर को और भी बहुत कुछ बताती जिसे विवान कभी सुन पाता, कभी नहीं। यहाँ छह मिनट की सीमा नहीं थी, इसलिए माँ निश्चिन्तता से, देर तक उससे बातें करती। विवान को शुरू के इतवारों में लगा था कि शायद मूर्ति बोलती होगी पर उसकी टूटी नाक और टूटे होठ देखकर उसका यह विश्वास खत्म हो गया था। विवान को नहीं पता था कि यह ईश्वर माँ के पूजाघर में क्यों नहीं है? यह वहाँ से भी क्यों परित्यक्त है और क्यों माँ यहाँ उसकी पूजा करने आती है? उसे पहचानने की कोशिश में कई बार विवान को वह अँगूठीवाला लगा, कभी सत्यनारायण, कभी मौसी और कभी खुद माँ। बाद में विवान ने उसे पहचानने की कोशिश छोड़ दी। पर उस ईश्वर ने विवान को नहीं छोड़ा। बाद में रिमाडी के जंगलों में, जेल में, लावारिसों मय्यतों के शहर में, विवान ने जहाँ झाइयाँ, विषाद भरा कोई खंडित चेहरा देखा, तो वह चेहरा उसे हमेशा इसी परित्यक्त ईश्वर की तरह लगा था।

माँ जब उठ जाती तब विवान भी उठता। माँ गर्भगृह के बाहर निकलकर बाहरी मंडप में आती। पुजारी यहाँ माँ का इन्तज़ार करता होता। माँ अपनी टोकरी से फिर कपड़े का बटुआ निकालती। उसमें से बीस रुपये निकालकर पुजारी को देती। फिर बटुआ वापस टोकरी में रखकर विवान का हाथ पकड़ती, और सीढ़ियों से नीचे उतर जाती। रिक्शे पर बैठने के बाद विवान ने कई बार मुड़कर देखा था। पुजारी भी मन्दिर से सब सामान उठाकर, सीढ़ियों से उतरकर, ईश्वर को छोड़कर जाता दिखा था।

विवान को तब तक भूख लग आती थी। पर इतवार का समय अभी बचा हुआ होता था। रेलवे स्टेशन माँ का अन्तिम पड़ाव था। स्टेशन के सब लोग माँ को पहचानते थे। एक हाथ में टोकरी और दूसरे में विवान का हाथ पकड़कर, खाली प्लेटफार्म के आख़िरी हिस्से में लगे गुलमोहर के नीचे के गोल पत्थर पर वह बैठ जाती। रिक्शेवाला भी रिक्शा बाहर खड़ा करके अन्दर आ जाता। पत्थर के सामने, धूप के किसी टुकड़े या फिर ठंडी छाँह में, जैसी ज़रूरत होती, वह बैठ जाता। माँ टोकरी से रात के बनाए हुए पराँठों का डब्बा निकालती। पत्तल निकालती। पत्तों के दोने निकालती। एक पत्तल में दो पराँठे और अचार की फाँक रखकर रिक्शेवाले को

देती। दूसरी पत्तल विवान को देती, तीसरी पत्तल खुद लेती। दोनों में गाढ़ा दही निकालती। गुलमोहर के नीचे तीनों चुपचाप खाते रहते। प्लेटफार्म की खाली पटरियों के पार खेत दिखते, नीला आकाश दिखता। पत्तों की सरसराहट, हवा का गीलापन, खुशबू और आसमान के रंग विवान को उदास कर देते। यह उदासी कहाँ से पैदा होती विवान समझ नहीं पाता था। कतार में लगे कम-से-कम शब्दों में सुख-दुख कहते लोगों से, यतीमखाने से, कबूतरों से भरी ऊँची मीनारों को ताकते यतीम बच्चों से, परित्यक्त ईश्वर से या प्लेटफार्म के अनन्त, नीरव एकान्त में या समूची माँ के साथ इतनी देर रहने से?

रिक्शेवाला सबसे पहले खाना खत्म करता। वह उठकर पत्तल कोने में फेंकता फिर प्लेटफार्म के दूसरे हिस्से पर लगे नल पर झुककर पानी पीता। बीड़ी निकालकर वहीं बैठ जाता। माँ तब तक बोतल निकालकर पानी पी चुकी होती। विवान को बोतल देती। विवान भी चुल्लू में पानी लेकर कुछ घूँट पीता। उसी पत्थर के अन्दर पड़ी मिट्टी पर माँ के हाथ धुलाता। अपने हाथ धोता फिर बोतल का ढक्कन बन्द करके माँ को दे देता। माँ टोकरी से छोटा तौलिया निकालती। अपना और विवान का हाथ पोंछती, मुँह पोंछती। टोकरी में अपनी बोतल, तौलिया रखकर टोकरी का ढक्कन बन्द कर देती।

अब जाने के लिए कोई जगह नहीं होती। पर इतवार अभी बचा होता। विवान माँ की गोद में सर रखकर, पत्थर की गोलाई में शरीर घुमाता हुआ लेट जाता। माँ उसके बालों में उँगलियाँ फेरने लगती। लेटा हुआ विवान चुपचाप पटरियों को देखता रहता। पटरी के किनारे लगे पानी के पाइप से झूलता मकड़ी के जाले के तार पर चिपका कीड़ा, कीड़े के पार लाल गुड़हल, गुड़हल के पार नीला आसमान, आसमान के पार सुनहरी रेत, उस रेत पर उड़ते परिन्दे...। धीरे-धीरे विवान को एक आवाज़ सुनायी देने लगती। शुरू में विवान को लगा था कि यह पत्तियों के टूटने की, हवा की या पटरियों के काँपने की या भूखे कौओं के परों की आवाज़ है। पर वह माँ की आवाज़ होती थी। धीरे-धीरे वह कोई ग़ज़ल गाने लगती, जिसे बाद में विवान ने समझा था कि वह हमेशा ग़ालिब की होती थी। विवान ने इन ग़ज़लों को हर इतवार सुना था। इतनी बार, कि उसे भी वे याद हो गयी थीं। फिर एक इतवार माँ ने अपनी नहीं, अपनी गोद में सर रखे विवान की आवाज़ सुनी। गुलमोहर ने, धूप ने, हवाओं ने सुनी। कौओं ने, पटरियों ने और खुद विवान डगलस ने सुनी। विवान ग़ालिब की ग़ज़ल गा रहा था।

1950 में जब विवान घर छोड़कर हॉस्टल गया, तब वह अपने साथ जो चीज़ें ले गया उनमें छुट्टी के दिन का परित्यक्त ईश्वर और ग़ालिब भी थे।

मौसी बद्दुआओं से डरती थी।

महीने के आख़िरी इतवार विवान को मौसी के साथ भी रिक्शे पर बाहर जाना पड़ता था। वही रिक्शे वाला शाम को चार बजे आता था। मौसी सबसे पहले माँ के पास आती। कमरे की दहलीज पर सर झुकाकर बोलती, "आती हूँ।" माँ कुछ नहीं कहती। बहुत बार सर उठाकर वह मौसी को देखती भी नहीं। विवान तैयार खड़ा रहता था। जिस तरह सुबह माँ घर से बाहर जाती थी, रिक्शे पर बैठती थी, उसी तरह मौसी भी विवान को लेकर रिक्शे पर बैठ जाती थी। माँ की तरह मौसी विवान का हाथ नहीं पकड़ती थी। उसके पास साँप की खाल का बना एक पर्स होता था, जिसमें वह छोटे-छोटे ताँबे के पूरे गोल या छेदवाले सिक्के रखती थी। रास्ते में मिलनेवाले भिखारियों को, साधुओं को, अपाहिजों को वह रिक्शा रोककर सिक्के बाँटती हुई चलती थी। उसने विवान को बताया था कि इनकी दुआएँ दुनिया की किसी भी दवा से ज़्यादा असरदार होती हैं। इनकी कोई भी बद्दुआ कभी नहीं लेनी चाहिए। मौसी कभी, कहीं भी रुककर, किसी भी रोजमर्रा की निहायत मामूली दिखनेवाली चीज़ को दुआ या बद्दुआ से जोड़ सकती थी। आकाश में उड़नेवाले किसी परिन्दे, किसी की सूजी हुई लाल आँख, सड़क पर कोई नींबू या बालों के गुच्छे को वह शक, भय और प्रार्थना के भाव से देखने लगती थी। दुआओं और बद्दुआओं की दुनिया, उसकी भाषा विवान नहीं जानता था, पर जिस गम्भीरता और तल्लीनता से मौसी इनके किस्से विवान को सुनाती, विवान को लगने लगा था कि परियों, राक्षसों, जादुई चिरागों और उड़नेवाले घोड़ों के अलावा, इस धरती पर न दिखायी देनेवाली इन ताकतवर दुआओं-बददुआओं की भी एक रहस्यमयी दुनिया है, जो ताबीजों, तान्त्रिकों और खुशबूदार धुओं या मौसी से समझी जा सकती है। आख़िरी में विवान को लगने लगा था कि मौसी के हमेशा बन्द रहनेवाले सन्दूक की किसी पिटारी के अन्दर इस तरह की दुआएँ बन्द हैं जिन्हें मौसी अपने हिसाब से अकेले में जमा और खर्च करती रहती है।

विवान जब पहली बार मौसी के साथ गया था, तो उसके लिए सब कुछ नया और माँ की छुट्टी के दिन से अलग था। घर से लम्बी डंठलवाले पीले फूलों को तोड़कर क़ब्रिस्तान से थोड़ा पहले बनी, एक अकेली क़ब्र पर रिक्शा रोककर मौसी ने उन फूलों को उस क़ब्र पर रख दिया था। कुछ देर बुदबुदाने के बाद उसने विवान को बताया था कि यह दो सौ साल पहले एक द्वन्द्व युद्ध में मरनेवाले अँग्रेज की क़ब्र है। जो इस तरह प्रेम के युद्ध में मरते हैं, उनकी क़ब्र हमेशा अलग बनायी जाती है। इस तरह मरनेवाले की क़ब्र पर हर मुराद पूरी होती है। उसके पूरा होने के लिए ईश्वर की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। मौसी की क्या मुराद थी विवान नहीं जानता था,

उसी तरह जिस तरह, बाद में वह यह कभी नहीं जान पाया कि मौसी को क्या बीमारी थी और क्यों वह हक़ीम नूरुल हसन को दिखाने आती थी। सिक्के बाँटने, क़ब्र पर फूल चढ़ाने के बाद मौसी नूरुल हसन के दवाख़ाने ही आती थी। विवान ने रामू से और बताशे बेचनेवालों से, नूरुल हसन का नाम सुन रखा था।

हक़ीम नूरुल हसन अपनी सफेद दाढ़ी, बिना छतवाली सफेद मॉरिस कार और उस कार में बैठी सफेद बुरकोंवाली तीन बेगमों के लिए पूरे कस्बे में जाने जाते थे। एक पुरानी इमारत, जिसकी ऊपरी मंजिल के होटल के कमरे लम्बे समय तक रहनेवालों को महीने के हिसाब से मिलते थे और जिसके पीछे के हिस्से में बन्दूक की, नाई की और बेकरी की दुकान थी, उसकी नीचे की मंजिल के, आँगनवाले दो कमरों में नूरुल हसन का दवाखाना था। रोज शाम को चार बजे उनकी सफेद मॉरिस उनके दवाख़ाने के एक किनारे पर आकर रुक जाती थी। उसमें से आगे की सीट से नूरुल हसन और उनका बावर्ची, जो दवाख़ाने में पुड़िया बाँधने का काम भी करता था, उतरता। आगेवाली सीट की पुश्त झुकाकर तीनों बेगमें उतरतीं। वे तीनों तेज़ी से पीछेवाले दरवाज़े से अन्दर चली जातीं। यह दरवाज़ा एक आँगन में खुलता था जिसका एक दूसरा दरवाज़ा अन्दर के कमरे में जाता था। तीनों बेगमें उस कमरे में जाने के बाद, उस लम्बे समय को अपने तरीके से खर्च करतीं जो नूरुल हसन के मरीज़ों को देखने के समय तक, उनके उठने के इन्तज़ार में, उनके हिस्से में आता था। नूरुल हसन उन्हें क्यों साथ लाते हैं, क्यों साथ रखते हैं, क्यों साथ ले जाते हैं, इस बारे में कस्बे में लोगों के पास अलग-अलग किस्से और अलग-अलग राय थीं, जिनमें बाद में विवान ने पाया था कि मौसी की दुआओं और बद्दुआओं के रेशे भी गुँथे बुने थे।

कार खड़ी करने के बाद सामने के दरवाज़े से नूरुल हसन अन्दर आते थे। मरीज़ उनके इन्तज़ार में बेंच पर, कतार में बैठे होते थे। इस कमरे और आँगन में बने दूसरे कमरे के बीच एक मोटा परदा पड़ा रहता था। नूरुल हसन उस पुराने जमाने के बने गोल कमरे की, शानदार कुर्सी पर बैठते। उस कमरे में बिजली नहीं थी। नूरुल हसन का लड़का, जो उनसे थोड़ा पहले आकर दवाख़ाने का ताला खोलता था, मेज पर रखी तीन बड़ी मोमबत्तियाँ जला देता था। उन मोमबत्तियों की रोशनी में कमरा अलग-अलग जगहों पर, अलग-अलग तरीके से रोशन होता था। पर्दे के पीछे के कमरे में भी एक मोमबत्ती जल जाती थी। नूरुल हसन का बावर्ची लकड़ी के छोटे-से पार्टीशन के पीछे बैठ जाता जहाँ शीशियों में होम्योपैथी की गोलियाँ और सैकड़ों छोटी-छोटी शीशियाँ रखी रहती थीं।

विवान मौसी के साथ जब पहली बार गया तो मौसी विवान को कमरे में बैठने का इशारा करके, पर्दा हटाकर अन्दरवाले कमरे में चली गयी। विवान चुपचाप बैठा

कमरे को, उसकी अलमारियों को, छत को, मोमबत्ती की रोशनी में बेंच पर बैठ मरीज़ों को और नूरुल हसन को देखता रहा था। यह सब उसके लिए बिल्कुल नया और किस्से की तरह था। विवान ने उत्सुकता और ध्यान से सब देखा और सब सुना था। नूरुल हसन ने सामने स्टूल पर बैठे मरीज़ की नब्ज पर हाथ रखा।

''बुखार आ रहा है।'' सूखे चेहरे और बढ़ी दाढ़ीवाला आदमी थकी आवाज़ में बोला।

नूरुल हसन बोले, ''चार आने।''

''दस्त भी हैं।'' मरीज़ बोला।

''आठ आने।'' नूरुल हसन बोले।

मरीज़ फिर कुछ नहीं बोला। नूरुल हसन ने कुछ देर नब्ज देखी फिर सामने रखी पर्ची पर कुछ लिखकर पर्ची अपने लड़के की तरफ बढ़ा दी। मरीज़ स्टूल से उठ गया। लड़के ने उस पर्ची पर कुछ लिखा और पर्ची पार्टीशन के पीछे बैठे बावर्ची को दे दी। बावर्ची ने शीशियों में दवा दी, मरीज़ ने पैसे दिये। बावर्ची ने उसे दवा खाने का तरीका बताया। नूरुल हसन ने तब तक दूसरे मरीज़ की नब्ज पकड़ ली।

''पेशाब कम आ रहा है।'' वह बोला।

''चार आने।'' नूरुल हसन बोले, फिर पूछा, ''कितनी लम्बी धार मार लेते हो?''

''मतलब?'' उसने उन्हें देखा।

''तीन फिट तक धार जाती है?''

''नहीं।''

''आठ आने।'' नूरुल हसन ने नब्ज छोड़ दी।

''कभी खून आया?''

''दो बार।''

''बारह आने।''

''जलन भी होती है।'' मरीज़ अब तक मिनमिनाने लगा था।

नूरुल हसन ने एक बार उसकी दयनीय सूरत को देखा फिर नब्ज छोड़ दी। मरीज़ ने राहत की साँस ली। फिर सब उसी तरह, उसी क्रम में हुआ।

भीड़ बढ़ रही थी। नूरुल हसन कस्बे के नामी और ख़ानदानी हक़ीम थे। नया मरीज़ स्टूल पर बैठा। नूरुल हसन ने उसकी नब्ज़ पकड़ी। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

''काले दस्त आते हैं।'' वह बुदबुदाया।

''चार आने।'' नूरुल हसन भी बुदबुदाए, ''क्या लाल मिर्च के साथ आम

खाया था?'' वह आदमी चुपचाप उन्हें देखता रहा। कुछ देर इसी तरह फटी आँखों से नूरुल हसन को देखने के बाद उसने पूछा।

''क्या आम लाल मिर्च के साथ खाया जाता है?''

''नहीं खाया जाता, इसीलिए जो खा लेता है उसे यह बीमारी होती है।''

''पर जब खाया नहीं जाता तो कोई क्यों खाएगा?''

''खाते हैं लोग। बहुत-से काम नहीं करने चाहिए पर लोग करते हैं।''

उस आदमी ने बेयकीनी से पलकें झपकायीं।

''उदरशूल से तड़पते थे सब, सुनो...तीन सौ साल पुराने मरीज़ का बयान।''...नूरुल हसन ने उसकी नब्ज़ छोड़ दी। वह थोड़ा आगे झुक गया। मोमबत्ती के सामने बैठा लड़का भी आगे झुक गया। विवान डगलस भी थोड़ा झुक गया। नूरुल हसन ने धीरे-से एक शेर पढ़ा—

''आम ए फ़र्ज़न्द मेरे लिए मरगूब है
फ़िलफ़िली सुर्ख़ में देखो जरा क्या ख़ूब है''

शेर पढ़ने के बाद नूरुल हसन ने उस आदमी को घूरा। वह सीधा हो गया। उसकी आँखों में प्रशंसा और दहशत दोनों छा गयीं। वे सब जो झुके थे सीधे हो गये।

''पर आम तो अभी आया भी नहीं। अभी तो बौर फूटे हैं।'' वह मिनमिनाया।

नूरुल हसन को भी याद आया कि उनके घर में भी अभी तक गाँव के बगीचे से आम नहीं आये हैं।

''फिर?'' नूरुल हसन ने पूछा।

''फिर क्या?''

''क्या खाया?''

''कुछ नहीं...खा ही नहीं सकता?''

समय ज़्यादा लग रहा था। दूसरे मरीज़ बेचैनी में पहलू बदलने लगे। मोमबत्ती की लौ काँप रही थी।

''मुल्तानी मिट्टी को पानी में भिगोकर रात भर ओस में छोड़ दो।'' नूरुल हसन अचानक रुक गये।

''ओस तो गिरती होगी न?'' वह बुदबुदाए।

''ओस न भी गिरे पर हवाओं में तो होती ही है। जैसे आँसू न गिरे पर आँख में तो होता ही है।'' वह आदमी हवन्नकों की तरह नूरुल हसन को देखता हुआ बोल रहा था।

''हाँ...ओस में रात भर उस पानी को रहने दो। सुबह उसे बिना छाने ऊपर-ऊपर का पानी खाली पेट पी लो। दो दिन तक पियो फिर सबसे कड़ी चीज़ खाकर देखो। तुम्हारे पेट की आँतें उसे चक्की की तरह पीसकर हजम कर लेंगी।'' उस

आदमी का चेहरा खिल गया। इस बीच नूरुल हसल ने उसकी नब्ज़ छोड़ दी। पैसे भी नहीं बताए थे।

''कितने पैसे?'' उसने पूछा।

''जब ठीक हो तब देना, अभी सिर्फ़ दुआ दो।'' वह आदमी हाथ जोड़कर, सर उठाकर कुछ बुदबुदाया फिर उठ गया। विवान ने उस आदमी को देखा जो दुआ दे रहा था। विवान ने पहली बार दुआ को देखा। उसे दुआ देने के तरीके के बारे में पता लगा। दुआ की ताकत, उसके अस्तित्व, उसकी पवित्रता पर विश्वास हुआ। इस सबसे ऊपर, खास बात यह हुई कि बद्दुआ भी उसके लिए अस्तित्व में आ गयी। पर्दे के अन्दर से खाँसने की आवाज़ आयी तो नूरुल हसन को याद आया कि पर्दे के अन्दर जनाना मरीज़ बैठा है। वह खाँसते हुए पर्दा उठाकर अन्दर चले गये।

विवान उस पर्दे के पीछे कभी नहीं गया। उसे नहीं पता था कि मौसी नूरुल हसन को क्या बताती थी। नूरुल हसन क्या पूछते थे। पर हर बार पहले नूरुल हसन पर्दा हटाकर बाहर आते फिर मौसी आती। मौसी की दवा की पर्ची लिखकर नूरुल हसन अपने लड़के को या बावर्ची को नहीं देते थे। लकड़ी के पार्टीशन के पीछे जाकर वह खुद अपने हाथों से मौसी की दवा बनाते थे। दवा लेकर मौसी ने कभी नूरुल हसन को पैसे नहीं दिये। विवान ने पहले समझा था कि मौसी पर्दे के पीछे, वहीं उन्हें पैसे दे देती होंगी। पर बाद में मौसी ने विवान को बताया था कि नूरुल हसन उससे कभी पैसा नहीं लेते हैं क्योंकि उनके खानदान की क़ब्रों पर विन्सेंट के कारखाने के पत्थर लगे हैं जिन्हें विन्सेंट ने उन्हें आधी कीमत पर दिये थे। विवान डगलस को तब हैरानी हुई थी कि यह बात मौसी कैसे जानती है? शायद इसीलिए कि उसके दर्द के समय सर दबाते हुए विन्सेंट और उसकी जो आवाज़ें सुनायी पड़ती थीं, उसी समय कभी विन्सेंट ने मौसी को यह बताया होगा।

मौसी के जाने और लौटने के दरम्यान दोनों कमरों के बीच का पर्दा चार बार हटता था। पहली बार जब मौसी अन्दर जाती थी, दूसरी बार जब नूरुल हसन अन्दर जाते थे, तीसरी बार जब नूरुल हसन बाहर आते थे, चौथी बार जब मौसी बाहर आती थी।

बाद के दिनों में विवान इस तरह बैठने लगा था कि पर्दा हटते समय वह अन्दर देख सके। टुकड़ों-टुकड़ों में उसने उन तीनों बेगमों को बिना पर्दे के देखा था, जिनके किस्से कस्बे में उसने सुने थे और जिनके बेपर्दा चेहरे कभी किसी ने नहीं देखे थे। विवान ने देखा था कि एक औरत हमेशा पलँग पर लेटी रहती थी। उसके पैर फैले रहते थे। थोड़ी-थोड़ी देर में वह अपनी कमर को उठाती थी। दूसरी ओर पलँग पर लेटी औरत के सिरहाने बैठकर अपने खुले बालों में कंघी करती थी। तीसरी औरत एक कुर्सी पर बैठी रहती थी। कुर्सी के दोनों हत्थों पर उसकी कुहनियाँ

टिकी होती थीं। वह बिना पलक झपकाए, एकटक सामने देखती रहती थी, जैसे मेलों में जादूगर अपने तम्बू के अन्दर जादू में कैद लड़की को सम्मोहित करके, उसकी सुधबुध छीन लेता था। मौसी कहाँ बैठती थी विवान यह कभी नहीं देख पाया।

बाद के दिनों में जब विवान हॉस्टल से घर आता था, तभी मौसी ने एक बार विवान को बताया था कि नूरुल हसन बुरी मौत मर गये। आख़िरी दिनों में उनके अन्दर गहरी दहशत भर गयी थी। हर एक को वह अपना दुश्मन समझने लगे थे। अपनी जान का खतरा समझकर हर एक से छुपते फिरते थे। बिना छतवाली कार में उन्हें पाँच लोग जबरदस्ती खींचकर बैठाते थे तब वह डॉक्टर के यहाँ जाते थे। उन्हें यकीन था कि डॉक्टर उनकी हत्या कर देगा। कुछ दिन दवाएँ खाने के बाद वह ठीक हुए थे और उनका डर जब दूर हो गया था, तब सर्दी की एक दोपहर वह छत पर धूप में बैठे थे। छत पर एक चादर सूख रही थी। एक बहुत बड़ी चील उस चादर को पंजों में दबाकर भागी, तो चादर का एक सिरा उन्होंने पकड़ लिया। चील के पंजों से चादर छुड़ाने की कोशिश में वह मुँडेर पर चढ़ गये ओर वहीं से गिरकर मर गये। अब उनका लड़का उनकी जगह और बावर्ची लड़के की जगह बैठता है। वह भी मोमबत्ती जलाकर मरीज़ देखता है। उन्हीं की तरह नब्ज़ पकड़ते ही पैसे बोलता है। वे तीनों औरतें जिस कमरे में बैठती थीं, वहाँ छापेखाने की मशीन लग गयी थी। मौसी ने पूरे विश्वास से विवान का बताया कि नूरुल हसन की इस बुरी मौत के पीछे किसी की बद्दुआ थी जो चील बनकर आयी थी वर्ना ऐसी मौत क्या किसी ने कभी सुनी थी? उन्हें शक था कि यह बद्दुआ उनकी तीन बेगमों में से उस बेगम की थी जो कुर्सी पर बिना पलकें झपकाए बैठी रहती थी। विवान को नहीं पता था कि मौसी के इस विश्वास के पीछे क्या आधार थे, पर क्योंकि मौसी बद्दुआओं और दुआओं की दुनिया को अपने सन्दूक में बन्द करके रखती थी, उसकी भाषा समझती थी इसलिए विवान ने उसे सच मान लिया था।

विवान पूछना चाहता था कि मौसी अब किस हक़ीम को दिखाती है, किससे दवा लेती है, द्वन्द्व युद्ध में मरनेवाले की क़ब्र पर जाती है या नहीं, पर तब तक मौसी अपना सन्दूक खोलने की तैयारी करने लगी थी।

कड़े से विवान डगलस ने आँखें हटायीं। विवान जहाँ लेटा था,पलँग के उस हिस्से पर अँधेरा था। पलँग के बाकी बचे हुए हिस्से और बचे हुए कमरे में धूप आ चुकी थी। धूप में धूल के रेशे थे, टूटे फर्श की मिट्टी थी, मिट्टी पर कुछ चींटियाँ थीं, दीवारों के कोनों के जाले थे। मेज पर पड़े बर्तन थे, उन पर बैठी मक्खियाँ थीं। पलँग

की लकड़ी की तितलियाँ धूप में थीं। चादर की सलवटें धूप में थीं। गर्डर के उस हिस्से की तरफ के दो कड़े भी धूप में थे। धूप में कोने का सन्दूक था। एक झाड़ू थी, पानी की कुछ बूँदें थीं।

विवान डगलस पलँग से उतर गया। इस धूप की उसे ज़रूरत थी। सूप की तरह पसरी धूप के अन्दर रहने पर उसे आराम मिलता था। विवान डगलस कमरे की खिड़की पर आया। जेल की खुरदुरे पत्थरों वाली ऊँची दीवार के किनारे-किनारे अब भीड़ जमा हो गयी थी। वह कैदियों से मिलने और उन्हें सामान पहुँचाने का दिन था। खाने के छोटे-छोटे डिब्बे, पोटलियाँ, सिगरेट, दवाएँ, ब्लेड, कुछ काग़ज़, साबुन, लोगों के कपड़ों में, हाथों में लटके झोलों में थे। मुलाकात शुरू होने में अभी समय था। रात भर के सफर से आयी या रात भर जेल के बाहर इन्तज़ार में रुकी रहनेवाली औरतें, दीवार के दूसरी तरफ लगे हैंडपम्प पर, अँधेरे में नहाकर, अब बाल खोलकर सँवारती हुई कपड़े बदल रही थीं। उनके साथ आये बच्चे, उनके गीले कपड़े हाथों में तानकर लहराते हुए सुखा रहे थे। उनके साथ के आदमी पुलिसवालों को कोने में ले जाकर उनके तिरछे, कुत्तों की तरह तने कानों में फुसफुसाते हुए उनके चेहरे पर लिथड़ती लिप्साएँ जगा रहे थे। जेल की दीवार पर कौओं के झुंड गर्दन घुमाते हुए, लालची आँखें नचाते भूख से चीख रहे थे। बन्द मिल के दरवाज़े पर अनशन पर बैठे मजदूरों के तम्बू में लोग बढ़ गये थे। वे सर जोड़े हुए काग़ज़ पर मिल चालू करने के लिए नया प्रार्थना-पत्र व नये सुझाव लिखने से पहले उस पर बहस कर रहे थे। माइक लग रहा था। तम्बू के पीछे टीन के गोदाम की छत पर लदी बेलें सूख चुकी थीं। वे बेतरतीबी से फैलती हुई गोदाम की जंग लगी टीनों पर झूल रही थीं। जेल की दीवार और मिल की ऊँची दीवार के बीच सड़क को बाँटनेवाले पत्थर के चबूतरे पर लगी हैनीमैन की मूर्ति पूरी तरह धूप में आ चुकी थी। तस्बीह पर उँगलियाँ फेरनेवाली औरत और उसके साथ रस्सी कूदनेवाली दोनों लड़कियाँ अब चली गयी थीं। खिड़की के नीचे मय्यत कमेटी के दफ्तर के मुंशी का चूल्हा अब जल चुका था। उसका धुँआ ऊपर नहीं आ रहा था। अब वहाँ से तेज़ मसालों की खुशबू उठती हुई ऊपर आ रही थी। उसी तरह, जैसे पहले धुआँ आया था, जैसे धूप आयी थी।

कमरे में यह धूप थोड़ी देर की होती थी, पर इसमें विवान डगलस खड़ा होना चाहता था। इससे उसकी साँस नली की सूजन कम हो जाती थी। उसकी साँस फूलना बन्द हो जाती। इस धूप में अपनी खाल देखने के लिए उसे लेन्स की ज़रूरत भी नहीं पड़ती थी। सिकुड़नें, रन्ध्रों का मैल और गड्ढे चमकते हुए दिखायी देने लगते थे, जैसे पोखर के जल की सतह पर तैरते छोटे-छोटे कीड़े, तिनके, गन्दगी के ढेर दिखते हैं।

सीढ़ियों पर आहट हुई। भैंसों के चट्टे के सामनेवाले होटल का छोटा लड़का अन्दर आया। उसके दोनों हाथों में अखबारों के बनाए हुए काग़ज़ के थैले थे। उन थैलों के छपे हुए अक्षरों की कालिख पर दूर तक फैली हुई चिकनाई चमक रही थी। लड़के ने खिड़की पर खड़े हुए विवान को देखा फिर मेज पर दोनों थैले रख दिये। अन्दर रसोई में जाकर वह दो प्लेट और एक चम्मच ले आया। काग़ज़ के थैलों का सामान उसने पलटकर प्लेट पर रखा। एक प्लेट पर मक्खन की तह लगे दो सिंके हुए टोस्ट थे। दूसरी प्लेट पर अंडों की भुजिया थी। दोनों प्लेट एक-दूसरे से सटाकर वह भी विवान के पास आकर खड़ा हो गया। धूप में अब वह भी था। वह भी खिड़की के बाहर देखने लगा। उसने भी जेल, मिल और हैनीमैन की मूर्ति देखी। उसने कौओं को, उड़ती सूखी पत्तियों को देखा। उसने हाथ बाहर निकाल तैरती हुई एक पीली पत्ती को पकड़ना चाहा। वह उसकी हथेली को छूती हुई निकल गयी। उसे खेल में मजा आने लगा। उसने फिर कोशिश की। दूसरी पत्ती, तीसरी पत्ती, सातवीं पत्ती। आठवीं पत्ती जैसे ही उसकी मुट्ठी में आयी, वह टूटकर रेशों में बदल गयी। वे रेशे उसकी हथेली की चिकनाई में चिपक गये। आँखों के पास हथेली लाकर उसने उन रेशों के पीलेपन को ध्यान से देखा फिर उन्हें सूँघा। उनमें कोई गंध नहीं थी।

"पत्तियों में गंध नहीं होती?" उसने विवान डगलस से पूछा।

"कुछ पत्तियों में होती है।"

"सूखने के बाद भी?"

"हाँ।"

"टूटने के बाद भी?"

"हाँ।"

"आज जेल में बहुत भीड़ है।" जेल की दीवार देखते हुए उसने कहा, "आज होटल पूरा दिन भरा रहेगा, बहुत काम होगा।"

विवान डगलस कुछ नहीं बोला।

"दोपहर का खाना आएगा?" उसने पूछा।

"नहीं।"

"क्यों? दोपहर को आज कुछ स्पेशल बनेगा, शायद गोभी का कीमा, कल रात बहुत गोभी आयी हैं।"

"शायद मैं कहीं चला जाऊँ।" विवान डगलस बुदबुदाया।

"कहाँ?" लड़के ने पूछा।

"बिना दीवार, बिना दरवाज़ेवाले किसी घर में, पर पता नहीं वह कहाँ है।"

"ऐसे कैसे हो सकता है?" लड़के ने पत्ती का खेल छोड़कर हैरानी से

विवान डगलस को देखा।

''क्या?''

''ऐसा घर।''

''होता है।''

''यह कैसे होता है कि कोई कहीं जाना चाहे और उसे पता न हो कहाँ जाना है?''

''ऐसा हो सकता है। बल्लीमारान में एक आदमी रहता था उसके साथ यही हुआ था। वह भी ऐसी जगह ही जाना चाहता था जहाँ उसकी परछाईं भी न हो, बीमार पड़ने पर कोई देखनेवाला भी न हो।''

विवान डगलस ने लड़के को बताना चाहा कि ऐसा अक्सर होता है और बहुत-से लोगों को तो वह जानता भी है, पर लड़का फिर पत्तियों के खेल में मशगूल हो गया था। कुछ देर उसने उन्हें फिर पकड़ने की कोशिश की, फिर कमरे की दीवार पर धूप में उँगलियों की परछाइयों से तीन जानवर बनाये, फिर ऊब गया।

''मैं भी कहीं चला जाऊँगा।'' उसने कहा।

''कहाँ?'' विवान डगलस ने अनायास पूछ लिया।

''पता नहीं।'' लड़का पहले हँसा फिर जोर से खिलखिलाया और चला गया।

विवान डगलस ने अभी मुँह नहीं धोया था। अभी रात का बचा हुआ खट्टापन उसके दाँतों पर चिपका था। जीभ दुर्गन्ध से सनी थी। धूप, अंडों की भुजिया और दाँत साफ़ करने के बीच कुछ देर तक फँसकर लिथड़ने के बाद उसने सर को हिलाया और रसोई में आ गया। उसने फिर चाय का पानी चढ़ा दिया। पानी चढ़ाकर उसने रसोई की छोटी खिड़की से नीचे झाँका। भैंसों के चट्टे पर अब सन्नाटा था। दूध लेनेवाले चले गये थे। एक ट्रैक्टर ट्राली से भूसा उतर रहा था। भैसों के नहलाने की, उनके कमरों की सफ़ाई की तैयारियाँ शुरू हो गयी थीं। विवान डगलस ने रसोई में लगे नल पर अपना मुँह धोया। दाँतों को उँगली से घिसा। उसी जंगली से जीभ साफ़ की। खट्टापन उगलते हुए पीला बलगम बाहर आया। विवान डगलस की आँखों में पानी आ गया। उसने नल के पानी में मुँह ठीक से धोया। मुँह धोने के बाद आस्तीन से उसे रगड़ दिया। चाय का पानी खौल गया था। पानी में दूध, शक्कर और पत्ती डालने के बाद उसने पानी को उबालकर बड़े मग में पलट दिया। मग की भाप को सूँघता हुआ विवान डगलस कमरे में आ गया।

मेज पर रखी प्लेटों के पास ही चाय का मग रखकर वह चमड़े की पुरानी कुर्सी पर बैठ गया। उसने कुर्सी के दोनों चौड़े हत्थों पर अपनी कुहनियाँ रख दीं। उसकी आँखों के सामने अब खिड़की के बाहर का चमकता नीला आसमान था। मग

की चाय पीते हुए वह उस नीलेपन को देखता रहा।

सीढ़ियों पर फिर आहट हुई। मसालों की जो गन्ध खिड़की से आ रही थी अब कमरे के अन्दर आयी। कमरे के उस आधे हिस्से में वह भी उसी तरह फैल गयी जैसे धूप फैली थी। गन्ध के पीछे-पीछे सीढ़ियों की दीवार से चिपककर चढ़ता हुआ मय्यत कमेटी का मुंशी आया। उसके हाथ में एक प्लेट थी। उस प्लेट में मसालों से भर हुए दो लम्बे करेले थे। रात की बची दो सूखी रोटियाँ थीं। विवान डगलस की मेज पर प्लेट रखकर वह फर्श पर घुटने मोड़कर बैठ गया। उसने दोनों घुटने, दोनों हथेलियाँ जमीन पर रखीं फिर अपना पूरा पिछला हिस्सा ऊपर हवा में उठा दिया। कुछ देर वह ऐसे ही पड़ा रहा। उसके मुँह से गहरी फुसफुसाहट या गुर्राहट ऐसा कुछ निकल रहा था। शायद उसकी साँस थी, या हिचकी या फिर वह कुछ धीरे-धीरे बुदबुदा रहा था। विवान डगलस उसे देखता रहा। वह उसके कमरे में जब भी पहली बार सीढ़ियाँ चढ़कर आता था तब इसी तरह पड़ जाता था। वह देर तक ऐसे ही पड़ा रहता था। उसका एक फेफड़ा बढ़ा हुआ था, इतना कि उसने उसके दिल के एक हिस्से को दबाना शुरू कर दिया था। उसके दिल में खून की दौड़ कम हो गयी थी। सीढ़ियाँ चढ़कर पहली बार आने में खून और साँस की मात्रा ठीक रखने के लिए वह यह मुद्रा अपनाता था। यह सिर्फ़ पहली बार ऊपर आने पर होता था। उसके बाद उसका फेफड़ा दिन बढ़ने के साथ-साथ, कुछ दवाओं और कुछ विभिन्न हरकतों से सामान्य होता जाता था। शुरू में विवान डगलस ने उसे अधिक बार ऊपर आने को मना किया था, पर छुट्टीवाले दिन, उसकी धँसी हुई कत्थई आँखोंवाली दुबली-पतली लड़की, खाने की कोई विशेष चीज़ बनाती, तो वह खुद अपने हाथों से ऊपर लाकर विवान डगलस को देता था। वैसे भी, उसे यह तकलीफ़ पहली बार ही होती थी और उसने विवान डगलस को समझाया था कि ऐसा नहीं हो सकता कि वह ऊपर दूसरी बार आये और पहली बार न आये। वह जब भी ऊपर आएगा, जो उसे अक्सर आना होता था, तो पहली बार तो ज़रूर आना होगा। उसके बाद विवान डगलस ने उसे मना करना छोड़ दिया था।

कुछ देर इसी मुद्रा में रहने के बाद वह सीधा हुआ। खिसककर फर्श पर ही दीवार के साथ पीठ टिकाकर बैठ गया। उसने अपने दोनों पाँव सीधे फैला लिये और उन्हें धीरे-धीरे हिलाने लगा। उसके चेहरे का पीलापन खत्म होने लगा। खून की लाली दिखने लगी। कुछ देर साँस लेने के बाद वह मुस्कराया, ''इन्हें खाइए, आज सुबह-सुबह ही मेरा साला कटरी से लाया है। बिल्कुल ताज़े करेले हैं।''

''फिर तुम यह खाओ।'' विवान डगलस ने पहले अंडे की भुजिया और फिर मक्खनवाले टोस्ट की प्लेट एक-एक करके उसकी तरफ बढ़ायी। दो बार प्लेट लेने के लिए दो बार वह दीवार से हटकर थोड़ा आगे झुका और दोनों बार एक-एक

करके उसने प्लेट ले ली। दोनों प्लेट अपने फैले पैरों की गोद पर उसने रख लीं। वह फिर पैर हिलाने लगा। पैरों के साथ प्लेट भी थोड़ा-थोड़ा हिलने लगी। वह फिर दीवार से टिक गया।

''यह सब किस्मत है। आपको नहीं पता था कि आपको आज करेले खाने हैं और मुझे नहीं पता था कि मुझे अंडा खाना है। मेरे घर करेले बने थे जो मुझे खाने थे। आपके पास अंडे थे जो आपको खाने थे। पर सब किस्मत की जादूगरी है। हमारे हाथ में कुछ नहीं है। अपना खाना तक भी नहीं। वह भी नहीं जो हमने अभी-अभी अपने खाने के लिए सामने रखा है, अजब प्रभु है, अजब उसकी माया।'' वह आँखें बन्द करके हाथ बाँधकर ऊपर देखता हुआ बुदबुदाया, धीरे से हँसा फिर सर झुकाकर, हाथ खोलकर अंडे की भुजिया खाने लगा।

''आप आज घर पर रहेंगे न?'' खाते हुए उसने पूछा।

''शायद कहीं चला जाऊँ।'' विवान डगलस भी खाने लगा था।

''कहाँ?''

''पता नहीं।'' विवान डगलस ने कहा। मुंशी ने भी उसे उसी हैरानी से देखा जिस हैरानी से लड़के ने देखा था। मुंशी को विश्वास नहीं हुआ। उसने वही पूछा जो लड़के ने पूछा था।

''ऐसे कैसे हो सकता है?''

''क्या?''

''यही कि कोई कहीं जाना चाहे और उसे पता न हो कहाँ जाना है?''

विवान डगलस ने उसे भी बताना चाहा जैसे लड़के को बताना चाहा था, पर मुंशी सर झुकाकर अंडे की भुजिया खाने लगा था।

विवान डगलस चुप था। उसने करेले के मसालों की गंध को सूँघा फिर लम्बे करेले की पतली तरफ से उसका एक टुकड़ा दाँतों से काटकर मुँह में रखा और चबाने लगा।

''क्यों पूछ रहे हो?'' विवान डगलस ने उसे देखा।

''मैं सोच रहा था कि आज आप हिसाब-किताब के काग़ज़ देख लेते। हमारे पास अगले महीने की अपनी तनख्वाहों के पैसे भी नहीं हैं। अभी हम केवल तीन लाशों को ही घाट या कब्रिस्तान तक पहुँचा सकते हैं। उससे ज़्यादा आ गयीं तो मुश्किल होगी। उधार देनेवाले अब जल्दी सामान नहीं देते। उनके उधार भी बढ़े हुए हैं।'' वह धीरे-धीरे बोल रहा था, ''मैं सदर साहब के घर तीन बार गया। उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। बस यही कहा कि जल्दी ही कमेटी की बैठक बुलाएँगे। पर पिछले दो साल से कोई बैठक नहीं हुई है। मैं ही कभी-कभी उनसे या किसी और से कुछ रुपये माँग लाता हूँ। बहुत गिड़गिड़ाने के बाद मिलते

हैं। मैंने अखबारों में पढ़ा है कि आनेवाले महीनों में पहले एक बड़ा सूखा पड़ेगा, फिर बाढ़ आएगी। इन दोनों के बीच शहर में तीन महामारियों के मच्छर पनपेंगे और बीमारियाँ फैलेंगी। हो सकता है बहुत-सी लावारिस मय्यतें आयें। अब तो जो लावारिस भी नहीं होतीं, उनके गरीब गुरबे घरवाले लावारिस कहकर छोड़ जाते हैं। पर हमें इससे क्या? हमें पैसों के लिए कुछ करना पड़ेगा।''

विवान डगलस को करेले के मसालों की खुशबू अच्छी लग रही थी। मुंशी की कत्थई रंग की धँसी आँखोंवाली लड़की खाना हमेशा अच्छा बनाती थी, पर खाना तभी बनाती थी जब वह बीच-बीच में पड़नेवाले दौरों के बाहर रहती थी। जब उसे दौरे पड़ते थे तो वह तेज़ी से हिलना शुरू कर देती थी, इतनी तेज़ी से कि उसकी हड्डियाँ आपस में खड़खड़ाकर बोलने लगती थीं। पर जब वह ठीक होती, तो मसालेवाले करेले या लहसुन डालकर भुना हुआ बैंगन या फिर मटर के दानों के कबाब जैसी चीज़ें बनाती थी। पर ऐसे दिन कम होते थे क्यों कि दौरोंवाले दिन ज़्यादा होते थे। मुंशी जब भी विवान डगलस के लिए ऐसा कोई विशेष व्यंजन खाने के लिए लाता, तो विवान समझ लेता कि लड़की जल्दी ही अपनी हड्डियाँ हिलाती हुई बीमारी के दौरों में जानेवाली है।

''मैंने आज एक तरीका सोचा है।'' मुंशी बोला, ''आप थोड़ी मदद करें तो हम पैसों की इस किल्लत से निपट सकते हैं। हमेशा के लिए।'' विवान डगलस ने उसे देखा। उसके होठों के कोने पर भुजिया के कुछ रेशे चिपके थे। तेल से उसके होंठ चिकने हो गये थे।

''बीस दिन बाद बकरीद है। मैं कल बकरमंडी की तरफ गया था। वहाँ इस बात के चर्चे थे कि इस बार कुर्बानियाँ बहुत ज़्यादा होंगी। ऊँट और भैंसों तक की भी। आसपास के गाँव में सैकड़ों बरबरा, जमुनापारी, अलवरी और अजमेरा बकरे हैं। मदरसों, यतीमखानों और हमारी तरह की ऐसी कई जमातों ने आपने आदमी दौड़ा दिये हैं कि लोग कुर्बानी के बाद जानवरों की खालें उन्हें दे दें। हजारों खालें दान में बँटती हैं। ये सब लोग वे खालें घरों से इकट्ठा करके टेनरीवालों को बेच देते हैं। टेनरीवालों ने अपने रेट अभी से खोल दिये हैं। छोटे जानवरों की खाल के एक सौ पैंतीस रुपये से डेढ़ सौ तक और बड़े जानवर की खाल के सात सौ रुपये से साढ़े सात सौ रुपये तक मिलेंगे। ये मदरसे, यतीमखाने और कई मुफ़्त शफ़ाख़ाने अपने साल भर का खर्चा इन्हीं खालों को बेचकर एक बार में ही पकड़ लेते हैं। क्या हम ऐसा नहीं कर सकते?'' मुंशी साँस लेकर चुप हुआ। विवान उसे देख रहा था। मुंशी की आँखों में उम्मीद और ख़ुशहाली की रोशनियाँ थीं। वह फिर उत्साह से बोलने लगा। ''हमें भी अगर कुछ बड़ी खालें मिल जायें या फिर छोटी ही सही। हम खुद लोगों से जाकर माँगें या फिर कोई बड़ी कमेटी अपनी मिलनेवाली खालों

से कुछ हमें, खैरात समझकर ही सही, दे दे। आखिर हम भी बेहद और ज़रूरी नेक काम करते हैं और सैकड़ों सालों से करते चले आ रहे हैं। हमारे पास सब रिकार्ड हैं। एक-एक दिन का, एक-एक लावारिस मय्यत का और एक-एक रुपये का हिसाब है। हमें एक बार यह कोशिश ज़रूर करनी चाहिए। यह सिलसिला अगर चल निकला तो हम हर साल इसे कर लेंगे। हमारी आमदनी का, रिज़्क का एक मुस्तकिल रास्ता खुल जाएगा। मैंने तो इस उम्मीद में टेनरी में काम करनेवाले अपने एक भाँजे से बात भी कर ली है। उसने वादा किया है कि वह खालों के बदले कोई उधारी न रखकर हमें फौरन पूरा पैसा नकद दिलवा देगा। तीन दिन तक कुर्बानी चलती रहती है। हमें बस कुछ खालें मिल जाएँ। दसियों हजार खालों में से बस कुछ खालें।'' वह झटके से चुप हो गया। कमरे में उसके हाँफने की आवाज़ गूँजने लगी। प्लेट पर चिपके आख़िरी टुकड़े को खाकर उसने खाली प्लेट दीवार के किनारे फर्श पर रख दी। सर झुकाकर उसने थोड़ी लार अन्दर निगली फिर विवान को देखने लगा।

उसने इतनी बार 'खाल' बोला था कि विवान डगलस को लगा जैसे उसके मुँह में मसालेदार करेला नहीं खाल का टुकड़ा दबा है। मुँह के टुकड़े को निगलकर उसने चाय का घूँट भरा।

''यह हो सकता है। तुमने अच्छा तरीका सोचा है।'' विवान ने कहा, ''यह आसान भी है।'' मुंशी उछलकर थोड़ा आगे आ गया।

''मुझे भी यही लगता है। क्या ठीक होगा? हम खुद घरों में जाकर लोगों से खाल माँगें या फिर इस तरह भटकने की बजाय सीधे कुछ बड़े मदरसों के उलेमाओं से, दूसरी तन्ज़ीमों के मातबर लोगों से बात कर लें।''

''दूसरा तरीका ठीक है। मैं एक मज़मून तैयार कर दूँगा। तुम उसे सब जगह दे देना। वे लोग तुम्हें ज़रूर कुछ बड़ी खालें दे देंगे। यह आसान है। यह होना चाहिए।''

''और यह पैसा? क्या सदर को बताएँ? क्या कमेटी के हिसाब में दिखाएँ?''

''हाँ, हमें कमेटी के नाम पर ही खालें मिलेंगी, हमें रसीद देनी होगी। दिखाना होगा कि इस तरह से रुपया आया।''

''आप आज ही मज़मून लिख दीजिए। इसके पहले कि दूसरे लोग टेनरीवालों से सौदा कर लें, हमें पहुँच जाना चाहिए। बल्कि आप अभी, दोपहर तक ही लिख दीजिए।''

''दोपहर को शायद मैं कहीं चला जाऊँ।'' विवान डगलस ने कहा।

''कहाँ?'' मुंशी ने पूछा, फिर चुप हो गया।

''शाम तक लिख दूँगा। तुम टाइप करके कल दे देना। तब तक तुम एक

लिस्ट बना लो कि कहाँ-कहाँ जाओगे। हो सकता है एक बार में सब याद न आये। कुछ ज़रूरी नाम छूट जाएँ। इसलिए थोड़ी-थोड़ी देर में सोचकर बनाते रहो।''

मुंशी फिर पीछे खिसककर दीवार से चिपक गया। उसने पैर फिर फैला लिये और फैले हुए पैर फिर हिलाने लगा। उसके चेहरे पर अब शान्ति थी। सन्तोष था। विवान डगलस की चाय खत्म हो गयी थी। करेले और टोस्ट भी। उसने खाली बरतन मेज के एक ओर खिसका दिये।

''किसी दिन अलमारियों को भी खोल लीजिए। पता नहीं कितने सालों के काग़ज़, बही, रजिस्टर रखे हैं। उसे भी साफ़ कर लेते हैं। कितने तो ऐसी ज़बानों में हैं जो अब मर चुकी हैं। कमेटी कहे तो कुछ साल के काग़ज़ रखकर बाकी रद्दी में बेच दें। कुछ पैसे उससे भी मिलेंगे।''

विवान चुप था। मुंशी ने एक बार विवान डगलस को देखा, फिर धूप को, फिर उठ गया।

''आपको जाना होगा।'' मेज से उसने अपनी लायी हुई खाली प्लेट उठा ली। फ़र्श पर रखी अंडे की भुजिया की खाली प्लेट मेज पर रख दी।

''अन्दर रख दूँ?'' उसने पूछा। विवान ने मना कर दिया। मुंशी धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर गया। विवान ने कुर्सी पर बैठे हुए ही फिर खिड़की के बाहर सामने फैले आसमान को देखा, देर तक देखता रहा। घुटनों की चिड़ियाँ अब चुप थीं पर विवान जानता था ज़्यादा देर चुप नहीं रहेंगी।

विवान डगलस नीचे उतरना चाहता था पर सीधी, खड़ी सीढ़ियों से नीचे उतरने में घुटनों पर जोर पड़ता था। वापस लौटने में यह दबाव बहुत ज़्यादा हो जाता था। यदि ऐसा होता कि वापस नहीं लौटना होता तो विवान नीचे उतर जाता। पर वापस लौटना होता है। विवान डगलस के पास सीढ़ियाँ उतरते और चढ़ते समय कोई सहारा होता, तब भी दर्द कम होता। विवान ने सीढ़ियों के ऊपर और नीचे के दोनों किनारों पर दीवार में लोहे के दो खूँटे ठोककर रस्सी बाँधी थी। रस्सी पकड़कर उतरने और चढ़ने में विवान को आराम मिला था। रस्सी का नीचेवाला खूँटा वहाँ था जहां मुंशी रहता था। ऊपरवाला खूँटा वहाँ था जहाँ विवान रहता था। रस्सी बाँधने के दो दिन बाद ही विवान को नीचे के खूँटे से रस्सी कटी हुई मिली थी। विवान ने मुंशी से पूछा था। मुंशी इस बारे में कुछ नहीं जानता था। वह भी हैरानी से देर तक कटी हुई रस्सी को देखता रहा था। उस रस्सी में एक जोड़ लगाकर मुंशी ने फिर रस्सी बाँध दी थी। वह फिर कटी मिली थी। विवान के ऊपरवाले खूँटे में रस्सी नहीं कटती थी। मुंशी ने फिर रस्सी बाँधी। इस बार उसने छुपकर नज़र भी रखी। दो दिन तक कहीं-न-कहीं से छुपकर वह रस्सी को देखता रहा। अगर कहीं गया भी तो अपनी औरत को देखने को कह गया। रात में रस्सी फिर कटी थी। मुंशी को यकीन

हो गया, पर विवान को केवल सन्देह था कि यह काम मुंशी की लड़की तब करती है, जब उसको दौरे पड़ते हैं। फिर ऐसा होने लगा कि विवान को जब भी कोई स्वादिष्ट चीज़ खाने को मिली, उसके कुछ ही दिन बाद रस्सी भी कटी मिली। मुंशी ने पूरे विश्वास से और विवान ने सन्देह से यह निष्कर्ष निकाला कि लड़की को दौरे अक्सर इस तरह के व्यंजन बनाने के बाद ही पड़ते हैं और तभी वह रस्सी भी काटती है। इस तरह विवान के अच्छा खाना मिलने और रस्सी कटने के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो गया, पर यह तय नहीं हो पाया कि लड़की रस्सी क्यों काटती है? बाद में एक रात मुंशी ने दरवाज़ा खटखटाकर विवान को नींद से उठाया और बताया कि लड़की रस्सी इसलिए काटती है क्योंकि जब उसे दौरा पड़ता है तो मुंशी उसे रस्सी से बाँधता है। उसके मन में रस्सी के लिए गहरी घृणा, गहरा क्रोध है। उसे दौरे जल्दी-जल्दी आते हैं इसलिए जाहिर है कि वह जल्दी-जल्दी रस्सी काटती रहेगी। रस्सियाँ भी इतनी छोटी पड़ जाएँगी कि गाँठ लगाने से भी दोनों खूँटों तक नहीं पहुँचेंगी। मुंशी ने इसका उपाय भी सोचा था और वह विवान को बताना चाहता था, पर विवान ने उसे सुबह बताने के लिए कहा। सुबह मुंशी ने उसे उपाय बताया कि विवान को जब नीचे आना हो तो वह अपने खूँटे से रस्सी का एक सिरा घुमाकर मुंशी को आवाज़ दे और रस्सी नीचे फेंक दें। मुंशी नीचे रस्सी का सिरा बाँध दे। विवान जब नीचे उतर आये तो मुंशी रस्सी खोलकर खींच ले। विवान को जब ऊपर जाना हो तो मुंशी नीचेवाले खूँटे से रस्सी घुमाकर ऊपर ले जाए और बाँध दे। विवान ऊपर पहुँचकर गाँठ खोले और रस्सी खींच ले। इस उपाय में विवान ने मुंशी को दो दोष बताये। पहला यह कि रस्सी दोहरी लगेगी, दूसरा यह कि मुंशी को ज़रूरत न होने पर भी सीढ़ी चढ़नी पड़ेगी। मुंशी ने पहले दोष को स्वीकार कर लेने का विवान से अनुरोध किया और दूसरे के लिए उसने कहा कि उसका लड़का या कोई भी ऊपर चढ़कर रस्सी बाँध देगा। मुंशी केवल उसी स्थिति में ऊपर चढ़ेगा जब कोई नहीं होगा। इस तरह रस्सी खुलती और बँधती रही। रस्सी कटना बन्द हो गया। विवान ने भी नीचे उतरना कम कर दिया।

घुटने की चिड़िया अभी तक चुप थीं। विवान कुर्सी से उठकर फिर खिड़की पर आ गया। देह अशक्त न होती, रस्सी बाँधने और उतरने की समस्या न होती और विवान के पास जाने की कोई जगह होती, तो वह नीचे उतर जाता। छुट्टी के दिन जब वह कहीं नहीं जाता था, नामालूम तरीके से कमरे के खाली हिस्से में घूमता रहता था। घूमने के दौरान वह बार-बार खिड़की पर आता था। खिड़की से उसे बीतता हुआ दिन, गुजरता हुआ मौसम और रंग बदलता हुआ जीवन दिखता रहता था।

जेल के अन्दर से शोर आना शुरू हो गया था। यह शोर कैदियों से मिलने की

जगह पर बँधे मोटे जाल के दोनों तरफ अलग-अलग खड़े लोगों का होता था। वे रोते थे, हँसते थे, जोर-जोर से बोलते थे। उनके हाथों में छोटी-छोटी खुशियाँ होती थीं। खाने के बन्द डिब्बों में, सिगरेट के पैकेट में, कपड़ों में, मुट्ठी में छुपे रुपयों में। ये खुशियाँ बहुत आवाज़ें करती थीं जो विवान तक भी आती थीं। बन्द मिल के तम्बू के नीचे हारमोनियम पर एक लड़का फटी आवाज़ में, जो ऊपर के सुरों तक आने पर रेलिंग के पटरों पर दौड़ते चूहों की तरह खरखराने लगती थी, पूरी दुनिया के मजदूरों को मिल खुलवाने की लड़ाई में शामिल होने के लिए बुला रहा था। इस क्रान्ति गीत को लिखनेवाला व्यक्ति, जो मिल चालू रहने पर स्पिनिंग मिल का बेहतरीन कारीगर था, सर झुकाए हुए,पूरी तल्लीनता से गीत को सुन रहा था। तम्बू के अन्दर बैठे दूसरे बीस लोग, आपस में फुसफुसाते हुए, हथेली पर चूने और तम्बाकू की खैनी रगड़ते हुए हारमोनियमवाले लड़के को देख रहे थे। जेल की आवाज़ों के साथ उसकी मिली हुई आवाज़ों का एक अलग तम्बू ऊपर आसमान पर तन रहा था। इस तम्बू में उड़ते हुए धुएँ, उड़ती हुई गन्ध, पत्तियाँ और परिन्दों की तरह धीरे-धीरे दूसरे आवाज़ें भी गुम होती जा रही थीं, जो गुब्बारे बेचनेवाले की, बाँसुरी बजाकर बच्चों के खिलौने बेचनेवाले की, भालू का नाच दिखानेवाले की, डुगडुगी की, कीर्तन की, हिजड़ों के नाच की थीं।

हैनीमैन की मूर्ति के नीचे हड्डियाँ बैठानेवाला अब आ गया था। उसी चबूतरे पर, जिस पर अँधेरे में औरत तस्बीह के दानों पर उँगलियाँ फेरती थी और उसके साथ अभी-अभी जवान हुई दो लड़कियाँ रस्सी कूदती थीं, कड़क्को खेलती थीं। हड्डी बैठानेवाले ने चीड़ की लकड़ी के फ्रेम पर जड़ा टीन का छोटा-सा बोर्ड अपने पंजों के पास रख दिया था। यह बोर्ड उसका पूरा परिचय था। इसमें उसके जीवन का इतिहास था और भविष्य का एक निश्चित खाँचा था जिसमें उसके रात-दिन मोल्ड होते रहते थे। उस बोर्ड पर इनसानी अंगों की कुछ अलग-अलग हड्डियाँ बनी थीं। दर्द से पीड़ित और विकृत एक इनसानी चेहरा बना था। उस चेहरे के नीचे हड्डी बैठानेवाले का नाम लिखा था। हड्डी जोड़नेवाले ने पास में एक दूसरा, थोड़ा बड़ा फ्रेम भी निकालकर रख लिया था। यह शीशम की मजबूत लकड़ी पर बना था, जिस पर काँच लगा था। इसमें भारत के पूर्व राष्ट्रपति, सेनाध्यक्ष, कुछ फिल्मी सितारे और क्रिकेट के खिलाड़ी के साथ हड्डी बैठानेवाले की तस्वीर थी। वे अलग-अलग तस्वीरों में उसके साथ खड़े मुस्करा रहे थे। हड्डीवाला किसी तस्वीर में भी नहीं मुस्करा रहा था। उसके चेहरे पर तनाव था और उसकी आँखें तस्वीर खींचनेवाले से भिड़ी हुई थीं। टूटी हड्डी बैठाने के लिए आनेवाले या उधर से गुजरनेवाले दूसरे लोग, कुछ क्षण रुककर उन तस्वीरों को देख कर अपने-अपने अर्थ निकाला करते। ज्यादातर तस्वीरें हड्डी बैठानेवाले की

जवानी के दिनों की थीं और उसके मुकाबले वह अब बहुत कमजोर, दुखी और बीमार हो गया था, इसलिए लोग यह नहीं समझ पाते थे कि यह उसी की तस्वीरें हैं। कोई उससे जब तस्वीरों के बड़े आदमियों बारे में पूछता तो वह बताता कि उसने इन सबकी खिसकी हुई हड्डियाँ कभी-न-कभी बैठायी हैं, बेशक तब ही बैठायी हों, जब वे मामूली इनसान हों। ऐसे ही कोई तस्वीरें नहीं खिंचाता। वह बातों के दौरान ही यह भी इशारे में बता देता कि देश को बचाने, चलाने और मजबूत बनाए रखने में उसका भी एक हिस्सा है और वह इस तरह है, कि उसने इन लोगों को, इनकी हड्डियों को, मजबूत और चलता-फिरता रखा, और उन्हें देश को सुनहरे भविष्य की ओर खींचते हुए ले जाने दिया, जैसे सूरज के रथ को घोड़े खींचते हैं। इन घोड़ों पर बैठी हुई किसी मक्खी की तरह वह अपना जिक्र करता था जिसकी ताकत भी उन घोड़ों के साथ लगी है। अपनी बात के प्रमाण में वह उस फ्रेम के नीचे का हिस्सा दिखाता जिसमें हाथ से लिखी या फिर राष्ट्रीय ख्याति के पोर्टेबल रेमिग्टन टाइपराइटर से टाइप की हुई पुरानी चिट्ठियाँ चिपकी थीं। इन चिट्ठियों पर उनके दस्तखत थे जो तस्वीरों में उसके साथ थे। इन चिट्ठियों में उसके सुनहरे भविष्य की कामना थी। उनमें उसकी हड्डी बैठाने की कुशलता, निपुणता पर भी एक पंक्ति थी। हालाँकि उन चिट्ठियों में यह नहीं था कि उसने उनकी खिसकी हुई हड्डियाँ कभी बैठायी हैं, पर इसके प्रमाण के लिए वह सुननेवाले से ही पूछता कि अगर ऐसा नहीं होता, तो उन्हें कैसे उसके कौशल और उनकी निपुणता के बारे में पता होता और ऐसे ही क्यों वह चिट्ठी लिखते? उसका सवाल सुनकर पूछनेवाला बौखला जाता। वह व्यक्ति जेल में मिलने किसी कैदी से आया होता, या फिर बन्द मिल के तम्बू के किसी मजदूर का बाहर का रिश्तेदार होता जो समय काटने के लिए उसके पास बैठा था, तो वह उठकर मुस्कराता हुआ चला जाता। हड्डी बैठानेवाला फिर अकेला रह जाता। उसका चेहरा हथेलियों पर और कुहनियाँ घुटने पर टिकी रहती थीं। पहली नज़र में वह गहरा चिन्तक या विचारक लगता। दूसरी नज़र में उसकी दयनीयता, गरीबी और चेहरे की भुखमरी दिखने लगती।

वह सिर्फ़ उन पंजों की हड्डियाँ ही बैठाता था जो ग़लत पाँव पड़ जाने से अचानक मुड़ जाते थे। वह उन हड्डियों को हाथ भी नहीं लगाता था जो एक से ज़्यादा जगह से खिसकी होतीं। वह उन हड्डियों की तरफ तो देखता भी नहीं था जो पूरी तरह टूट चुकी होतीं और पंजे के अलावा किसी और अंग की होती थीं। उसके पास जब कोई लँगड़ाता हुआ आता तब उसकी यह स्थायी मुद्रा बदल जाती। वह उसे अपने सामने बैठाकर उसके पंजे को पकड़कर उससे इधर-उधर की बातें करता फिर अचानक एक झटका देता। पीड़ा से उस व्यक्ति के मुँह से चीख निकल जाती। वह सान्त्वना देता हुआ, विश्वास दिलाता हुआ नमक के गर्म पानी से कुछ

देर सेंकने की बात बताता। इस हड्डी बैठाने की उसकी कीमत सिर्फ़ दो रुपये थी। उसके पास जो आते थे वे सब ठीक हो जाते थे। उनकी सबकी हड्डियाँ वापस अपनी जगह पर ठीक से बैठ जाती थीं।

उससे थोड़ी दूरी पर छोटी-सी गोल आकृति की वज़न तौलने की मशीन रखकर एक बूढ़ा बैठता था। जो लोग हड्डियाँ बैठाने आते थे वे या फिर उनके साथ आये दूसरे लोग, हड्डी बैठाने से पहले या बाद में अपना वज़न भी कर लेते थे। वे सब अक्सर बहुत दुबले होते थे। उन्हें हमेशा अपना वज़न घटते जाने और किसी असाध्य रोग में फँसे होने की सम्भावनाओं की सूचनाएँ अपने परिचितों से मिलती रहती थीं। वे धीरे-धीरे इस पर विश्वास करने लगते और अपने वज़न को, कमजोर होते चले जाने के प्रमाण रूप में तौलते रहते थे। यह वज़न वे अक्सर रेलवे स्टेशन या सिनेमा के टाकीज पर लगी रंग-बिरंगी ऊँची मशीनों पर सिक्का डालकर भी करते थे जिसमें वज़न के टिकट के साथ उनका भविष्य भी लिखा होता था और पीछे की तरफ किसी सुन्दर नायिका का चेहरा भी होता था। वज़न के साथ ये दोनों चीज़ें मुफ्त में मिलती थी। फेंके हुए वज़न के टिकट की ये नायिकाएँ लौंडों के लिए एकान्त में एक अन्य काम करने में मदद देती थीं जिसका जिक्र कामशास्त्र की किसी कुंजी में नहीं था। जो टूटी हड्डी बैठाने आते थे, वे वज़न करने का अवसर नहीं चूकते थे। छोटी-सी मशीन पर वे खड़े होते और झुककर खुद सुई पढ़ने की कोशिश करते। तब वह बूढ़ा उन्हें सीधा खड़ा होने की चेतावनी देकर खुद झुकता और मोतियाबिन्द वाली आँख को हथेली से दबाकर दूसरी आँख से उसका वज़न पढ़कर बता देता। बूढ़े के पास कोई छपा टिकट नहीं होता और न उसके साथ मुफ्त देनेवाली भविष्यवाणी और सुन्दर नायिका का चेहरा होता इसलिए वह रंगबिरंगी रोशनियोंवाली मशीन से आधे पैसे लेता था। वह बूढ़ा एक दोहरी तहवाले जूट के बोरे पर बैठा रहता था। मिलनेवाली अठन्नियों को वह अपना घुटना उठाकर बोरे के नीचे डालता रहता था। घुटने के नीचे दबी अठन्नियों के उभार और चुभन से वह अठन्नियों को गिनती का अन्दाज़ा करता रहता था। बीच-बीच में वह उठता और अपने चारों ओर जमा होनेवाली सूखी पत्तियों को पाँव से खिसकाकर एक किनारे करता रहता।

चबूतरे के आख़िरी हिस्से पर मालिश करनेवाला बैठा रहता। उसके पास तीन शीशियों में अलग-अलग रंग का द्रव भरा रहता था जिन्हें वह अलग-अलग जानवरों का निकला हुआ तेल बताता था। पूछने पर वह इस तेल की अनेक अलौकिक तासीरें बताता था। ज़्यादा पूछने पर वह जानवर के शरीर से इस तेल के निकाले जाने की विधि भी बताता था जो बहुधा बहुत क्रूर और भयावह होती थी। इस क्रूरता और भयावहता को वह अनोखे कौशल से अपने तेल के प्रभाव और महत्त्व से जोड़ देता था। जो लोग हड्डी बैठाने आते और अपना वज़न करते, वे फिर

अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से मालिश भी करवा लेते। मालिश करवानेवालों में ऐसे लोग भी होते थे जिनका हड्डी और वज़न से कोई ताल्लुक नहीं था, पर जिनके कैदी के मिलने में समय होता था। उन दिनों सर्दियों की जाती हुई तेज़ सूखी हवा खाल को चटका और खुरदुरा बना देती थी। मालिश की इच्छा और ज़रूरत, दोनों उस मौसम की विशेष आनुषंगिक उत्पत्ति थीं जो मालिशवाले के लिए सबसे ख़ुशनुमा होता था।

मालिशवाला एक चादर बिछाता था जिस पर लिटाकर वह मालिश करता था और जिस पर बड़े-बड़े फूल बने थे। वे फूल इतने बड़े थे कि विवान उन्हें खिड़की से देख लेता था। ये फूल उसके पहचाने हुए थे। ये अब पेड़ों पर खिलना बन्द हो गये थे पर विवान के घर में तब ये बहुत लगे होते थे। विवान की माँ छुट्टी के दिन विवान के साथ इन्हीं फूलों और ग़ालिब को लेकर घर से निकल जाती थी। मौसी भी डुएल में मरनेवाले की क़ब्र पर इन्हीं फूलों को चढ़ाती थी। विवान ने यही फूल सत्यनारायण की बेटी को कविता सुनाने के बाद देना चाहा था पर फूल देने की जगह उसने उसके टूटे हुकवाले ब्लाउज को खोल दिया था और फूल उसकी जेब में दबकर कुचल गया था। घर छोड़ने के बाद विवान को ये फूल कभी नहीं दिखे थे। ये फूल छुट्टी के दिन मालिशवाले की चादर पर दिखते थे। ये फूल उतने ही पुराने थे जितना विवान का बचपन। यह चादर भी उतनी ही पुरानी थी जितना विवान का बचपन, माँ की छुट्टी के दिन का ग़ालिब, विवान की पहली कविता। ये फूल अब खिलना बन्द हो गये थे जैसे मिल बन्द हो गयी थी। इन फूलों के फिर से उगाने के लिए कोई तम्बू नहीं लगा था, कोई गीत नहीं गाया जा रहा था। ये फूल बस विवान की स्मृतियों में उगते थे या फिर ये फूल छुट्टीवाले दिन मालिशवाले की चादर पर खिलते थे। चादर के फूलों पर थोड़ी-थोड़ी देर में अलग-अलग व्यक्ति, अलग-अलग मुद्राओं में कपड़े उतारकर, केवल छोटा-सा लँगोट या डोरीवाली जाँघिया पहनकर रोएदार जाँघों के साथ पड़े रहते, जिनके ऊपर थोड़ी-थोड़ी देर में, अलग-अलग मुद्राओं में, मालिश करनेवाला चढ़ा रहता। वह थोड़ी-थोड़ी देर में हुंकारता। मालिश करवाने वाला भी। दोनों की हुंकार की ध्वनि के आरोह-अवरोह में फ़र्क होता, पहुँच में फ़र्क होता, व्याप्ति और अर्थ में फ़र्क होता। मालिश करनेवाला शक्ति लगाने से, मालिश करवानेवाला आनन्द से हुंकारता। उस समय आनन्द और शक्ति का सार्वजनिक और दुर्लभ संयोग उस चबूतरे पर होता, जो बहुधा रतिक्रियाओं में अत्यन्त सामान्य रूप से गोपनीय तरीके से सम्पन्न होता था।

चबूतरे का यह पूरा दृश्य शाम तक बना रहता, जब तक कि कैदियों से मिलने का समय रहता, जब तक कि उनसे मिलनेवाले आते रहते। जेल का शाम का गजर

बजते ही दीवार के चारों तरफ बिखरे लोग धीरे-धीरे उठते, अपने को समेटते और अलग-अलग दिशाओं में लुढ़कते हुए चले जाते। हड्डीवाला, वज़न करनेवाला और मालिशवाला भी चले जाते। चबूतरे पर सिर्फ़ सूखी पत्तियाँ, तेल की कुछ बूँदें, छुट्टी का बचा हुआ दिन और हैनीमैन की लम्बी काली मूर्ति रह जाती।

खिड़की से उड़ती हुई चिड़िया कड़े पर आकर बैठ गयी। चिड़ियों के बैठने से कड़ा कुछ देर हिलता रहा। विवान को देर हो गयी थी। वह चिड़िया उसे बुलाने आयी थी। उसने चोंच खोलकर विवान को आवाज़ दी। विवान ने इसे सुना। उसने कहा विवान डगलस...विवान...वीवा। विवान डगलस से सर घुमाकर देखा। रसोई की खिड़की की चौखट पर, रसोई के फ़र्श पर चिड़िया का झुंड शोर मचा रहा था। उनके दाने का समय हो गया था। कड़े पर बैठी चिड़िया उड़ती हुई वापस रसोई की चिड़ियों के झुंड में मिल गयी। विवान रसोई में आया। चिड़िया कूदती हुई, पंख फड़फड़ाती, चीखती हुए इधर-उधर भागने लगीं। विवान ने एक डिब्बे में रखी उबली हुई चने की दाल और बचा चावल रसोई के कोने में बिखेर दिया। वे सब दानों को चोंच से उठाने लगीं। पूरी रसोई चिड़ियों से भर गयी। विवान डगलस ने कुछ देर उन्हें देखा फिर रसोई की खिड़की के बाहर देखा। चट्टेवाला दीवार के नीचे दंड-बैठक लगा रहा था। उसके सामने लम्बे बालोंवाला एक साधु, हाथ में पकड़ी चिलम फूँकता हुआ, गिनती कर रहा था। चट्टे के छोटे लड़के कंडे बनानेवालों को गोबर दे रहे थे। चट्टा धोकर साफ़ किया जा चुका था। भैंसें नहला दी गयी थीं, उनके ऊपर लगे पंखे खोल दिये गये थे।

विवान डगलस ने सर घुमाकर वापस रसोई में कूदती हुई चिड़ियों को देखा। स्वयं निरन्तर भय से भरी हुई, वे मनुष्य के एकान्त के भय को दूर करती थीं। इस तलाक मोहाल की पुराने दिनों की पुरानी हवेलियों, मकानों में रहनेवाली वे सब तलाकशुदा औरतें, बूढ़ी रंडियाँ, खालाएँ भी अब इस मोहल्ले के हर घर में अपने-अपने निर्वासन के एकान्त में इन चिड़ियों की तरह भय में घूमती, फड़फड़ाती थी। इसलिए हर घर में अभी तक चिड़ियों के बैठने के झूले बने थे। चिड़ियों के लिए आँगन, बरामदे, छज्जे बने थे। वे सब चिड़ियों को दाना डालती थीं। उनसे बातें करती थीं। शाम तक चिड़ियाँ उन्हीं के आसपास रहती थीं। रात होने पर इन अकेली औरतों के अँधेरे घरों की दीवारों को छूकर चलनेवाली हवाएँ प्रेत की तरह हू-हू करतीं, इन गलियों में दौड़ा करतीं। जिन थोड़े-से घरों में चिराग जलते उनके दरवाज़ों की दरारों से, मुँडेरों से छनकर आती काँपती रोशनियों के द्वीपों में इन औरतों की काँपती परछाइयाँ दिखतीं जो इन रोशनियों की आड़ में किसी आनेवाले का

इन्तज़ार करती रहतीं। पर उनके पास अब कोई नहीं आता, सिवाय चिड़ियों के। इन घरों में बहुत-सी औरतों ने दूर देश के परिन्दों को पिंजरों में बन्द कर रखा था। चिड़ियों के चले जाने के बाद वे रातों को अकेले में उनसे बातें करती थीं। वे उन्हें अपने किस्से सुनातीं। वे उन्हें बतातीं कि वे खुद उनकी तरह उड़ना चाहती हैं। वे धीरे-धीरे उन अजनबी परिन्दों की ज़बान समझने चलने लगी थीं। खुद बोलने लगी थीं।

1988 में विवान जब जेल से छूटा और उसने इस लावारिस मय्यत कमेटी की नौकरी की, तो दफ्तर में रखी पुरानी जिल्दों को पलटते हुए उसे पुराने काग़ज़ों में दबी कुछ ग़ज़लें, कुछ ख़त और कुछ डायरियों के काग़ज़ भी मिले, जो इस घर में रहनेवाली औरतों ने लिखे थे या फिर उन औरतों ने लिखे थे जो इस घर की औरतों से मिलने आती होंगी उन सबमें क़फ़स की तीलियों का, परवानों का, परिन्दों का ज़िक्र था और चिड़िया बनने की ख़्वाहिश थी। दीवारों में बनी इन गहरी अलमारियों में बन्द ये ख़्वाहिशें कभी पूरी नहीं हुईं। वे सब औरतें चिड़ियों में न बदलकर डरावनी, सूखी और बूढ़ी लावारिस लाशों में बदल गयी होंगी, जिनके दफनाने या जलाने का कोई-न-कोई ज़िक्र इन रोज़नामचों में उस समय के मुंशी ने ज़रूर दर्ज किया होगा।

चिड़ियों ने और दाल माँगी। अपनी चोंचें खोलकर, गर्दन को थोड़ा-सा उठाकर, इधर-उधर उछलती हुई वे विवान डगलस का नाम ले रही थीं। विवान ने कटोरे से सारी दाल निकालकर फ़र्श पर बिखेर दी। धूप के उस हिस्से में चमकती हुई दालों के दाने चुगती हुई चिड़ियाँ उस पूरे कमरे को अपनी ख़ुशी से हिला रही थीं।

सीढ़ियों पर आहट हुई। वही लड़का था जो सुबह अंडे की भुजिया लाया था। वह अन्दर आया। उसने मेज पर रखी खाली प्लेट उठायी। उसने रसोई में, चिड़ियों के घिरे विवान डगलस को देखा तो वह खिल गया। उसने इतनी सारी चिड़ियाँ एक साथ नहीं देखी थी। हँसता हुआ वह रसोई की तरफ बढ़ा। विवान ने उसे वहीं रोका। वह अन्दर आता तो चिड़िया एक बार तो उड़ ही जाती। विवान चिड़ियों की लय को तोड़ना नहीं चाहता था। वह खुद कमरे में आ गया।

''इतनी सारी चिड़ियाँ।'' लड़का लालच में उन चिड़ियों को देखते हुए बोला, ''पत्तियों की तरह...''

विवान ने हैरानी से उसकी बात सुनी। टूटती पत्ती की तरह चिड़ियों के उड़ने की उपमा उत्तेजक थी। कुछ देर चिड़ियों को देखने के बाद लड़के ने विवान को देखा।

''क्या हुआ?'' उसने विवान से पूछा।

''कैसा क्या?''

''बाहर जाना था न?''

विवान कुछ नहीं बोला।

''दोपहर का खाना आएगा?''

छुट्टी के दिन विवान का खाना वही लाता था। विवान फिर कुछ नहीं बोला। उसे ख़ुद नहीं पता था कि वह बाहर जाएगा या नहीं। लड़के ने हाथ में पकड़ी प्लेट पर बचे हुए करेले के टुकड़े और मसाले को देखा फिर बड़ी खिड़की से बाहर। अब वहाँ वे सूखी पत्तियाँ नहीं थीं जो सुबह उसकी हथेली पर गिर रही थीं।

लड़का खिड़की पर आ गया। उसने पत्तियों को पकड़ने की उम्मीद में हाथ बाहर निकाला। उसकी छोटी हथेली से कुछ हवाएँ गुज़री, कुछ नमी गुज़री। उनमें पत्तियाँ नहीं थी। उसने विवान को देखा।

''पत्तियाँ कब गिरती हैं?''

विवान ने उन्हें हमेशा गिरते देखा था। वे देर रात तक गिरती थीं, बर्फ में गिरती थीं, स्मृतियों में गिरती थीं। लड़का विश्वास नहीं करता अगर विवान यह बात कहता, उसी तरह जिस तरह लड़का इस पर विश्वास नहीं कर रहा था कि कोई बाहर भी जा सकता है, जब उसे पता न हो कि कहाँ जाना है।

विवान भी खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। बाहर हल्की पीली चमक थी। विवान इसे पहचानता था। यह उसके अन्दर भी रहती थी। यह स्मृतियों की होती थी।

सीढ़ियों पर फिर आहट हुई। आहट के कुछ देर बाद मुंशी दिखा। इस बार वह अजीब तरह से दिखा था। पहला इसका सर, फिर झुके कन्धे, फिर धड़ और फिर वह पूरा दिखा था। वह शायद सीढ़ियों पर बैठता हुआ आया था या फिर आख़िरी सीढ़ी तक आकर फेफड़े की वजह से दोहरा होकर झुक गया था। कमरे के दरवाज़े के पास आकर वह खड़ा हो गया। उसने खिड़की पर उन दोनों को खड़े देखा। वे दोनों भी उसे देख रहे थे। धीरे-धीरे चलता हुआ वह भी खिड़की पर आया। वह भी वहाँ खड़ा होकर बाहर देखने लगा। अब तीनों खिड़की से बाहर देख रहे थे।

मुंशी कुछ देर हाँफता रहा।

''आपको कहीं जाना है न?'' उसने विवान से पूछा। यही लड़के ने पूछा था। विवान ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया था। विवान ने मुंशी को भी कोई उत्तर नहीं दिया।

''बकरों की खाल का मज़मून लिख देते।'' मुंशी बुदबुदाया। लड़के ने हैरानी से मुंशी को देखा। वह बकरों की खाल के रहस्य को भी जानना चाहता था, जिस तरह सूखी पत्तियों के हर रहस्य को।

''इसीलिए पूछ रहे हो?'' विवान ने पूछा।

''नहीं...दूसरा काम है?''

विवान ने अब मुंशी को देखा।

''उसे अब फिर से दौरे पड़ रहे हैं। अभी बाँधकर आया हूँ। मुझे आपको लेकर एक जगह जाना है। मैं नहीं चाहता आप दो बार नीचे उतरें और चढ़ें। जब आप कहीं जाने के लिए उतरेंगे तभी मैं साथ चला चलूँगा। इसीलिए पूछ रहा था कि आप कब जाएँगे?''

''तुम्हें कहाँ जाना है?'' विवान ने पूछा, ''हो सकता है मैं कहीं न जाऊँ।''

''अगर ऐसा है तो आपको सिर्फ़ मेरे लिए ही उतरना पड़ेगा। मुझे एक ऐसी नाव की कील चाहिए जो हर समय पानी में डूबी रहती हो।''

लड़के ने फिर मुंशी को देखा। बकरे की खाल से ज़्यादा रहस्यमय यह कील थी जो नाव में लगी हो और हर समय पानी में डूबी रहती हो। लड़के के पास बहुत-से रहस्य जमा हो गये थे। पत्तियों के, चिड़ियों के, बकरे की खाल के, नाव की कील के। विवान खिड़की से हट गया। मुंशी भी। विवान पलँग के पास रखी कुर्सी पर बैठ गया जहाँ कुछ देर पहले बैठ कर उसने करेला खाया था। मुंशी उसी दीवार के साथ, उसी तरह पैर फैलाकर बैठ गया, जहाँ कुछ देर पहले उसने अंडे की भुजिया खायी थी। दोनों को इस तरह बैठा देखकर लड़का भी खिड़की से हट गया।

''तो...खाना नहीं आएगा?'' लड़के ने सीढ़ियों की तरफ जाते हुए विवान से पूछा। विवान ने सर हिला दिया। उसे याद आ गया कि उसके पास फ्रिज में अभी दो उबले आलू, बेमौसम की एक पीली गाजर और कुछ कच्ची मटर हैं। अगर वह कहीं नहीं गया, तो उन्हें मिलाकर उबाल लेगा। उसे लगा कि चिड़ियों को सारी दाल न डालकर कुछ बचा लेता, तो उसे भी मिला लेता, पर हो सकता था तब वे चिड़िया शायद अपनी बची हुई भूख को उछालती हुई, विवान...विवान डगलस...चिल्लाती रहतीं।

लड़का सीढ़ियों से उतर गया। मुंशी ने पैर थोड़े चौड़े करके पूरी तरह फैला दिये। उसने विवान को कुछ देर फटी-फटी आँखों से देखा फिर थूक में लिपटी जीभ को हिलाता हुआ फँसी आवाज़ में बोलने लगा।

''पूरा किस्सा यह है कि मुझे एक तान्त्रिक ने इस कील के बारे में बताया है। वह कहता है कि वह लड़की को ठीक कर देगा, अगर उसे ऐसी कील मिल जाए।

उसकी अँगूठी बनाकर वह उसकी उँगली में पहनाएगा। कील अगर उस नाव की हो जो गंगा में चलती है, तो और भी अच्छा है। वह कहता है कि हर नाववाला अपनी नाव की ऐसी कीलों के बारे में जानता है क्योंकि यह विद्या उतनी ही पुरानी है, जितनी कि नावें। नाववालों और तान्त्रिकों की सारी पीढ़ियों ने कभी-न-कभी ऐसी कीलों को मन्त्र से सिद्ध किया है। पर माँगने पर कोई नाववाला नहीं देगा। वह मानता है कि कील निकालते ही, उसकी रोजी-रोटी, रिज़्क की बरकत चली जाती है। हमें इसे चुराना पड़ेगा। रात को गंगा के किनारे खड़ी नावों में से किसी से भी। तान्त्रिक कहता है कि चोरी की हुई कील का असर माँगी गयी कील से बहुत ज़्यादा होता है, जिस तरह चोरी के शालिग्राम का होता है। पेंदे की कील सबसे अच्छी है...पर कैसे मिलेगी? हम कैसे चुराएँगे?''

''हम'' पर विवान डगलस ने उसे देखा।

''तुम्हें अभी कहाँ जाना है...कील चुराने?''

''नहीं नाव देखने। चोरी तो रात को ही होगी। जो चोरी का समय है। पर मैं अकेले नहीं कर पाऊँगा। आप मेरे साथ रहेंगे तो कर लूँगा।''

''मैं क्या करूँगा?''

''कुछ नहीं...बस केवल साथ चलिए। किनारे पर रहिएगा।

''पकड़े गये तो?''

''नाववाले जानते हैं। पकड़े गये तो शायद थोड़ा मारेंगे...मार खा लेंगे। लड़की की बात है। पर ऐसा होगा नहीं। रात में वे सब शराब पीकर, बालू पर औंधे सोए रहते हैं।''

विवान कुछ नहीं बोला। यह सब विचित्र था, नया था और अचानक आया था, उसी तरह जिस तरह बकरे की खाल का विचार आया था। मुंशी के दिमाग़ में ही दोनों बातें सुबह आयी थीं।

''अँगूठी कौन बनाएगा?''

''वही तान्त्रिक...वही इस पर मन्त्र लिखेगा।''

''क्या लिखेगा?'' विवान ने सूखी आवाज़ में पूछा।

''पता नहीं...पर वह कहता है कि अँगूठियों में जादू सबसे आसानी से डाला जा सकता है। उनमें सबसे देर तक टिकता भी है। अँगूठी पर लिखे शब्द कभी नहीं मरते। उनका असर कभी नहीं खत्म होता। क्या ऐसा हो सकता है?'' मुंशी ने अविश्वास से विवान को देखा।

विवान कुछ नहीं बोला। मुंशी ने पैर मोड़े।

''अभी चलोगे तो मुझे दो बार उतरना पड़ेगा। रस्सी भी दो बार बाँधनी पड़ेगी। शाम को चलें तो?'' विवान ने मुंशी को देखा, ''शाम को ही सब काम कर

लेंगे। मैं तब तक बकरों का मज़मून भी लिख लूँगा। शाम को ही नाव देख लेंगे। वहीं रुक जाएँगे और रात में कभी कील निकाल लेंगे।''

मुंशी दीवार से पीठ अलग करके उठ गया।

''तब तक मैं कील निकालने के औजार तैयार कर लेता हूँ। पानी में रहने से कील में ज़ंग लग जाती है। फिर नाववाले उसे ठोककर, जानबूझकर टेढ़ा कर देते हैं जिससे जल्दी निकल न पाए...करेला कैसा था?'' मुंशी ने जाते-जाते रुककर पूछा।

''तुम जानते हो वह अच्छा बनाती है।''

''हाँ, मैं जानता हूँ...इसीलिए सुबह से डर रहा था। आपने देखा नहीं...मैं जब करेला लाया था तब डरा हुआ था...वही हो गया।''

मुंशी दीवार का सहारा लेकर सीढ़ियाँ उतर गया। रसोई से चिड़ियाँ चली गयी थीं। धूप में दाल के कुछ दाने छोड़ गयी थीं। विवान को अचानक थकान लगने लगी। उसे लगा कि वह कुछ देर लेट जाए तो शाम को जा सकेगा। घुटनों की चिड़ियाँ अभी चुप थीं। शायद वे उन चिड़ियों के साथ कुछ देर के लिए बाहर चली गयी थीं।

विवान डगलस वहीं पलँग पर बैठ गया। कुछ क्षण बैठा रहा फिर पलँग के जिस हिस्से पर धूप नहीं आती थी, उस पर सर रखकर लेट गया।

''अँगूठियों, तलवारों और लावारिस लाशों से भी एक इतिहास लिखा जा सकता है।'' उस लड़की ने कहा था। कड़ा विवान की आँखों के आगे झूलने लगा।

लावारिस मय्यत कमेटी 1858 में बनी थी। उन दिनों चारों ओर बहुत-सी ऐसी लाशें मिलती थीं जिनका दावेदार कोई नहीं होता था। वे कहीं भी मिल जाती थीं। मज़बूत पेड़ों की मोटी डालों पर तो मिलती ही थीं, इसके अलावा किसी भी नुक्कड़ पर,नहर में, सराय या गोदामों की ड्योढ़ी पर। कोई भी, कहीं भी अचानक लाश बन सकता था। उन लाशों को उठाते हुए शहर के भंगियों की हथेलियाँ सूज गयी थीं। दुर्गन्ध उनके शरीर का हिस्सा बन गयी थी। उन्हीं दिनों, इन लाशों से परेशान लोगों की गुज़ारिश पर, शहर के सबसे बुज़ुर्ग और नामचीं मुदर्रिस ने अँग्रेजों से बात करके, शहर के कुछ मातबर और कुछ पैसेवाले लोगों की मदद से यह कमेटी बनायी थी।

उस साल और उसके बाद भी, कमेटी ने बहुत-सी लाशों को उनके धर्म के अनुसार जलाया या दफ़नाया था। उनके हाथ में गुदा हुआ कोई नाम, ताबीज़ में बन्द काग़ज़ का टुकड़ा, या जेब में मुड़े हुए किसी ख़त से उसका कुछ पता चल जाता था। वैसे वे चाहे जिसकी होती हों, पर मरने के बाद वे सब एक-सी दिखने लगती थीं। खून के सूखे धब्बों, सूजी हुई गर्दन के बाहर लटकी जीभ या कटे हुए शरीर के

हिस्से या मवाद भरे घावों से भरी हुई, वे इतनी ज़्यादा मिलती थीं कि उन्होंने देखनेवालों के अन्दर किसी तरह का दुख या भय पैदा करना बन्द कर दिया था। वे क्यों मिलती थीं, इस पर भी लोगों ने अब बात करना बन्द कर दिया था। वे कब तक मिलती रहेंगी और मिलनी चाहिए या नहीं, इस पर बहस बन्द हो चुकी थी। अब लाशों के घाव देखकर लोग पहचानने लगे थे कि इन्हें काटनेवाली तलवार दमिश्क की थी और बन्दूक की नली बरमिंघम की भट्टी में ढली थी। वे लाशें देखकर ही उसका मुल्क, उसकी नस्ल पहचानने लगे थे। ये ब्राह्मण, शूद्र या चग़ताई की हैं, वे पहचान लेते थे। वह यहाँ तक पहचानने लगे थे कि इन्होंने जो सरहदें पार की हैं, वे सिन्धु की हैं, दज़ला फ़रात की हैं, या टेम्स की हैं। वे लाशें संस्कृत बोलती थीं या हिब्रू या फारसी या लैटिन। इनके धर्मों के चिह्न, इनकी पोशाकें, इनका अन्न क्या था, ये बातें लाशें ख़ुद बताने लगी थीं। वे सब, जो ऐसी लाश बनते थे, वे क्यों मरे उनको अक्सर पूरी तरह पता भी नहीं होता था। इस तरह लावारिस मरने के बाद उन्हें क्या मिलेगा, इस पर उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था। बस वे मरते चले आ रहे थे। एथेन्स और रोम की गलियों से, काबुल-कन्धार की पहाड़ियों से, गंगा की तराई से होते हुए, सिकन्दराबाग, शाहनज़फ, झाँसी, लालकिला और बीबीघर तक चले आये थे। उनके इस तरह मरते चले आने से कभी, कहीं कुछ नहीं बदला था। बदलता था तो सिर्फ़ उनके पीछे का पर्दा बदलता था। उस पर्दे में अलग-अलग समय था। अलग सिंहासन थे, शहर थे, पोशाकें थीं, अलग-अलग हथियार थे, ईश्वर थे, किताबें थीं। अलग ज़बानें थीं। इनकी लिप्साएँ बदली होती थीं। ये पर्दे जिस तरफ घूमते थे, उस तरफ लोग लाशें बनने को तैयार हो जाते थे। ये पर्दे इनसानों से बड़ा सच थे। इन्हें उठाने-गिरानेवाले हाथ ही इनसानों की नियति तय करते थे। कौन कब लाश बनेगा, इसे भी ये ही तय करते थे।

इन्हीं लाशों में से बहुत-सी मय्यत कमेटी में आ जाती थीं जिन्हें किसी अनजान नक्षत्र की गवाही में, नदी की लहरों में, चिता की लपटों पर, या मिट्टी की गहराइयों में दबाकर विदा कर दिया जाता था। इस कमेटी का काम बढ़ गया था, इतना कि इसका हिसाब-किताब रखने के लिए, इसे चलाने के लिए एक मुस्तक़िल दफ्तर और कुछ मुलाज़िमों की ज़रूरत पड़ने लगी।

शहर का यह मुहल्ला उस समय तलाक दी हुई औरतों के मुहल्ले के नाम से जाना जाता था। जिन औरतों के शौहर या बूढ़ी हो चुकी जिन रंडियों के आशिक उन्हें छोड़ देते थे, वे इसी मुहल्ले में घर लेकर रहने लगती थीं। इस मुहल्ले की एक पुरानी और अपने समय की मशहूर बूढ़ी रंडी के खाली मकान में इस लावारिस मय्यत कमेटी का दफ्तर खोला गया था। यह जगह उसने इसी शर्त पर दी थी कि यहाँ सिर्फ़ दफ़्तर होगा, हिसाब-किताब होगा, यहाँ मय्यत नहीं आएगी। शहर का

एक दूसरा खँडहर इसके लिए इस्तेमाल होता था। विवान डगलस इसी दफ्तर के ऊपरी कमरे में रहता था। मय्यत अब भी वहाँ नहीं आती थी। ख़बर मिलने पर विवान और मुंशी, दूसरे खँडहर में लाकर उसे रखते थे।

उस इमारत के बड़े हॉल में दफ्तर था। उस हॉल की बनावट बताती थी कि यहाँ कभी औरतों के नाच या गाने होते थे। उस हाल के चारों तरफ बने गोल खम्भों के पीछे घूमता हुआ गलियारा था। उसी गलियारे के ऊपर लकड़ी की छत बनाकर एक मंजिल और बनायी गयी थी जो हॉल के चारों ओर गयी थी। उसकी रेलिंग के अन्दर पटरोंवाले फर्श पर बैठने की जगह थी। उसके पार ऊँचाई पर नक्काशीदार जाली की छोटी खिड़कियाँ थीं जिनसे धूप, चाँदनी और कबूतर अन्दर झाँका करते थे। खम्भों के चारों ओर के गलियारे में अब भी अलमारियाँ थीं। इन अलमारियों में पीले रंग के पुराने दस्तावेज़ थे। इन दस्तावेज़ों में बालू से सुखायी हुई स्याही से लिखे कमेटी के रोजनामचों के साथ-साथ, बूढ़ी रंडी के या उसके साथ रहनेवाली दूसरी लौंडियों के लिखे अशआर थे, चिट्ठियाँ थीं, डायरी थीं। कमेटी के रोजनामचों की हर साल की अलग ज़िल्द थी। इनमें रोज़ का हिसाब दर्ज था। इनमें लाशों के ब्यारे थे, गवाहों के नाम थे, जलायी या दफ़नायी गयीं यह लिखा था, क्या खर्च हुआ था, कितना पैसा बचा, सब दर्ज़ था। चन्दा देनेवालों के नाम थे, बाहर रखे गुप्तदान में सन्दूक में मिलनेवाले रुपयों का ज़िक्र था। तनख्वाहों के, मरम्मत के, भाड़े के खर्च थे।

सन् 1988 में, नौकरी के पहले दिन विवान ने जब इन अलमारियों के काग़ज़ों को देखा तो उसमें कुछ काग़ज़ फ़ारसी और उर्दू के अलावा चग़ताई तुर्की, प्राकृत और संस्कृत तक में लिखे थे। रोज़नामचे की हर तारीख में कोई-न-कोई इन्दराज़ था। कोई तिथि खाली नहीं थी। जिस दिन कोई लाश नहीं मिली, उस दिन भी उसमें कुछ लिखा गया था। अलग-अलग समय के अलग-अलग नामालूम मुंशियों ने अपनी ज़बान, अपने सरोकारों और तरीकों से उन खाली तारीखों को भर दिया था। पहली रात विवान ने गलियारे में घूमते हुए, रोजनामचों को पलटा। 130 साल यानी 45450 दिनों में, गुजरे हुए समय की चुभती हुई रंगीन किरचें उन पन्नों पर बिखरी हुई थीं। विवान ने बारिश की उस रात, रोजनामचों को पलटते हुए, बीच-बीच में लिखे इन कुछ इन्दराज़ों को पढ़ा था। उस रात, उस मृत जगत की गलियों में प्रेत की तरह घूमते हुए विवान डगलस के साथ बारिश की गन्ध थी, कच्ची मिट्टी की गन्ध थी, पुराने काग़ज़ों की घुन लगी लकड़ी की गन्ध थी, इतिहास की, स्मृतियों की गन्ध थी।

ऊपर पटरी पर दौड़ते, बारिश की बूँदों की आवाज़ों और नमी से बेचैन चूहों ने उस रात अपने बनाये हुए छोटे छेदों से झाँककर उस आदमी को देखा जो पीठ मोड़े,

मेज पर झुका हुआ, अँधेरे की अकेली रोशनी में पुरानी अलमारी की, पुरानी जिल्दों को पलट रहा था। उनके सन्नाटे और आधिपत्य पर वह आदमी अपनी छोटी सफेद दाढ़ी, उदासी से भरी आँखें और सूजी हुई नीली नसोंवाली उँगलियों से पुराने पन्ने पलटता हुआ उन पर बहुत नीचे तक झुक जाता था। वह होंठ हिलाकर बुदबुदाते हुए उन पन्नों को पढ़ रहा था। चूहे आनेवाले समय को पहचानते हैं। चूहे समझ रहे थे कि अब हॉल के खाली फ़र्श, इसका सन्नाटा, और उस पर उनकी दौड़ में यह आदमी भी शामिल है। चूहे अपनी छोटी चमकदार आँखों से उसे देखते हुए, उसकी गन्ध को बारिश की गन्ध से अलग करके पहचान रहे थे। बल्ब की रोशनी और गर्मी पर छोटे कीड़े जमा हो रहे थे। वे एक-दूसरे से चिपके हुए अमलतास के गुच्छे की तरह लटक जाते थे। वे जब बहुत हो जाते थे तो अचानक बल्ब से छूटकर फ़र्श पर गिर पड़ते थे। जो फ़र्श पर गिरते थे उनमें से कुछ मर जाते थे, कुछ उलटे होकर छटपटाते, कुछ देर तक फ़र्श पर घिसटते थे। कुछ फिर उड़कर ऊपर बल्ब पर चिपक जाते थे। फ़र्श उनसे भर गया था। पर वे कम नहीं हो रहे थे। वे ऊपर की खिड़की से बल्ब तक खिंचें तार की तरह आ-जा रहे थे। जो मर गये थे उन्हें चींटि घसीटकर गलियारे में रखी अलमारियों के नीचे की सीलन भरे अँधेरे कोनों की ओर ले जा रहे थे।

विवान डगलस यहाँ नहीं था। चूहों में, कीड़ों में, चींटों में, बारिश में नहीं था। विवान डगलस समय की अनन्त यात्रा पर था। विवान डगलस पुराने रोजनामचों के पन्नों पर उन्हीं कीड़ों की तरह रेंग रहा था।

9 नवम्बर, 1862

7 तारीख को रंगून की जेल में बहादुरशाह ज़फ़र की मौत हो गयी। एक किस्सा ख़त्म हुआ। मैंने दिल्ली में एक बार उसे देखा था। मेरे मामू की मकान मालकिन जिस हिजड़े से मालिश कराती थी वह मुझे लालकिले के अन्दर ले गया था। किला देखकर मायूसी हुई थी। उससे भी ज़्यादा मायूसी बादशाह को देखकर हुई थी। लगा था कि किसी भी मरती हुई चीज़ की सबसे अच्छी तस्वीर बहादुरशाह ज़फ़र ही था। मुल्क की, मुग़लिया खानदान की, लालकिले की शानो शौकत की और ख़ुद इनसान की भी। धीरे-धीरे कैसे कोई चीज़ ख़त्म होती है, और कितनी बुरी तरह से ख़त्म होती है, बहादुरशाह इसकी मिसाल था। जो भी हो, शायर बुरा नहीं था। वह बहुत मायनों में बदक़िस्मत रहा। उनमें से एक यह भी था कि वह उस्तादों के समय में शायरी कर रहा था। किसी ने उसे नहीं पूछा। पर मुझे वह पसन्द है। मैं अक्सर उसके अशआर गुनगुनाता हूँ। ख़ासतौर से ये कुछ—

मेरी आँख बन्द थी जब तलक वो नज़र में नूरेजमाल था।

खुली आँख तो न ख़बर रही, कि वो ख़्वाब था कि ख़याल था॥

मेरे दिल में था कि कहूँगा मैं जो ये दिल पे रंजोमलाल है।
वो जब आ गया मेरे सामने, न तो रंज था न मलाल था॥

या फिर

बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी।
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी॥

ले गया छीन के कौन आज तेरा सब्रो क़रार।
बेक़रारी तुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी॥

8 अगस्त, 1865

कुछ दिन पहले शहर की आबादी गिनी गयी। गिनती आयी एक लाख तेरह हजार छह सौ एक। यह एक कौन है? कहीं मैं ही तो नहीं? पर मुझे किसी ने गिना तो नहीं था?

13 जुलाई, 1869

11 तारीख को दयानन्द सरस्वती का शास्त्रार्थ दरगाही लाल वकील से हुआ। गंगा किनारे देखनेवालों का मजमा था। मैं भी जाता पर घर में उस दिन पुताई लगा रखी थी। पुताईवाला हमउम्र था। उसका बुरा वक़्त था इसलिए अब यह काम करने लगा है। दोपहर को खाना खाते समय पास ही बैठ गया। वह भी अपना डिब्बा लाया था। खाते हुए उसने अपने बारे में दिलचस्प वाक्या सुनाया। सुनकर लगा कि मुहब्बत भी हजारों तरह से पैदा होती है। उसने बताया कि वह एक बार अपने पिता के साथ उनके दोस्त के घर गया था। वहाँ रात को वे रुके थे। गर्मी के दिन थे। छोटे-से आँगन के किनारे पर रसोई थी। उसके बाहर खुले में, दरी पर बैठकर वह, पिता और उनके दोस्त खा रहे थे। दोस्त की लड़की मिट्टी के चूल्हे पर रोटियाँ बना रही थी। उसकी माँ रसोई के दरवाज़े पर बैठी उन्हें खिला रही थी। पुताईवाले ने बताया कि उसने उस दिन नौ रोटियाँ खायीं, इसलिए कि उस लड़की के हाथों की महक भी ताज़े गन्दुम में थी। वह लड़की यह समझ गयी थी। हर रोटी सेंकने के बाद चूल्हे की लपट की रोशनी में, पसीने से भीगा चेहरा लिये वह उसे देखकर मुस्कराती थी। एक चुनौती फेंकती थी कि खाओ, मैं थकनेवाली नहीं हूँ। फिर पुताईवाले ने अपने डिब्बे की सूखी रोटी मुझे दिखायी। वह उसी लड़की के हाथों की बनायी हुई थी जो अब उसकी बीबी थी। उसने मुझसे ज़िद की कि मैं उसे सूँघूँ। उसमें उसके हाथों

की ख़ुशबू है। मुझे ख़ुशबू नहीं आयी। मैं जानता था कि मुहब्बत की ख़ुशबू के आगे कौन-सी ख़ुशबू आनी है? पुताईवाले के चेहरे पर उतनी देर ग़ज़ब का नूर उतर आया था। इस दुनिया की किसी भी रंजोफ़िक्र से दूर उस रोटी को खाते हुए वह मुझे एक फ़रिश्ता लग रहा था। अच्छा हुआ उन दोनों का शास्त्रार्थ सुनने नहीं गया वर्ना इस खूबसूरत फ़रिश्ते के, इस खूबसूरत वाकये से महरूम रह जाता।

9 फरवरी, 1872

कल एक कैदी शेर अली ने खंजर से वाइसराय मेया की हत्या कर दी। पूरी अँग्रेजी हुकूमत थर्रायी हुई है। कौन है यह शेर अली?

13 मार्च, 1872

कल शेर अली को फाँसी दे दी गयी। हिन्दुस्तान की कोई तारीख़ अगर शेर अली के बग़ैर लिखी गयी, तो उसे जला देना चाहिए। वह झूठी होगी।

18 जुलाई, 1875

14 तारीख को गंगा पर बना पुल खुल गया था। क्या मज़े की बात है कि ऊपर रेलगाड़ी चलती है। नीचे बैलगाड़ी और पैदल इनसान। मद्दू ने इस पर एक गाना बनाया है। इधर वह अपनी हथेलियों के पसीने से परेशान है। जहाँ थोड़ी देर तबला बजाता है, तबले से भद-भद की आवाज़ आने लगती है। उँगलियाँ पसीने से भीग जाती हैं। उसका उस्ताद उसे धूप में तबला सुखाने के लिए भेज देता है। मद्दू तबला बजाता कम है, धूप में सुखाता ज़्यादा है। फिर भी, वह बड़ा तबलची बनने की ज़िद पाले है। देखें पहले कौन मैदान से भागता है? उसका उस्ताद, मद्दू खुद या फिर उसका पसीना। मद्दू के गाने की दो ही लाइन ठीक से याद हैं। मज़ेदार हैं।

ऊपर चले रेल का पहिया
नीचे बहती गंगा मैया

पुल बनने से पूरा शहर मस्त है।

1 जुलाई, 1879

आज मुल्क में पोस्टकार्ड शुरू हुआ। ये फिरंगी भी नयी-नयी और लाजवाब चीज़ें करते हैं। कीमत है चौथाई आना।

7 दिसम्बर, 1884

बला की सरदी है। पंजे, हथेली सब बर्फ हो रहे हैं। अँगीठी के कोयले ताप रहा हूँ तो राहत है। चारों तरफ भयानक खामोशी है। ऊपर लकड़ी के पटरों पर चूहों के दौड़ने की आवाज़ें हैं बस। मैंने कल ऊपर जाकर देखा था। कुछ अनाज के दाने पटरों पर बिखरे थे। मुझे लगता है गल्ले के गोदाम से यहाँ तक चूहों ने कोई रास्ता बना लिया है। गोदाम का पल्लेदार बता रहा था कि वहाँ के चूहे बिल्ली के बराबर मोटे हैं। ये चूहे यहाँ टिकने लगे तो मुसीबत होगी। कल सुबह पहला काम यही करूँगा कि आटे की गोली में जहर डालकर रखूँगा। कुछ तो मरेंगे। कोई और चारा भी नहीं है।

इस दीवार से मिली दीवार वाले घर की बूढ़ी ख़ातून का गाना इन सर्दियों में बहुत साफ़ सुनायी देता है। वैसे दिन भर के शोर-शराबे में तो नहीं पता चलता, पर इस वक़्त उनके दुखों का अन्दाज़ा लगता है। मैंने इतने सालों में उन्हें कभी नहीं देखा पर सुना अक्सर है। वह किसी जमाने में गाँव के नवाब की सबसे मुँहलगी रंडी थी। उन्होंने उनके भरोसे कोठा छोड़ दिया। सबसे बड़ी ग़लती की। कोठों पर पहली बात यही तो सिखायी जाती है कि किसी की मुहब्बत में कभी पाँव दहलीज़ के बाहर मत निकालो। लगता है, फिर कुछ गुनगुना रही हैं। चूहों की खटपट में साफ़ नहीं है। थोड़ा रेंगकर अगर दीवार से कान लगा लूँ तो सुनायी पड़ेगा। पर इस सर्दी में आग छोड़कर हटना पड़ेगा। फिर सुन लूँगा। नहीं—आवाज़ ऊँची है। सुनता हूँ, सुनने के बाद लिखूँगा। खूब गज़ल थी भई। बला का दर्द था। कुछ शेर याद हो गये हैं। लिख लेता हूँ।

जो उसने कहा गो वही करते गये हम तो
इस पर भी निगाहों से उतरते गये हम तो

वह ख़लूस से पेश आये यह थी उनकी इनायत
गरदन झुकाये हुए डरते गये हम तो

1 जनवरी, 1902

आज जन्मदिन है। कुछ फुटकर बातें

1. स्मृति स्वतन्त्र करती है।
2. ईश्वर हमारे वास्तविक एकान्त का सबसे विश्वसनीय साथी है।
3. रौंदनेवाले घोड़े के खुरों में ठुकी नाल की तरह, सत्ता के चारों खुरों में भी धूर्तता, अन्याय, असत्य और रक्त ठुका होता है।
4. कोई भी व्यवस्था धरती से वंचितों को समाप्त नहीं कर सकती, क्योंकि

हर व्यवस्था अपने वंचितों को पैदा करती है।

5. धीरे-धीरे मरनेवाली चीज़ों में नष्ट होने का एक सौन्दर्य होता है, जिस तरह खत्म होती हुई धूप, ख़त्म होती हुई ध्वनि, गंध या फिर जीवन ही।
6. कभी उपदेश देनेवाले को ध्यान से देखो, उसकी आस्तीन के नीचे कोई पट्टी ज़रूर छुपी होगी, जिसे कभी-न-कभी तुम्हारी आँखों पर बाँधकर, वह तुम्हें ग़ुलाम बना लेगा।
7. प्रेम दोमुँहा साँप होता है। वह तुम्हारे पास हो तब भी, न हो तब भी, तुम्हें दोनों सूरतों में डसेगा ज़रूर।
8. मैंने आज तक ऐसा कोई भी परिन्दा, चरिन्दा, तितली, फूल या बादल नहीं देखा जिसका रंग आँखों को चुभता हो।
9. हर मृत्यु एक महागाथा का अन्त है।

4 अप्रैल, 1912

तीन दिन पहले हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली चली गयी। कलकत्ता अब बेनूर हो जाएगा।

कलकत्ता हिन्दुस्तान के बसने की और दिल्ली हिन्दुस्तान के उजड़ने की कहानी है। शहरों की भी एक ज़बान होती है जिसे समझना मुश्किल होता है। इस ज़बान में ज़िन्दगी के तमाम फ़लसफ़े मौजूद रहते हैं। कलकत्ता और दिल्ली, इन दो शहरों में इस मुल्क का पूरा इतिहास लिखा है। कलकत्ता से लौटकर मेरे पिता ने कहा था कि कलकत्ता यादों का एक बड़ा कब्रिस्तान है। उसकी जमीन के नीचे दबी सैकड़ों क़ब्रों में पूरी दुनिया के लोग सो रहे हैं। दिल्ली भी कम नहीं है। तैमूर, नादिर, अहमदशाह, मराठों, जाटों की लूट से लेकर गदर तक और हिजड़ों, भड़वों, रम्मालों, अफीमचियों की ताजपोशी और हुकूमत से गुजरते हुए दिल्ली ने भी क्या-क्या नहीं देखा है? यह कैसा मुल्क था और कितने बदनसीब रहे होंगे मेरे ऐसे मामूली लोग, जो उनके समय में ज़िन्दा रहे।

3 मई, 1913

'राजा हरिशचन्द्र' नाम का चलता-फिरता बाइस्कोप बम्बई में दिखाया गया। बुतों में जान की बात सुनी थी। तस्वीरों से पहली बार सुनी।

25 दिसम्बर, 1924

कम्युनिस्ट पार्टी का पहला सम्मेलन शहर में हुआ। आज बड़ा दिन भी है। हो सकता है शहर के मज़दूरों के लिए भी सचमुच बड़ा दिन हो। मेरा बदलू भी मिल

में है। पूछूँगा गया था कि नहीं? यह भी, कि क्या सचमुच कहीं कुछ बदलेगा?

1 मई, 1926

जिम कार्बेट ने रुद्रप्रयाग के तेंदुए को मार डाला। कहते हैं उसने तीन सौ आदमियों की जान ली थी। मुझे तेंदुआ बहुत खूबसूरत लगता है। सचमुच जान दे देने के काबिल। उसे मारना नहीं चाहिए था। पकड़ लेते। एक तेंदुए के बदले 300 लाशें क्या ज़्यादा होती हैं? हमारे रोज़नामचों में तो हजारों लावारिस भरी पड़ी हैं।

3 फरवरी, 1928

नूरानी मीनार गिरायी जाएगी। वह अब बहुत कमज़ोर हो गयी है। किसी भी वक़्त ढह सकती है। सैकड़ों सालों से यह शहर में खड़ी है। सुना है कि पुराने ज़माने में अँधेरा होते ही इसका ऊपरी बुर्ज चमकने लगता था। मैंने नहीं देखा। मेरे घर में भी किसी ने यह रोशनी नहीं देखी। लोग कहते हैं यह मीनार इनसानी सरों से बनी है। पता नहीं कब, किसने किया, पर किसी लड़ाई के बाद सारी लाशों के सर काटकर उन्हें मिट्टी से साथ चुनवाकर मीनार बनायी गयी थी। सबसे ऊपर जो सर था रात में उसकी आँखें ही चमकती थीं, उसी की रोशनी होती थी। वह सर किसी तातार का था जो ग़लती से कट गया था। अँधेरा होते ही वह अपनी आँखें खोलकर अपने मुल्क की तरफ किसी को देखता रहता था। पता नहीं क्या सच है? पर इनसानी सरों और मिट्टी से बनी मीनार कब तक रुकेगी? हो सकता है तातार के नीचे के सर भी आँखें खोलकर अपने-अपने घरों की तरफ देखते हों। हो सकता है उनके सर उन दिशाओं में घूम जाते हों जिससे मीनार कमजोर होती रही हो या फिर उनके आँसू टपकते हों, जिनसे उन सरों को जोड़नेवाली मिट्टी गल गयी हो। इन सरों का इन्दराज़ हमारी तरह किसी लावारिस मय्यतों के रोज़नामचे में भी नहीं हुआ होगा।

14 मार्च, 1931

लो, पहला बोलता हुआ बायस्कोप भी दिखा दिया गया। आलमआरा। खूब तमाशा रहा होगा।

17 जनवरी, 1938

कल शरत्चन्द्र मर गया। मैं खाना नहीं खाऊँगा।

20 दिसम्बर, 1942

जापानियों ने कलकत्ता पर पहला हवाई हमला किया। जिनके मर्द कलकत्ता पैसा

कमाने जाते हैं उन औरतों की नींदें उड़ गयी होंगी। वे इतनी ज़्यादा हैं कि जापानी साले, उनकी बद्दुआओं से ही मर जाएँगे।

19 जनवरी, 1947

कल कुन्दन लाल सहगल चला गया। मैंने उसे उसकी मुफ़लिसी के दिनों में पीपल के नीचे गाते सुना था। इस शहर में वह अपनी ज़िन्दगी के सबसे बुरे दौर से गुजरा था। घाट पर उसने भूख से बेहाल होकर गाना गया तो लोगों ने भिखारी समझकर पैसे फेंकें। बाद में गलियों में फेरी लगाकर साड़ियाँ बेचीं। यहीं से फिर वह न्यू थियेटर्स, कलकत्ता गया। 1938 में जब वह फिर इस शहर लौटा तो बड़ा आदमी हो चुका था। वह उस बस्ती में गया जहाँ भूख से सड़क पर गिरा था और चमड़ा कारखाने के कुछ मजदूरों ने उसे खाना दिया था। वह वहाँ फूट-फूटकर रोया। लोग हैरान-परेशान थे कि 'चंडीदास', 'देवदास', 'धरतीमाता' और 'स्ट्रीट सिंगर' का कलाकार सड़क पर बैठा रो रहा है। मैंने कल रात भर उसके गाने सुने। मैं और कर भी क्या सकता था?

28 फरवरी, 1948

मुल्क से अँग्रेज सिपाहियों का आख़िरी जत्था भी चला गया। दो सौ साल पुरानी कहानी अब जाकर पूरी तरह ख़त्म हुई।

15 नवम्बर, 1949

बापू के हत्यारों को फाँसी दे दी गयी। क्या सचमुच बापू ने 'हे राम' बोला होगा?

29 मई, 1953

हिलेरी और तेनसिंह ने एवरेस्ट फतह कर लिया। सुनते हैं इनसान एक दिन चाँद को भी रौंदेगा।

19 मार्च, 1959

17 तारीख को दलाई लामा तिब्बत से भागकर हिन्दुस्तान आए। पता नहीं तिब्बत कहाँ है पर हम सब इसका नाम जानते हैं। हमने 'य' से 'यति' और 'याक' पढ़ा है। दोनों तिब्बत में होते हैं। दलाई लामा के साथ यति और याक भी होते तो हमारे बच्चे उन्हें देख लेते। 'य' से क्या हम कुछ अपने बारे में नहीं पढ़ा सकते, जैसे 'य' से...नहीं, नहीं सोच पाया। कुछ अक्षर कितने अकेले और कमज़ोर रह जाते हैं, य की तरह।

31 जनवरी, 1963

मोर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया गया। पता नहीं मोर जानता है या नहीं?

2 जून, 1964

नया पैसा कल से पैसा हो गया। नये में क्या बुराई थी?

9 जुलाई, 1969

आज शेर को राष्ट्रीय पशु घोषित कर दिया गया। क्या शेर को कोई फ़र्क पड़ेगा?

3 अक्टूबर, 1969

कल गाँधी का सौवाँ जन्मदिन था। गल्ला मंडी के दुकानदारों ने इसे मनाया। उन्होंने दो दिन पहले शहर में मुनादी करवाना शुरू करवा दिया कि 2 अक्टूबर को शहर के भिखारियों, कँगलों (यह शब्द मुनादीवाला बोल रहा था) को मंडी के मैदान में मुफ्त खाना मिलेगा। जो चाहे, जितना चाहे। 2 अक्टूबर की सुबह तक शहर की हर गली, हर घाट, मन्दिर, पेड़ और खुले मैदानों में भिखारियों के झुंड घूम रहे थे। गल्ला मंडी में अनाज की कमी नहीं थी। पैसों की कमी भी नहीं थी। मैं देखने गया था। चारों तरफ भूखे, नंगों, अपाहिजों का रेला था। वे सैकड़ों थे, हजारों थे। आसमान तक धूल और उनकी चीखें उड़ रही थीं। उनके चेहरों पर भूख थी, इस भूख के मिटने की उम्मीद की गहरी लपलपाती लालसाएँ थीं। वे अधनंगे, भूखे, हड्डियों के ढाँचे चीख रहे थे। अपने झोलों में, कपड़ों की लटकती, फटी जेबों में पूड़ियाँ, तरकारी भर रहे थे। मुँह में ठूँस रहे थे। उनके साथ छोटे-छोटे बच्चे थे। वे अपने कपड़ों में खाना भरकर, दौड़ते हुए घर या कहीं और जाते, उसे रखते फिर आकर लेते। बूढ़े थे जो कोनों में, पीपल के नीचे उँगलियों से बहते रस को चाट रहे थे। पूड़ी का एक टुकड़ा मुँह में ठूसकर, चमकती आँखों से खिलखिलाते, उस टुकड़े को जल्दी-जल्दी निग़लते हुए, जिससे कि दूसरा टुकड़ा मुँह में भर सकें। आपस में झगड़ते, खाना छीनते, गालियाँ बकते, गिरते, भागते, मंडी के मैदान में भूख, गरीबी और नंगी हड्डियों के चलते-फिरते प्रेतों का हुजूम था। वे चारों दिशाओं से आये थे। वे अपाहिजों वाली लकड़ी के पटरों वाली गाड़ी पर आये थे, घिसटते हुए छिले घुटनों के साथ आये थे। वे गुफाओं से, कन्दराओं से, झाड़ियों से, मन्दिरों से, नदी के घाटों से निकलकर आये थे। वे लँगड़े थे, अन्धे थे, कोढ़ी थे, मवाद भरे दानोंवाले शरीरों के थे। वह हर धर्म, हर जाति, हर उम्र के थे। वे असंख्य थे। वे गन्दे जल पर फैली जलकुम्भी की तरह थे। वे शरीर की सड़ी कोशिकाओं की तरह थे। वे हाथ बढ़ाकर खाना माँग रहे थे। पंजों के बल

कूदते हुए, छोटे लड़कों को उठाए हुए वे हवा में उछाले जाते डिब्बों को पकड़ रहे थे। वे धूल में गिरी पूड़ियों को उठाकर, झाड़कर, मुँह में रखकर चबाते हुए आनन्द के आँसू बहा रहे थे। वे ईश्वर को धन्यवाद दे रहे थे। इस देश को, इसके लोकतन्त्र को, संविधान को, गाँधी को धन्यवाद दे रहे थे। मुझे नहीं पता गाँधी ने इसे देखा या नहीं। मुझे नहीं पता उसकी आत्मा को शान्ति मिली या नहीं, पर मुझे पता है कि इनमें से बहुतों को हमारे रोज़नामचों में जगह ज़रूर मिलेगी।

24 दिसम्बर, 1969

कल चाँद से लाया हुआ पत्थर दिल्ली में दिखाया गया। मन बहुत दुखी है। चाँद के साथ यह नहीं करना चाहिए था।

3 अगस्त, 1972

कल रात में नींद खुल गयी। उठा तो बेहद हैरतअंगेज़ नज़ारा देखा। अलमारी के पल्लों पर लगी पीतल की प्लेट पर लड़की नहीं थी। प्लेट सपाट थी। यकीन नहीं हुआ। उठकर देखा, छूकर देखा। उसे ढूँढ़ने बाहर आया। फिर छत पर गया। पूरी छत रोशन थी। चारों कंगूरों में आकाशदीये जल रहे थे। पूरा बदन डर से काँपने लगा। नीचे भागकर आया और मुँह ढककर सो गया। सुबह देखा, तो सब कुछ मामूल के मुताबिक था। वही अलमारी, वही लड़की। ऊपर गया तो कंगूरों के अन्दर बन्दर बारिश से बचने के लिए बैठे थे। किसी दीये का कोई निशान नहीं था। सोचा, अगर छत पर रोशनी हुई होती तो कोई तो बताएगा। पर बाहर भी किसी ने ज़िक्र तक नहीं किया। सोचता हूँ क्या कोई सपना ऐसा भी हो सकता है जो इस क़दर हक़ीक़त लगे? या फिर वह सब सचमुच हुआ था। लोग ये बातें करते ही हैं। क्या कल वह रूह क़ैद से बाहर निकली थी? आज पीर के पास जाऊँगा। सिरहाने तेल में भीगा हुआ चाकू लेकर सोऊँगा। किसी से कोई ज़िक्र तक नहीं किया है। क्या पता लाशों के साथ रहने से, हर समय उनके बारे में सोचने से, यह दिमाग़ में पैदा हुआ कोई फितूर ही हो?

12 फरवरी, 1975

हिन्दुस्तान को चेचक से पूरी तरह मुक्त घोषित कर दिया गया। मेरी बेटी इसी से मरी थी। शायद अब किसी की बेटी नहीं मरेगी। आमीन!

2 अक्टूबर, 1978

कल से लड़कियों की शादी की उमर कम-से-कम 18 साल कर दी गयी है।

जवान होती लड़कियों के पिताओं की नींदें अब और लम्बे समय तक उड़ी रहेंगी।

17 फरवरी, 1980

कल पूरा सूर्यग्रहण था। मैंने डरते-डरते खिड़की की झिर्री से 4 बजे झाँककर देखा था। शाम को ही बिल्कुल अँधेरा हो गया था। इतना कि चिड़ियाँ पेड़ों को लौट आयी थीं। महाभारत में जयद्रथ ने भी ऐसे ही धोखा खाया होगा और मारा गया।

6 सितम्बर, 1980

कल मुहम्मद रफ़ी मर गया। डर है कि उसके ग़म में साला फ़ज़लू न मर जाए। जब से उसने सुना है, गलियों में, उसका गाना गाता घूम रहा है। 'मन तरपत हरि दरसन को आज'। ऐसी भी क्या दीवानगी कि आदमी क़ाफ़िर हो जाए?

15 अगस्त, 1987

कल फ़ज़लू मर गया। उसे लावारिस मय्यत की तरह दफनाना पड़ा। अजीब-सी दहशत और वहशत तारी है। ऊपर लकड़ी के पटरों पर दौड़ते चूहों की आवाज़ें हैं, तेज़ बारिश की आवाज़ें हैं, और एक गहरी, पर नामालूम-सी लगती उदासी है जो ज़िन्दगी को या फिर मौत को बहुत पास से देखने पर पैदा होती है।

फ़ज़लू का पिता सालों पहले नवरंग टाकीज की बालकनी से नीचे गिर गया था। अँधेरा था। स्क्रीन की तरफ सिनेमा देखते हुए वह आगे बढ़ रहा था। उसे बाएँ मुड़ना था पर देख नहीं पाया। सीधे चलता गया। आगे छोटी-सी दीवार थी। उस पर से वह नीचे हाल की कुर्सी पर पेट के बल गिरा। उसके पेट की आँतड़ियाँ फट गयी थीं। लोग अस्पताल लेकर भागे। फ़ज़लू तो बाद में पहुँचा था। उन दिनों सरकारी अस्पताल ऐसी दुर्दशा में नहीं थे। बड़े बागीचों वाले, खुले गलियारों वाले, ऊँची छतों वाले कमरों के साफ़-सुथरे अस्पताल थे। सर्जन ने पाँच घंटे तक ऑपरेशन किया था। सब बाहर थे। मैं भी फ़ज़लू के साथ था। कई बार हमें ऐसा लगा कि अन्दर अचानक खामोशी हो गयी है। कई बार लगा कि उसका पिता मर गया है। हम सबको यकीन था कि वह बचेगा नहीं। सर्जन ने बाहर आकर फ़ज़लू की माँ से कहा था कि हमने अपना काम कर दिया। अब ऊपरवाले को अपना काम करना है। आप उससे प्रार्थना करिए। फ़ज़लू की माँ ने आँख बन्द करके, हाथ जोड़कर ऊपरवाले से प्रार्थना करने के लिए सर उठाया ही था कि उसी समय, बिल्कुल उसी समय, दरबारी के सुरों में रफ़ी की आवाज़ 'ओ दुनिया के रखवाले, सुन दर्द भरे मेरे नाले', कहीं से उठी और अस्पताल के अन्दर भरती चली गयी। फ़ज़लू आँख फाड़े अपनी माँ को देख रहा था, रफ़ी की बुलन्द आवाज़ सुन रहा था। उसका पिता बच

गया। फ़ज़लू रफ़ी का मुरीद हो गया। कहता था कि उसी की आवाज़ ने बचाया। पर मैं नहीं मानता था। उसका पिता तीन महीने अस्पताल में रहा। इन तीन महीनों में फ़ज़लू रोज़ रात को अस्पताल में रुकता था। उसके बाप को बहुत तकलीफ़ थी। वह उठ भी नहीं पाता था। फ़ज़लू अपनी हथेलियों पर उसका थूक, उसकी उल्टी लेता था। बाहर फेंकता था। तीन महीनों बाद उसका पिता घर लौट आया। पता नहीं उसे किसने बचाया? सर्जन ने, फ़ज़लू ने, ईश्वर ने या फिर मुहम्मद रफ़ी ने। उन्हीं तीन महीनों में फ़ज़लू को तम्बाकू की लत पड़ गयी थी। उसके मुँह में हर समय तम्बाकू की गोली दबी रहती थी। गाल के एक तरफ। यहाँ तक कि जब वह सोता था, तब भी तम्बाकू दबाकर सोता था। फ़ज़लू कई सालों तक यह करता रहा।

एक दिन फ़ज़लू के गाल में छोटा-सा फोड़ा हुआ। वह ठीक हुआ, फिर हुआ। फ़ज़लू ने डॉक्टर को दिखाया। उसने तम्बाकू बन्द करने और ऑपरेशन करने को कहा। उन्हीं दिनों, फ़ज़लू ने एक औलिया की दवा ली। उसका फोड़ा ठीक हो गया। फ़ज़लू फिर तम्बाकू खाने लगा। फिर फोड़ा हुआ फिर औलिया की दवा से ठीक हो गया। फ़ज़लू निश्चिन्त होकर तम्बाकू खाता रहा। औलिया ने फ़ज़लू से कह दिया था कि वह उसे ठीक करता रहेगा, बस शर्त यही है कि वह फोड़े पर नश्तर नहीं छुआएगा। एक बार फोड़ा बड़ा हो गया। जल्दी ठीक नहीं हुआ। डॉक्टर ने फ़ज़लू को चेतावनी दी और ऑपरेशन करा लेने को कहा। फ़ज़लू और उसके दो लड़कों को औलिया की बात पर यकीन था। उन्होंने नश्तर नहीं छुआया। फ़ज़लू औलिया की दवा लेता रहा। फिर फ़ज़लू के फोड़े में दर्द रहने लगा। एक दिन उसने पानी पिया और कुल्ला किया तो पानी गाल के दूसरी तरफ से बाहर निकल गया। फोड़े ने फ़ज़लू के गाल के अन्दर छेद कर दिया था। डॉक्टर ने तो फ़ज़लू को बता दिया कि उसे कैंसर हो गया है और अब कुछ नहीं होगा सिवाय ऑपरेशन के। फ़ज़लू ने फिर भी नश्तर नहीं लगवाया। इसी बीच औलिया कहीं गायब हो गया।

फ़ज़लू सूखने लगा। जो खाता-पीता था वह भी मुश्किल हो गया। सब गाल के छेद से बाहर निकलने लगा। फ़ज़लू की दोनों बहुओं ने उसे घर के बाहर की कबाड़ रखने की कोठरी में रख दिया। बाद में फ़ज़लू को उस कोठरी से भी निकालकर बाहर सरकारी अस्पताल में भेज दिया गया। उन्होंने फ़ज़लू से मिलना बन्द कर दिया।

अस्पताल से हटा दिए जाने के बाद फ़ज़लू इस दफ्तर के सामने घाट जानेवाली सड़क पर भिखारियों के साथ रहने लगा। मैं उससे बहुत दिन से नहीं मिला था। एक शाम मैं नदी पर जा रहा था। तब मैंने भिखारियों के बीच से रफ़ी का मालकौंस के सुरों में, 'मन तरपत हरि दरसन को आज' सुना। मैं रुक गया। मैं जानता था कि इस धरती पर फ़ज़लू के अलावा वह कोई दूसरा नहीं हो सकता। मैंने

थोड़ा पास जाकर देखा। कपड़े से मुँह ढके, हड्डियों का ढाँचा बना फ़ज़लू एक दीवार के साथ बैठा गा रहा था। उसका मुँह ढका था पर उससे सड़ने की बदबू आ रही थी। मेरी हिम्मत नहीं हुई कि फ़ज़लू से बात करूँ। मैं चुपचाप वहाँ से चला आया।

कल मुझे ख़बर मिली थी कि घाट के पास एक भिखारी की लाश पड़ी है। यह भी कि उसकी कोई पहचान नहीं हो पा रही है क्योंकि उसका मुँह बुरी तरह सड़ गया है। अलबत्ता इतना ज़रूर है कि उसकी पोटली में मुहम्मद रफ़ी के गानों की किताब मिली है। शाम तक मैंने फ़ज़लू को सुपुर्दे ख़ाक कर दिया। उसके साथ वह किताब भी दबा दी।

बाहर की तेज़ बारिश से चूहे बेचैन होकर ऊधम कर रहे हैं। दरवाज़ा खुला है जिससे कुछ बौछारें अन्दर आ रही हैं। बाहर लगे आजादी के जश्न के कई झंडे बारिश में भीगकर पोतड़ों की तरह लटक गये हैं। मैं घर जा रहा हूँ।

यह आख़िरी इन्दराज़ था।

सुबह मुंशी ने जब हॉल में फर्श पर झाड़ू लगायी तब उसे फर्श पर गुच्छों में उलटे पड़े सैकड़ों कीड़े, चूहों की कुतरी लकड़ी के भुरभुरे रेशे, कबूतरों की बीट और पानी में भीगे, फूले हुए पटरे मिले थे।

सन् 1995 की सर्दियों का कोई महीना था जब शाम से ही कोहरा गिरने लगा था। हॉल के हल्के अँधेरे में चुपचाप बैठा विवान, ऊपर लकड़ियों की रेलिंग पर ठंड से सिकुड़े चूहों को गर्मी पाने के लिए दौड़ते हुए देख रहा था। रेलिंग पर दौड़ते चूहों के पीछे की छोटी, नक्काशीदार, पत्थरों की खिड़कियों की जाली थी। जाली के पार ठंडी तैरती हुई सफेदी थी। इस सफेदी में कुहासा था, धुआँ था, चाँदनी थी, बाहर किसी छत पर सूखते सफेद कपड़े थे और ठंड से बचने के लिए, दुबके, सफेद कबूतर भी थे। यह वह मौसम था जब रोज़ रात को, कोई-न-कोई लावारिस लाश, किसी बुझी हुई भट्टी के पास सेंक लेने की कोशिश में या पेड़ के नीचे टूटे पत्तों की राख में दुबकने की कोशिश में, सर्दी से ऐंठी हुई मिलती थी। हॉल के अँधेरे, सीलन, कुहासे की धुन्ध, जाली पर ऊँघते कबूतर, धूल की किसकिसाहट ओर विवान की गहरी उदासी के बीच, कभी भी, अस्पताल से, रेलवे स्टेशन से, पुलिस थाने से या फिर कोई राहगीर भी, ऐसी लाश के बारे में बताने आ सकता था। यही हुआ भी। हॉल का लकड़ी का दरवाज़ा ढकेलकर एक आदमी अन्दर आया। वह

अन्दर आकर आँखें मिचमिचा रहा था। वह तेज़ रोशनी से कम रोशनी में आया था इसलिए दरवाज़े से घुसते ही, कुछ क्षण रुक गया था। उसके गले में मफलर था, हाथों में नीले रंग के ऊन के दस्ताने थे। उसने एक पुराना कोट पहन रखा था जिसकी ऊपर की जेब में दो चश्मे थे। एक चश्मा उसकी आँखों पर था। उसकी ऊँचाई अच्छी थी। कन्धे पर झोला लटका था जिसमें कुछ किताबें थीं। उसका चेहरा कसा हुआ था और हल्की दाढ़ी में छुपा था। विवान की मेज के सामने आकर रुका वह। उसने कुछ क्षण विवान को देखा। फिर मेज पर हथेलियाँ टेककर थोड़ा आगे की ओर झुका। विवान के चेहरे पर अपनी गर्म भाप छोड़ते हुए, बहुत धीरे-से फुसफुसाया।

''वीवा?''

दौड़ते हुए चूहों को देखती हुई विवान की आँखें एकदम से ठहर गयीं। आँखों को घुमाकर उसने उस आदमी को देखा। वह उसी तरह मेज पर हथेलियाँ टेककर झुका हुआ, विवान को देख रहा था। विवान ने अपना 'वीवा' नाम 1988 में आख़िरी बार सुना था, जब जेल में उसकी बनायी हुई टोकरियों का हिसाब रखनेवाला और इस दफ्तर में नौकरी लगवानेवाला दीवान उसे जेल के बाहर दरवाज़े तक छोड़ने आया था। वीवा और इस विवान डगलस के बीच अब बहुत दूरी थी। इस दूरी में रिमाडी के जंगल थे, जेल थी, कन्धे पर लग्घी रखकर भूसाटोली से अफीम कोठी तक के लैम्पपोस्ट थे, मय्यत कमेटी के दफ्तर की लावारिस लाशें थीं। विवान से उत्तर न पाकर वह आदमी थोड़ा आगे और झुक गया, इतना, कि उसकी मुँह से निकलनेवाली गर्म भाप के बाद भी, विवान चश्मे के पीछे छुपी उसकी छोटी, कोनों में सफेद कीचड़ भरी आँखें भी देख सकता था।

''मैं बैठ सकता हूँ वीवा?'' उसने उसी तरह, बहुत धीरे-से, लगभग फुसफुसाते हुए पूछा। उसकी आवाज़ में वैसी खरखराहट थी जैसी चूहों के पंजों से पुरानी लकड़ी के खुरचने से हो रही थी। विवान ने सर हिलाया। वह विवान के सामने की कुर्सी पर बैठ गया। बैठने के बाद उसने चारों ओर नज़र घुमाकर देखा। लकड़ी के पटरों के फर्श, हॉल की गुम्बदाकार छत, लकड़ी की रेलिंग, उस पर दौड़ते चूहों को देखा, फिर जाली से झाँकते सफेद कुहासे, सफेद कबूतर, सफेद चाँदनी को देखा, फिर खम्भों के पीछे घूमते गलियारे में जाला बुनती मकड़ी को देखा, अलमारियों में बन्द रोज़नामचों को देखा, फिर विवान को देखा। उसने अपने कोट की जेब में हाथ डालकर तीन चित्र निकाले। उन चित्रों को उसने मेज पर फैला दिया। ये तीनों चित्र विवान डगलस के थे।

''तुम्हारा पूरा नाम विवान डगलस है।'' उसने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया। ''तुम्हारे पिता विन्सेंट डगलस ने 1932 में एक हिन्दू महिला से विवाह किया। 1933 में तुम्हारा जन्म हुआ। अपने स्कूली दिनों में तुम फुटबाल के बेहतरीन

खिलाड़ी थे। 14 साल की उम्र में तुमने कविताएँ लिखना शुरू कर दिया। 1951 में 18 साल की उम्र में तुम हॉस्टल चले गए। तुम पढ़ने में बहुत तेज़ नहीं थे। इतिहास तुम्हारा प्रिय विषय था। तुम प्रोफेसर बनना चाहते थे। हॉस्टल में तुम्हारा सम्पर्क ऐसे लोगों से हुआ जो उस समय इस देश की नयी और ढोल-बाजे के साथ मिली हुई आजादी को झूठा समझते थे। इसके पूरे ढाँचे को बदलना चाहते थे। इसे बदलने के लिए वे सिर्फ़ हिंसा के तरीकों पर विश्वास करते थे। उनके प्रभाव में आकर तुम 1956 में रिमाडी के जंगलों में चले गए। वहाँ तुम 17 साल तक रहे। उन सत्तरह सालों में तुमने विचार, क्रान्ति, परिवर्तन, अनुशासन और प्रतिबद्धता के नाम पर, अलग-अलग जगहों पर बहुत-सी हत्याएँ कीं। इस देश की चुनी हुई वैधानिक सरकार के समानान्तर सरकार चलायी, समानान्तर सत्ता केन्द्र बनाए। 1973 में तुम पकड़े गए। तुम्हें जेल हुई। 1988 में तुम जेल से छूटे और तब से यहाँ चुपचाप अकेले, अपने अतीत से पूरी तरह अलग होकर रहते हो।

''अपने गुरिल्ला साथियों के बीच तुम्हारा इतना आतंक और प्रभाव था कि तुम्हारे शब्द उनके अलिखित संविधान और नीतियाँ थीं। तुम उनके निर्विवाद नेता थे। वे सब तुमको प्यार करते थे और प्यार से 'वीवा' कहते थे। आज भी गुरिल्लों की दुनिया में 'वीवा' नाम सम्मान से लिया जानेवाला नाम है। तुम्हारे कुछ वाक्य आज भी सूक्तियों की तरह गुरिल्लों की कक्षाओं में पढ़ाए जाते हैं। जैसे कि, 'चूहे यानी गिनीपिग बड़े उद्देश्यों के लिए मरते हैं। उन्हें नहीं पता होता कि उन्होंने कितना महान काम किया है। यदि करुणा और दया की नज़र से देखते तो दुनिया में आज तक कोई भी दवा विकसित नहीं होती। बड़े उद्देश्यों के लिए कुछ को अपने जीवन का बलिदान करना ही होता है। वे चाहे चूहे हों या मनुष्य।' जैसे कि, 'अगर तुम्हें स्वतन्त्रता चाहिए तो तुम्हें स्वप्नों का गुलाम होना पड़ेगा।' जैसे कि, 'जब मैं इस दुनिया से विदा लूँ तो तालियाँ बजाना जैसे स्टेज से एक कलाकार को विदाई दी जाती है।' रिमाडी के जंगलों में रहते हुए तुमने सैकड़ों नए लड़कों को गुरिल्लों के रूप में तैयार किया, उनके दल बनाए, पुलिस वालों की हत्याएँ कीं। जब तुम पकड़े गए तुम भूखे थे, बीमार थे, और पूरी तरह परास्त हो चुकी इच्छाशक्ति वाले ऐसे पिल्ले की तरह थे जिसने चुपचाप पुलिस के सामने समर्पण कर दिया था। पन्द्रह साल इस शहर की जेल में रहने के बाद तुम 1988 में जेल से छूटे। अब तुम यहाँ लैम्पपोस्ट जलाते हुए, लावारिस लाशों का रोज़नामचा लिखते हुए, उनका अन्तिम कर्म करते हुए, चुपचाप गुमनामी का जीवन बिता रहे हो। तुम्हारी इन पहली तीनों तस्वीरों के साथ, तुम्हारी आज की चौथी तस्वीर यही है जिसका कोई प्रिंट मेरे पास अभी नहीं है। मैं तुम्हारे बारे में इतना ही जानता हूँ।''

वह आदमी एक झटके से चुप होकर कुर्सी पर, पीछे की तरफ लुढ़क गया।

उसका सर कुर्सी की पुश्त से टिक गया। वह लम्बी साँसें ले रहा था।

विवान डगलस चुपचाप उसे देख रहा था। वह आदमी विवान डगलस के बारे में बहुत कुछ जानता था। बहुत कुछ नहीं भी जानता था। वह माँ, परित्यक्त ईश्वर और ग़ालिब के बारे में नहीं जानता था। वह अँगूठी, विन्सेंट के पेशाब और मौसी के आधे सर के दर्द के बारे में नहीं जानता था। महकते हुए साँवले जंगल के बारे में नहीं जानता था, महारुख़ के बारे में, आकाशदियों के बारे में नहीं जानता था। विवान की आलोकित स्मृतियों से जन्म लेती हुई जिजीविषा के बारे में नहीं जानता था। उन परछाइयों के बारे में नहीं जानता था जो वास्तविकताओं से बड़ी होती हैं।

कुछ देर साँस लेने के बाद वह फिर सीधा हुआ और मेज पर रखी तस्वीरों पर झुक गया। उसने तीनों तस्वीरों को बराबर से फैलाकर, उनकी तरफ इशारा करते हुए पूछा, ''ये तीनों तस्वीरें तुम्हारी हैं?''

विवान कुछ नहीं बोला।

''हाँ, तुम्हारी ही हैं। पहली यह, चौदह साल की, जब तुम इस उम्र में कविताएँ लिखते थे, दूसरी यह, जिसमें तुम एक खूँखार गुरिल्ले में बदलकर, अपने संगठन में शीर्ष पर थे, और तीसरी, तुम्हारे पकड़े जाने के ठीक बाद की है। तुम्हारी इन तस्वीरों में तुम्हारी आकृति की रेखाएँ और तुम्हारे मनोवेग, ये सब मनुष्य के गहरे अध्ययन के लिए बहुत अनुकूल हैं। ये तस्वीरें वास्तव में सिर्फ़ तस्वीरें नहीं, किसी इनसान के तेज़ी से बदलते मनोविज्ञान और उस मनोविज्ञान के बदलने से उसकी आकृति पर, आत्मा पर, चिन्तन पर पड़नेवाले प्रभाव के बेजोड़ दस्तावेज़ हैं। ख़ासतौर से तब, जब ये तस्वीरें एक हत्यारे की हों।'' वह फिर चुप हो गया। इस बार वह पीछे कुर्सी की पुश्त तक नहीं लुढ़का।

''कौन हो तुम?'' विवान ने पूछा।

''मैं मनोविज्ञान का एक प्रोफेसर हूँ। अपने तीन छात्रों को तुमसे मिलवाना चाहता हूँ। इन तस्वीरों का और तुम्हारे जीवन का उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। तुम्हारे इंटरव्यू, रेडियो वार्ताएँ, तुम्हारे लिखे पैम्फलेट, तुम्हारी कविताएँ पढ़ी हैं। जेल के रिकार्ड देखे हैं। वे तुमसे कुछ सवाल पूछेंगे। कुछ बातें करेंगे। इन तीनों तस्वीरों से, तुम्हारे जीवन के महत्त्वपूर्ण पड़ावों, परिवर्तनों, तुम्हारी मानसिकताओं की, और तुम्हारे छुपे हुए अज्ञात संवेग केन्द्रों की चीरफाड़ करेंगे। इन तस्वीरों की रेखाओं के आधार पर, इनसान के, ख़ास तौर से एक हत्यारे के मन और मस्तिष्क को पढ़कर, कुछ सिद्धान्त स्थापित करेंगे। इसे इस तरह समझ लो कि तर्कपूर्ण सिद्धान्तों के आवरण में हत्या करनेवाले हत्यारे के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए उन्होंने तुम्हें चुना है। वे किसी भी साधारण हत्यारे के साथ ऐसा कर सकते थे,पर बहुत कम ऐसे होते हैं जो अपनी हत्याओं को महान समझते हैं, उन पर गर्व करते हैं। उन्हें एक

पवित्र लबादा दे सकते हैं। इसके लिए वे इतिहास में जाकर, वहाँ घूमनेवाले असंख्य महान हत्यारों में से किसी का चुनाव कर सकते थे, पर उनमें भी बहुत कम ऐसे हैं, जो इस तरह अन्त तक आते-आते अपनी हत्याओं के प्रेरक विश्वास को खो देते हैं, गुमनामी में चले जाते हैं। हमें प्रायश्चित करनेवाले, पश्चाताप करनेवाले या पूरी तरह पराजित हो चुके हत्यारे भी ढूँढ़ने से मिल जाते, पर वे सब मृत थे। ऐसा जीवित हत्यारा हमारे सामने कोई नहीं था, सिवाय तुम्हारे। उन्हें तुमसे बहुत-से सवाल भी करने हैं। ध्यान रखो कि उनके लिए तुम सिर्फ़ प्रयोगशाला में रखे एक मेंढक की तरह होगे जिसे वे हर तरफ से चीरकर उसकी एक-एक कोशिका के विकास को समझने की कोशिश करेंगे। मुझे विश्वास है कि तुम मेरी इन बातों को, और इस तरह के अध्ययन करनेवाले लड़कों की ज़रूरत को, आसानी से समझ लोगे।'' वह साँस लेकर फिर कुर्सी से टिक गया।

''वे मेरे साथ आये हैं। हम अभी स्टेशन के पास एक होटल में रुके हैं। हम जितनी जल्दी वापस अपने शहर लौट सकें हमारे लिए अच्छा है। हमें होटल का खर्च देना पड़ रहा है।'' वह धीरे-धीरे रुकते हुए बोला।

''मुझे क्या करना है?'' विवान डगलस ने अपनी आवाज़ सुनी। उसने सोचा था कि वह इन्कार करेगा। एक हत्यारे की तरह देखे जाने, विश्लेषित किये जाने और घृणा का पात्र बनकर, किसी मेज पर मेंढक की तरह चीरे जाने से इन्कार करेगा। पर उसने ऐसा नहीं किया। वह जीवन में कभी नहीं कर पाया था। जो उस तक आता था, विवान डगलस ने हमेशा आने दिया था।

''कुछ नहीं। हम सिर्फ़ बातें करेंगे। शायद तुम्हारे चार या पाँच घंटे हमें चाहिए होंगे।''

''कब?''

''जल्दी से जल्दी।''

''कहाँ?''

उस आदमी ने चारों ओर देखा।

''यह भी अच्छी जगह है।''

''पर यहाँ कभी, कोई भी आ सकता है।''

''हम रात को भी बैठ सकते हैं, आज रात को भी, खाने के बाद। अगर हमारा काम पूरा हो जाता है तो सुबह हम होटल छोड़ सकते हैं।'' उस आदमी के चश्मे पर हल्की धुन्ध जम गयी थी। शायद जाली से आते कोहरे की थी या फिर भाप के वे गर्म टुकड़े थे जो बोलते समय उसके मुँह से निकल रहे थे। उस धुन्ध में चश्मे के पीछे उसकी छोटी आँखें दिखना बन्द हो गयी थीं।

''क्या मैं अपना नाम,पता बताऊँ?'' उसने विवान से पूछा।

''नहीं,'' विवान ने सर हिलाया, ''हम दो घंटे बाद मिलते हैं, यहीं।''

उस आदमी ने कोट की बाँह हटाकर देखी।

''नौ बजे?''

विवान ने सर हिलाया। वह आदमी उठ गया। उसने एक बार फिर ऊपर लकड़ी के पटरों पर दौड़ते चूहों को देखा, फिर खिड़की के बाहर सफेद कोहरे को, चाँदनी को, ठंड में दुबके जाली पर फड़फड़ाते सफेद कबूतरों को देखा।

''ये यहीं रहते हैं?'' उसने विवान से पूछा।

''कौन?''

''ये चूहे?''

''हाँ...कबूतर भी।''

''और तुम?''

''मैं?'' विवान ने उसे आश्चर्य से देखा। फिर बुदबुदाया, ''हाँ...मैं भी।''

उस आदमी ने सर झुकाया और दरवाज़ा खोलकर हॉल के बाहर चला गया।

उसने दरवाजा खोला तो विवान को बाहर की झलक दिखी। इस एक क्षण में ही बाहर से बहुत कुछ अन्दर आया। पेड़ों के बीच बिखरे हुए गीले कुहासे में जलते लैम्पपोस्ट की पीली रोशनी में चलता एक अपाहिज, अज़ान की काँपती आवाज़, सूखे तने को ठोंकता नीला पक्षी, बिजली के तारों पर झूले की तरह उलटे लटके चमगादड़, उनके ठीक पीछे चिमनियों से उठता काला धुँआ, घरों की खिड़कियों से फँसी, लिथड़ती पीली रोशनियाँ, सड़क के कोने के सूखे पत्तों पर सरकता दोमुँहा केंचुआ, सेमल के पेड़ पर बेमौसम उगा अकेला एक बड़ा लाल फूल, औरत के कन्धे पर सर रखकर धीरे-धीरे सरकता हुआ लिवर सिरोसिस का मरीज़। वह आदमी एक क्षण में इतना सब हॉल के अन्दर बैठे विवान डगलस के पास ढकेल गया।

विवान ने आँखें बन्द कर लीं।

''एक हत्यारे के चहरे पर सबसे चमकदार और निष्कलुष उसकी हँसी होती है। इस हँसी के पीछे जो वास्तविक होती है, वह झाड़ी के पीछे छुपे बाघ की तरह हिंसक, तनी हुई और एकाग्र लक्ष्यों की शक्ति के साथ झपटने वाली होती है। वीवा की ये तीन तस्वीरें आप लोग देख रहे हैं। पहली तस्वीर तब की है जब वह चौदह वर्ष का विद्यार्थी था। दूसरी तस्वीर उस समय की है जब वह खूँखार गुरिल्ले में बदल चुका था। तीसरी तब की है जब सत्रह साल रिमाडी के जंगलों में रहने के बाद वह पकड़ा गया था। चौथी तस्वीर के रूप में वह खुद सामने बैठा है। आज वह 72 साल का

बूढ़ा होकर, लावारिस लाशों का अन्तिम कर्म करता है।

''इन तस्वीरों में वीवा के विकास का एक पूरा मनोवैज्ञानिक क्रम है। अगर इनका गहराई से, सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो इन तस्वीरों में वीवा के सारे द्वन्द्व, संशय और छुपे आवेग हैं। ये हमें मनोविज्ञान के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र देते हैं। वीवा की तस्वीरों को ही अध्ययन के पीछे चुनने का एक बड़ा मक़सद यह था, कि इन तस्वीरों में यह दिखता है कि कैसे वास्तव में वीवा वह था नहीं जो वह सत्रह सालों तक जंगल में बनकर रहा। यह शायद वीवा को स्वयं भी पता नहीं होगा कि उसने इन सत्रह सालों में एक झूठा और ओढ़ा हुआ जीवन जिया है। क्या किसी मनुष्य के साथ ऐसा हो सकता है? ऐसा क्यों हुआ? ऐसा क्यों होता है? क्या हम सब अपनी पूरी ज़िन्दगी के अनेक हिस्सों को इसी तरह जीते हैं? या फिर यह सिर्फ़ वीवा का जीवन था जो पहली तस्वीर से चौथी तस्वीर तक आते हुए अपने पूरे आधार ही बदलता रहा? क्या ऐसा था कि वीवा ने जब, जीवन का जो हिस्सा जिया, वह अक्सर पहले के उसके जिये जा चुके जीवन से बिल्कुल उलटा था और उस पर, उतनी देर, उसे पूरा विश्वास रहा? क्या उसमें तब भी उसके जीवन के छूटे हुए दूसरे हिस्सों की स्मृतियाँ पूरी चमक और चुभन के साथ थीं? क्या उन स्मृतियों की उसके जीवन में कोई भूमिका थी? क्या आज, इस चौथी तस्वीर के रूप में बैठे वीवा के पास, बाकी तीन तस्वीरों के वीवा के जीवन की स्मृतियाँ हैं? हैं तो किस रूप में हैं? उसके किस काम आती हैं? या फिर यह, कि क्या हमारे विश्वास, हमारी प्रतिबद्धताएँ, हमारी निष्ठा, विचार अक्सर इतने कमज़ोर होते हैं कि पहले आघात में टूट जाते हैं जैसे वीवा के साथ हुआ? पकड़े जाने पर वीवा ने पुलिस को सब कुछ बताया। उसे पूरा सहयोग दिया इसीलिए उसे कम सजा हुई। यही नहीं, वह ईश्वर की बातें करने लगा। क्या वीवा के पास यह ईश्वर पहले से हमेशा था? क्या यह रिमाडी के जंगलों में भी था? यदि हाँ, तो इसका ईश्वर वहाँ क्या करता था जब यह हत्याएँ करता था? यदि नहीं था, तो कैसे यह अकस्मात पैदा हुआ? क्या किसी के अन्दर ईश्वर अकस्मात पैदा हो सकता है? वीवा अब अपने जीवन के बारे में क्या सोचता है? इस तरह के बहुत से सवाल हैं जिन्हें आप यदि इन तस्वीरों को सामने रखकर पूछें, तो आप एक जटिल, संघर्षशील और बेहद तेज़ी के साथ बदलते हुए मनुष्य के मनोवेगों को समझ सकेंगे। बहुत कम तस्वीरें होती हैं जो इस तरह दस्तावेज़ का काम कर सकती हैं। ये तस्वीरें उन तस्वीरों में से हैं।

''पहली तस्वीर में इसकी आँखों के गीलेपन में अबोध पवित्रता है। कविताओं से बोझिल स्वप्नों की लम्बी शृंखला है। इसने इस उमर में जो कविताएँ लिखीं, उनमें आश्चर्यजनक रूप से प्रेम की, दैहिक प्रेम की अराजक याचना है। एक अत्यन्त साधारण मनुष्य की तरह जीने की प्रार्थनाएँ हैं। इस पहली तस्वीर में जो हँसी दिख

रही है, इसमें निर्मलता है। होठों के कोने जीवन के स्वागत और स्वीकार में झुके हुए हैं। जबड़ों की हड्डियों के उभारों से मुक्त, यह दुनिया के लाखों-करोड़ों इनसानों की मासूमियत भरी चौदह वर्ष की तस्वीरों की तरह ही है।

"आप ध्यान से देखें कि दूसरी तस्वीर में उसकी आँखों का वह गीलापन खत्म हो चुका है जो पहले तस्वीर में था और जो प्रेम, कविता की पवित्रता और निर्मलता से जन्मता था। उस गीलेपन को उन हत्याओं ने सोख लिया जो उसने दूसरी तस्वीर के वक़्त तक कीं। आप देख रहे हैं कि इसमें उसके होठ पहली तस्वीर से अलग तरीके से खुले और फैले हैं। उनमें आपको हँसी ढूँढ़नी पड़ेगी और वह खुले हुए मुँह के अन्दर वाले अँधेरे हिस्से में दिखेगी। किसी अँधेरी गुफा में बेचैन छटपटाते भेड़िए की तरह। इस दूसरी तस्वीर में उसके गालों की हड्डियाँ उभर चुकी हैं। चमड़ी कसी हुई है। आँखों में पैना चौकन्नापन है और कान खड़े हैं। यह चेहरा बताता है कि इसको अपने दिमाग़ में होनेवाली हर हलचल, हर शै की अन्तिम रूप से पूरी जानकारी है और उस पर पूरा विश्वास है। यह दूसरी तस्वीर बताती है कि यह व्यक्ति बेहद कठोर, दृढ़ निश्चयी और लक्ष्य के प्रति समर्पित व्यक्ति है। इसके लिए वह कुछ भी कर सकता है। यह उस छटपटाते हुए जानवर का असली प्रतिबिम्ब है जो अपनी पूरी चेतना या सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ, सिर्फ़ शिकार की हत्या करना चाहता है। याद रखो, कुशल और सफल हत्यारे में कभी कोई संशय, कोई द्वन्द्व नहीं होता। ठीक उसी तरह, जैसे भूखे जानवर में नहीं होता। इस दूसरी तस्वीर में वीवा अपने दल की सत्ता के शिखर पर है। यह किसी किसी भी द्वन्द्व से रहित उसका चर्चित रहा, गहरा आत्मविश्वास है। पर तीसरी तस्वीर में, पकड़े जाने पर यही व्यक्ति बिल्कुल बदला हुआ दिखता है। इस धूमिल चेहरे पर काँपता हुआ कालापन है। इसकी आँखें निस्तेज और झुकी हुई हैं। इसके होठ किनारों से सूखकर लटक गये हैं। इसकी दाढ़ी लार से भीगी है। इसके चेहरे पर गहरी हताशा और झुँझलाहट है। पश्चाताप की गहरी रेखाएँ हैं। जबड़ों की हड्डियों के मशहूर उभार सिकुड़ गये हैं और कसी हुई चमड़ी कोने में दुबके पिल्ले की तरह लटकी हुई है। यह तीसरी तस्वीर बताती है कि यह पूरी तरह पराजित, असफल और टूटे हुए आदमी की तस्वीर है। मनोविज्ञान का मर्म है, सिर्फ़ चेहरे से व्यक्ति के सूक्ष्मतम मनोजगत को या दर्शनिक भाषा में कहें, तो उसकी आत्मा के स्पन्दन को पकड़ना है। तीसरी तस्वीर यह भेद खोलती है कि वास्तव में यह व्यक्ति कभी अपनी मान्यताओं की सत्यता और औचित्य पर विश्वास ही नहीं करता था। दूसरी तस्वीर में, चट्टान जैसा दृढ़ और अविचलित, निष्ठाओं से आर-पार तक गुँथा-सा दिखता हुआ जो आदमी है, वह वास्तव में उसका, कोशिश करके ओढ़ा हुआ मुखौटा है, जिसके पीछे यही तीसरी तस्वीर वाला चेहरा हमेशा था। यह अन्दर

से हमेशा ही पूरी तरह संशय, भय, द्वन्द्व से भरा था, जिसे यह अपनी छद्म हँसी में छुपाए रखने का कौशल जानता था। आज ख़ुद चौथी तस्वीर के रूप में वीवा आपके सामने यहाँ बैठा है। आप देखेंगे कि यह इसी तीसरी तस्वीर के चेहरे और मनोजगत का विस्तार ही है। वैसी ही लटकी, झुकी खाल, निस्तेज आँखें, हताशा और पराजय से भरे जीवन का प्रतिबिम्ब है। हत्याओं के प्रायश्चित के रूप में ही शायद यह पिछले सात सालों से, लावारिस लाशों का अन्तिम कर्म पूरा करता है। इस तरह पहली तस्वीर से चौथी तस्वीर तक यह एक विलक्षण मनोविज्ञान का विषय है। ध्यान रखें कि यह अपनी पराजय कभी स्वीकार नहीं करेगा। यह कभी अपनी हताशा, अपने प्रायश्चित को नहीं मानेगा, क्योंकि इसकी दूसरी तस्वीर का व्यक्ति इसके अन्दर कभी पूरी तरह नहीं मरेगा, क्योंकि कोई गुरिल्ला पूरी तरह कभी नहीं मरता। वीवा आज हमारे साथ है। आप उसके अतीत, उसके कार्य, उसके स्वभाव, विचार, चरित्र, सिद्धान्तों के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आप अब उससे खेलिए। उसी तरह, जैसे कोई डॉक्टर मरीज़ की चीरफाड़ करते समय औजारों से खेलता है। आप उसके एक-एक रेशे को उधेड़नेवाले, नस को चटकानेवाले सवाल पूछिए। इन सवालों की खासियत यही होनी चाहिए कि धीरे-धीरे यह खुलने लगे कि वीवा कोई महान योद्धा नहीं, एक बेहतर व्यवस्था को समर्पित कोई गुरिल्ला नहीं, बल्कि एक कुशल हत्यारा था जिसने सिद्धान्त, यूटोपिया और क्रान्ति के नाम पर हत्याओं में सुख पाना शुरू कर दिया था। रक्त, बारूद की गन्ध, घुटनों के बल झुकी गिड़गिड़ाहटों ने, उसे सत्ता का मद, सार्वभौम होने की सन्तुष्टि दी। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है कि कविता लिखनेवाले एक चौदह वर्ष के बालक को पता भी नहीं चला कि कब धीरे-धीरे, अनायास वह एक आदतन हत्यारे में बदल गया।

''आप तीन लोग हैं। ध्यान रखें कि एक बार में एक ही सवाल करेगा। यह भी ध्यान रखें कि वीवा ने बात करने की स्वीकृति इसलिए दी है कि वह आपके काम आने में खुशी महसूस कर रहा है। यह भी ध्यान रखें, कि उससे बातें करके आप उससे सम्मोहित हो सकते हैं, उसकी बातें से चमत्कृत हो सकते हैं। सम्भव है आपमें से कोई समर्पित गुरिल्ले या फिर, माफ़ करिएगा कुशल हत्यारे में ही बदल जाए। तो आप और वीवा अब आमने-सामने हैं।''

विवान डगलस ने चुपचाप सब कुछ सुना। उस आदमी के जाने के बाद विवान डगलस दो घंटे हॉल में ही बैठा रहा था। जब चूहे ऊपर के पटरों में खिसककर पीछे बनी नयी जगहों में चले गये, जाली से कबूतर, कुहासा और चाँदनी भी चली गयी, तब विवान ने एक बार सोचा कि ऊपर जाकर सुबह की बनायी हुई उबली मेथी,

मटर और बाजरे की रोटी खा ले। उन सबको आने में ज़्यादा देर भी हो सकती थी या फिर आने के बाद वे ज़्यादा देर तक रुक सकते थे। विवान ने ऐसा केवल सोचा ही, पर किया नहीं। कई बार वह अजीब से कारणों से जो सोचता था, नहीं करता था। यह कारण उसे ठीक एक क्षण पहले पता नहीं होता था। वह अचानक जन्मता था, फैलता था, जैसे रोशनी के कुकुरमुत्ते लैम्पपोस्ट के बल्ब का खटका खींचते ही जन्मते थे और फैलकर सब कुछ ढक लेते थे। ठीक एक क्षण पहले वे नहीं होते थे। विवान ने सोचा कि वह उठेगा तो ठंड में उसकी खाल की सिकुड़न बिखर जाएगी। इस तरह से बिखरने पर बनी खाली जगह में सर्दी रेंगती हुई घुस जाएगी। विवान वहीं, उसी तरह बैठा हुआ उनके आने का इन्तज़ार करता रहा था।

वे ठीक समय पर आये थे। प्रोफेसर के साथ दो लड़के और एक लड़की थी। विवान के सामने पड़ी दो कुर्सियों पर प्रोफेसर और लड़की बैठ गये। लड़कों ने अन्दर गलियारे में रखे दो स्टूल उठा लिये। मेज के सामने स्टूल रखकर वे भी बैठ गये। प्रोफेसर जब तक बोलता रहा था, विवान चुपचाप मेज पर फैली अपनी पुरानी तस्वीरों को देखता रहा था। वे अखबारों से काटी हुई तस्वीरें थीं। विवान ने सोचा कि अगर सौ गुना बड़ा दिखानेवाले लेन्स से वह इन्हें देखे, तो शायद इन तस्वीरों के अन्दर भी वह सब दिखेगा जो विवान की स्मृतियों में आता रहता है और जिनके बारे में शायद ये लोग नहीं जानते। गुम्बदनुमा छत में प्रोफेसर की आवाज़ ऊपर-नीचे होती हुई चारों ओर घूम रही थी। काँपती, उत्तेजित और फुसफुसाती हुई। किसी उड़ते हुए परिन्दे के पंखों की फ़ड़फड़ाहट की तरह। प्रोफेसर की आवाज़ जब बन्द हुई तब विवान ने सर उठाकर सामने देखा। वे तीनों विवान को सीधे आँखों में देख रहे थे। विवान ने धीरे-धीरे उनके चेहरों पर देर तक रुकती हुई अपनी 52 साल पुरानी चर्चित बेधक नज़र डाली। विवान डगलस ने बहुत दिन बाद इस तरह किसी को देखा था। चेहरे पर नज़र रोककर बात करना छूट गया था। उनके चेहरों पर बल्ब की रोशनी गिर रही थी। उस रोशनी में वे अबोध, जोशीले और नाजुक लग रहे थे। उनके चेहरों से होते हुए, उनकी अबोधता, जोश और नर्मी को छूते और छोड़ते हुए, विवान डगलस ने ऊपर जालियों के पार देखा। वहाँ अब अँधेरा था। उस अँधेरे में डूबता शहर था जो हथेलियों से पसीना छूटने की तरह धीरे-धीरे दिन की रोशनी, जागृति और जीवन के हाथों से फिसल गया था। विवान डगलस ने फिर निगाहें वापस घुमाकर मेज पर रखी तस्वीरों पर टिका दीं। वे तीनों भी उतने ही ध्यान से विवान डगलस को, वीवा को देख रहे थे।

उन तीनों के सामने सिकुड़ा हुआ एक बूढ़ा आदमी था। इस हद तक सिकुड़ा और बूढ़ा कि उसके हाथ-पाँव, पूरा शरीर किसी गुप्त रोग से पिचका हुआ लगा था। उसके हाथ की उँगलियाँ जोड़ों से टेढ़ी हो रही थीं। उसकी दाढ़ी सफेद, छोटी और

घनी थी। भौहों के बाल सफेद थे। कमरे की पुरानी, बड़ी हत्थेदार कुर्सी पर वह बैठा था। हाल के खम्भों के पीछे के गलियारे में, जहाँ मुजरा करनेवाली लड़कियों के खुशबूदार कमरों के पोशीदा दरवाज़े खुलते थे, लगे बल्ब की रोशनी उस पर गिर रही थी। उन तीनों ने उसे ध्यान से देखा फिर मेज पर पड़ी उसकी तस्वीरों को। उन तस्वीरों में और सामने बैठे इस आदमी में कोई मेल नहीं था। इसके बाल झड़ चुके थे। जबड़े की हड्डियों से बना रोबीला कसाव और हत्यारा उभार, निचुड़ी हुई खाल में बदल चुका था। उसकी निस्तेज आँखों में कुछ तलाशने जैसा और न मिलने पर थक जाने जैसा भाव था। उनमें उसकी विख्यात कठोरता या पहली तस्वीर में दिखते हुए नीले स्वप्नों का जाल नहीं था। उसकी नाक तस्वीरों में नीचे से चौड़ी थी पर वह भी अब खुरदुरी होकर पिचक गयी थी। तस्वीर के चौड़े कन्धे, बाहर निकली चौड़ी छाती, उसके ढीले-ढाले कत्थई रंग के दो पैबन्द वाले कोट में धँसी हुई थी। वह अचकचाता हुआ सामने कुर्सी पर बैठा था। सर झुकाए मेज पर रखी अपनी तीनों तस्वीरों को सहमता हुआ देख रहा था। उसकी दृष्टि भेदती हुई, निर्भीक और भावप्रवण नहीं थी। वह कहीं नहीं रुकती थी। वह सब देखता हुआ भी कुछ नहीं देख रहा था।

''तो'' प्रोफेसर ने कहा, ''वीवा आपके सामने है। शुरू करें।'' लड़की गुलाबी रंग के कपड़े पहने थी। उसके सर पर सफेद रंग की हाथ के बुने ऊनवाली टोपी थी। गुलाबी कपड़ों के ऊपर पूरी बाँह का काला स्वेटर था। वह थोड़ी आगे झुकी। मेज पर उसने दोनों कोहनियाँ टेक दीं। सीधे वीवा की आँखों में देखा।

''तुमने पहली कविता कब लिखी?''

''इन्हें तुम नहीं आप कहें।'' प्रोफेसर ने टोका।

''नहीं, जब तक हम मनोविज्ञान समझने के लिए एक हत्यारे से बात कर रहे हैं, उसे आप कहने का कोई कारण नहीं है।'' लड़की फुफकारी।

''नहीं, वीवा के लिए हत्यारा शब्द उचित नहीं है। ख़ास तौर से अपमानजनक रूप में। इसके अलावा यह सम्बोधन या फिर पहले की बनायी हुई कोई छवि या पूर्वाग्रह आपको सही नतीजे पर पहुँचने से रोकेगा।''

लड़की एक क्षण रुकी फिर बिना सम्बोधन के बोली, ''पहली कविता कब लिखी?''

वीवा ने सर उठाकर लड़की को देखा। वह दुबली-पतली थी, साँवली थी। उसके माथे पर नन्हीं सिकुड़न थी। वह आक्रामक और कठोर होने की और दिखने की नाकाम कोशिश कर रही थी। वीवा ने उसे देखा और सोचा कि उसे नहीं पता कि अगर वह यह कोशिश छोड़ दे, तो एक खूबसूरत जंगल की तरह दिख सकती है, या बारिश या फिर एक गहरी उदासी। बल्लीमारान का मिर्ज़ा न जाने कब वीवा

के सिरहाने, फर्श पर उकड़ूँ बैठ गया। बू-ए-गुल, नाल-ए-दिल, दूद-ए-चराग़-ए-महफिल भी हो सकती है, उसने वीवा के कान में धीरे-से कहा। वीवा को फिर उसका सवाल सुनायी पड़ा।

''चौदह साल की उमर में।'' वीवा बोला। इतनी देर में वीवा पहली बार बोला था। उन सबने उसकी आवाज़ सुनी। उसकी आवाज़ में लरज़ थी, पर गहराई थी।

''यानी यह पहली तस्वीर जिस उमर की है, तब?''

''हाँ।''

''कविता में क्या लिखा था?''

''याद नहीं।''

''क्यों लिखी थी?''

''अपने घर के नौकर की लड़की को फुसलाने के लिए।''

''फुसलाना मतलब?''

''मुझे लगा था कि किसी लड़की पर कविता लिखना उसको फुसलाने का, मतलब उसके शरीर को कब्जे में लेने का सबसे आसान तरीका है।''

''यह विश्वास तुम्हें क्यों था?''

''बहुत-से विश्वास ऐसे होते हैं जो पता नहीं चलता कि कब, कैसे जन्म ले लेते हैं,जैसे बिल्कुल अभी का यह विश्वास।''

''कौन-सा?''

''तुम्हारे जंगल होने, बारिश होने या गहरी उदासी होने का।''

लड़की एक क्षण अचकचायी। एक क्षण के लिए तेज़ी से उसके चेहरे की सारी आक्रामकता, पैनापन, वीवा को अपमानित करने का भाव गायब हुआ। उसकी जगह एक गहरी उदासी कौंधी फिर वह पहले की तरह हो गयी।

''फिर क्या हुआ?'' उसने अपनी आवाज़ को कठोर बनाने और वीवा ने जो कहा उससे असम्पृक्त होने की कोशिश की।

''मैं कामयाब हुआ।''

''यही तुम्हारी कविता की उपलब्धि थी?''

''हाँ।''

''उसके बाद जो कविताएँ लिखीं वे कब लिखीं?''

''हमेशा लिखता रहा।''

''वे किस तरह की थीं?''

''सब तरह की।''

''क्या उनमें किस तरह का विद्रोह, इन संरचनाओं से असहमति या परिवर्तन

के लिए हत्याओं के समर्थन की बातें थीं?''

''नहीं, उनमें प्रेम था, प्रकृति थी, देह की गहरी लालसाएँ थीं।''

''क्यों?''

वीवा ने उसे हैरानी से देखा।

''क्योंकि यह सब मेरे जीवन में था, इसलिए कविताओं में था।''

''आख़िरी कविता कब लिखी?''

''कोई जब तक जीवित है आख़िरी कविता कैसे लिख सकता है? मृत्यु की आख़िरी सिहरन भी एक कविता हो सकती है। हो सकता है मेरी आख़िरी कविता वही हो जब मृत्यु मेरे कपाल में चीते के नाखूनों की तरह धँसे।''

लड़की चुप हो गयी।

''बीच में कभी ऐसा हुआ जब तुम्हें लगा हो कि अब तुम कविताएँ नहीं लिख सकते?'' एक लड़का बोला। उसकी आँखों पर चश्मा था। उसके होठ सर्दी से फटे हुए थे जिन पर सूखा हुआ कत्थई खून चिपका था। उन पर जीभ फेरता हुआ वह बोल रहा था।

''नहीं,'' वीवा ने उसे देखा।

''जब तुमने एक बार चार लोगों को कत्ल किया, सिर्फ़ इसलिए कि तुम्हारी अदालत ने उन्हें क्रान्ति विरोधी ठहराकर मौत की सजा दी, जब वे घुटनों के बल बैठकर गिड़गिड़ाए और तुमने हँसते हुए उन्हें गोली मार दी, तब तुम प्रेम कविताएँ कैसे लिख सकते थे?''

''मैंने अपनी सबसे अच्छी प्रेम कविताएँ ठीक उसके बाद लिखी हैं जब मैंने किसी को मारा है।''

''असम्भव है, तुम कैसे लिख सकते हो?''

''सब लिखते हैं। अगर तुम निर्लिप्तता से हत्या करते हो, तो तुम उसके बाद गहरी सन्तुष्टि और मुक्ति का अनुभव करते हो। तब तुम सबसे अधिक रचनात्मक हो सकते हो। कभी शिकार पर झपटते चीते को देखो। उस समय उसका शरीर अपने सर्वोत्तम रूप में होता है। उसकी एक-एक मांसपेशी सक्रिय होती है। उसका सन्तुलन, उसकी लय, उसकी प्रतिबद्धता सब अपने चरम पर होते हैं। रचनात्मकता का सर्वश्रेष्ठ क्षण भी यही तो होता है। घाटी में पंख फैलाए शिकार पर उतरते बाज को देखो। क्या वह सुन्दरतम कविता नहीं है? साँप की फुफकार और उसके झपटने को देखो। कितनी लय, कितनी एकाग्रता, कितना तेज़ है उसमें। सर्वश्रेष्ठ कविताओं के क्षण यही होते हैं। यह सब हत्या करने के ठीक पहले होता है। मेरे साथ भी यही था। मैंने अगर किसी को मारा, तो अगले ही क्षण मैं उससे उसी तरह अलग हो गया जैसे मैं देह के मैल को रगड़कर उससे अलग हो जाता हूँ। मेरी उन कविताओं में

एक अतिरिक्त चमक है जिन्हें मैंने हत्या के क्षण में, या ठीक बाद में लिखा है। पता नहीं तुम लोगों ने कभी बहते हुए गर्म, ताज़े लहू को देखा है या नहीं। उसमें एक ख़ास तरह की चमक, ख़ास तरह की गर्माहट, ताज़गी होती है। धरती से फूटे नये सोते की तरह ऊर्जा, गति और उल्लास से भरा रक्त। मेरी कविताओं में यह सब है। वे सब मेरे लिए सुन्दर और पवित्र कविताएँ थीं जिन्हें मैंने जंगल के एकान्त में, नींद न आने पर, अपने शिविर में लिखा।''

''अभी जब तुम गर्म, ताज़े लहू की, उसकी चमक की बात कर रहे थे, तो तुम्हें नहीं पता तुम्हारा चेहरा एकदम से बदल गया था।'' लड़की फिर मेज पर झुक गयी, ''तुम्हारे जबड़ों की हड्डियाँ थोड़ा उठ गयी थीं, आँखों में पैनापन पैदा हो गया था। तुम्हारे कान खड़े हो गये थे। तुम्हारी जीभ अपने होंठों पर घूमने लगी थी। तुम इस दूसरी तस्वीर वाले वीवा बन गये थे।'' लड़की की आवाज़ तेज़ हो गयी थी। वह आगे की ओर झुकती हुई गर्म साँसें छोड़ रही थी। उसके चेहरे पर फिर वीवा के लिए हल्की घृणा की छाँह तैरने लगी थी। उसकी आँखों में वीवा के लिए भर्त्सना थी। ''तुम्हें यह सब नहीं पता होगा, पर मैंने उसे देखा है। मैं पहचानती हूँ इसको, इस हत्यारे उन्माद को।''

''उन्माद और विजय पवित्र होते हैं।'' विवान बुदबुदाया, ''तुम ग़लत समझ रही हो। मुझे पता चला था। मुझे हमेशा पता रहता है कि मेरे चेहरे पर क्या है। मैं उसे सौ गुना बड़ा करके रोज देखता हूँ।''

लड़की ने कुछ देर उसे बुदबुदाते हुए देखा फिर सर को झटका दिया, ''तुम हत्या को महिमामंडित कर रहे हो।'' लड़की गुर्रायी, ''एक सभ्य समाज में कोई भी तर्क हत्या को ग्लोरीफाई करने की इजाज़त नहीं दे सकता। हत्यारे को सम्मान नहीं दे सकता।''

''समाज अगर रचना को सम्मानित कर सकता है, तो उसे हत्या को भी करना पड़ेगा। हत्या एक रचना हो सकती है। हत्या करने के लिए तैयार होना अपने आपमें एक रचनात्मकता है। इसे हर व्यक्ति नहीं कर सकता। इसके लिए सालों तक अपने अन्दर घृणा को पालना पड़ता है। साधारण घृणा नहीं, कोबरे की तरह धीरे-धीरे कुंडली खोलकर पसरती हुई जहरीली घृणा को, और उससे स्वयं को बचाते हुए ज़िन्दा भी रहना पड़ता है। यह एक कला है। कुशलता से इसका शिल्प साधना पड़ता है। अगर तुम्हें सिखाया गया है कि हर हत्या एक अपराध है तो ग़लत सिखाया गया है। हत्या के पीछे उद्देश्य व्यक्तिगत नहीं है, तो हत्या रचनात्मक है। वे सब, जो अपरिचित, अनजान लोगों को मारते हैं, वे यह सोचते हैं कि उनके इस काम से दुनिया बदलेगी। इसीलिए दुनिया की श्रेष्ठतम, रचनात्मक, महानतम घटनाएँ बड़ी हत्याओं के बाद ही हुई हैं। वैचारिक परिवर्तन, दार्शनिक उत्पत्तियाँ

हत्याओं के बाद जन्मती हैं। दूसरी बड़ी लड़ाई में सबसे ज़्यादा लोग मारे गये। मनुष्य के पक्ष में सबसे ज़्यादा साहित्य भी तभी लिखा गया। युद्ध में निर्लिप्तता से हत्याएँ होती हैं इसलिए युद्ध मनुष्य को आगे बढ़ाते हैं। उसे कर्मठ, विचारवान और प्रगतिशील बनाते हैं। युद्ध की हत्याएँ मनुष्य का श्रेष्ठतम आख्यान हैं?''

''यह श्रेष्ठता कौन तय करेगा?'' लड़की की आवाज़ में घृणा थी, ''तुम, तुम्हारे ऐसे कायर, भगोड़े लोग, जो अब इन बिलों में चूहे की तरह दुबके बदबू मारते हैं। ऐसे लोग अपनी हत्याओं को, मनुष्य की महानता का श्रेष्ठतम आख्यान सिद्ध करेंगे?''

''प्रत्येक जाग्रत व्यक्ति अपने जीवन का उद्देश्य स्वयं तय करता है। हत्यारा भी। यह उसका अधिकार है। उसके लिए हत्या करने का उद्देश्य महान होता है, पवित्र होता है, इसलिए अविचलित निष्ठा के साथ वह उसे करता है। मैंने पहले ही कहा, यदि अपने लाभ के लिए नहीं करता है, तो। मैंने कभी कोई हत्या अपने लाभ के लिए नहीं की।''

''तुमने पहली हत्या किसकी की?'' लड़की थोड़ा पीछे हो गयी। जब वह बिल्कुल आगे झुक गयी थी तब उसकी खाल के नीचे काँपती चमक विवान ने देखी थी। पहले उसे लगा था कि यह बल्ब की रोशनी की चमक है, पर दूसरे ही क्षण वह समझ गया था कि यह उसके अन्दर की घृणा, विरक्ति और क्रोध है जो उसकी खाल को फाड़ना चाहता है। वह ऐसी क्यों है? यह विवान को परेशान कर रहा था। वह अब पीछे थी। उसकी साँसों की गर्मी विवान से दूर हो गयी थी।

''किसकी की थी?'' लड़की ने फिर पूछा।

''अपने दल के एक गद्दार की। हमने अपने कुछ नियम बनाये थे जिनके अनुसार कुछ काम ऐसे थे जिन्हें करने पर मौत की सजा निश्चित थी। इनमें गद्दारी, यानी पुलिस को हमारी सूचनाएँ देना भी था। हमने अपने दल में एक आदमी को पकड़ा था। हमने अपनी अदालत लगायी। मुझे याद है। चाँदनी रात थी। जंगल में दरख्तों के बीच उस हल्की रोशनी में तीन घंटे तक मुकदमा चला। उस आदमी ने हर तरह से माफी माँगी पर हमने उसके लिए मौत तय की। यह ज़रूरी भी था, क्योंकि हम उस वक़्त अपने दल को तेज़ी से बढ़ा रहे थे। अगर हम बिल्कुल नये होते तो शायद उसे छोड़ सकते थे, अगर बहुत मजबूत हो गये होते तब भी शायद छोड़ सकते थे। पर हम बिल्कुल चढ़ाई पर थे इसलिए उसे मारना ज़रूरी था। दूसरों को दिखाने के लिए भी। दल का प्रभावशाली व्यक्ति होने और तब तक कोई हत्या न करने की वजह से बाबू ने मुझे ही गोली मारने का आदेश दिया। वह आदमी घुटने के बल बैठा था। उसे घसीटकर खड़ा किया गया। एक पेड़ से बाँध दिया गया। तय किया गया कि उसकी आँखों पर पट्टी न बाँधी जाए। मैं पिस्तौल लेकर उसकी

तरफ बढ़ा। वह मुझे देख रहा था। चाँदनी की हल्की रोशनी में धीरे-धीरे उसका चेहरा सफेद होने लगा। उसका डर देखकर मेरी घृणा बढ़ती जा रही थी। मारने का आदेश मिलने पर मैं थोड़ा परेशान हुआ था, पर अब मुझे यह बहुत आसान लग रहा था। जैसे शरीर पर सरकते हुए एक गन्दे कीड़े को झटके से हटाकर मार दिया जाता है, यह कुछ उसी तरह था। मैं अपने अन्दर घृणा का एक उबाल महसूस कर रहा था। मुझे उस क्षण यह पहली बार समझ में आया कि घृणा से हत्या बहुत आसान हो जाती है। मैंने नली उसकी कनपटी पर सटा दी। वह आँखें बन्द करके बुदबुदाने लगा। शायद प्रार्थना कर रहा था या रो रहा था। मैंने इत्मीनान से ट्रिगर दबा दिया। उसकी गरदन लुढ़क गयी। मैंने बारूद की गंध महसूस की। उसकी कनपटी से बहते गर्म लहू को देखा। मैं वापस आ गया। मेरे अन्दर एक क्षण के लिए भी कोई अपराध बोध नहीं था। वह पूरी रात उसी तरह मरा हुआ, पेड़ से बँधा रहा। मैं उस रात गहरी नींद भी सोया। सुबह जब मैं उठा तो मैंने उसे फिर देखा। सिर्फ़ एक क्षण के लिए, फिर वह मेरे दिमाग़ से, मेरी ज़िन्दगी से हमेशा के लिए चला गया। वह पहला व्यक्ति था जिसे मैंने ठंडे दिमाग़ से, शान्त मन से और पूरी निर्लिप्तता से गोली मारी थी।''

''तुमने जिस तरह इसका वर्णन किया, यह बता रहा है कि तुम्हें इसमें गहरा सन्तोष, गहरा आनन्द मिला था।''

''हाँ, उसके बाद जब भी दल में इस तरह, सजा के तौर पर किसी को मारा जाता था, तो मैं नि:संकोच इस काम के लिए आगे बढ़ता था। मुझे अच्छा लगता था।''

''क्या अच्छा लगता था? गर्म, चमकता लहू देखना या दुनिया को बदल देने की अपनी शक्ति और अपने विश्वास का मजबूत होना?''

''दोनों में ज़्यादा फ़र्क नहीं है।''

''है, दोनों में बहुत फ़र्क है। वह फ़र्क यह है कि तुम्हें पता भी नहीं चला कि कब तुम्हें इसमें आनन्द भी आने लगा। तुम अगर कुछ दिन तक हत्या नहीं कर पाते थे तो बेचैन हो जाते थे। झुँझलाते थे, सोते नहीं थे। तुम्हारी हालत उसी तरह हो जाती थी जैसे खून पीने वाले जानवर की हो जाती है। तुम्हारी दूसरी तस्वीर एक सन्तुष्ट हत्यारे की तृप्ति की मनोदशा बताती है जिसके ऊपर महान उद्देश्य का नकली आवरण पड़ा रहता है। हत्याएँ करने के ये उद्देश्य किसी के लिए भी तय किये जा सकते हैं। ईश्वर, राष्ट्र या नये मनुष्य को गढ़ने जैसे विचारों के भी। इसका सबसे बड़ा सबूत है कि एक बार जंगल में भटक जाने और बहुत दिन तक कोई हत्या न कर पाने के कारण तुमने एक हँसते हुए अन्धे गड़रिए की हत्या कर दी थी, यह कहकर कि क्रान्ति को बदसूरत नहीं होना चाहिए।''

"हाँ, मैं कविताएँ लिखता था। हो सकता है मैंने यह वाक्य किसी कविता की पहली पंक्ति की तरह कहा हो। वैसे मैं यह मानता भी हूँ। क्रान्ति का मतलब है हर तरह की सुन्दरता पाना। देह की, मन की, जीवन की। भूख, प्यास, निर्धनता, बीमारी, अशिक्षा, अशक्त बुढ़ापा, इस तरह की हर बदसूरती से मुक्ति। गौतम बुद्ध ने भी यही बदसूरती देखी थी और उससे मुक्ति पाने के लिए बदसूरती को त्याग दिया था। मैंने त्यागा नहीं, उस बदसूरती को गोली मार दी। मेरी और गौतम बुद्ध की शान्तिपूर्ण करुणा में ख़ास फ़र्क नहीं था। मेरा आशय उस समय शायद यही था। मैं तब किसी बदसूरती को बर्दाश्त नहीं करता था।"

"उसमें अन्धा भी था?"

"हो सकता था, अगर वह हमारे किसी काम का न हो।"

"तुम्हें आज फिर कहा जाए कि इस अपंग को गोली मार दो, क्या मार दोगे?"

विवान कुछ नहीं बोला। कमरे में सन्नाटा छा गया। तीसरा लड़का बातचीत में शामिल नहीं था वह कलम चलाता हुआ तेज़ी से पूरी बात काग़ज़ पर लिख रहा था।

"अनपढ़ मजदूर, किसान, जिनके माध्यम से और जिनके लिए तुम सब कुछ बदलना चाहते थे, वे कैसे तुम्हारी इन बातों की जटिलता को समझ पाते थे।" दूसरे लड़के ने पूछा।

"उन्हें समझने की ज़रूरत नहीं थी। हम पर सिर्फ़ विश्वास करने की ज़रूरत थी। वे जब देखते थे कि मौजूदा व्यवस्था में उन्हें कुछ नहीं मिल सकता और हम उस व्यवस्था को बदलकर उन्हें ज़िन्दगी की सब बुनियादी ज़रूरतें दे सकते हैं, ऐसी व्यवस्था बना सकते हैं जिनमें उनकी सीधी हिस्सेदारी हो, तो वे आँखें बन्द करके हमारे पीछे चलने लगते थे। हैमलिन के बाँसुरी वादक के पीछे चलनेवाले चूहों की तरह। उनके अन्दर इस अन्धविश्वास को पैदा करने का सबसे छोटा और सबसे आसान रास्ता होता है व्यवस्था के कुछ हिस्सेदारों को गोली से भून देना। भय दुनिया की सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति है। हम इसी पर पूरा नियन्त्रण रखते थे। इसे जन्म देते थे, पालते थे। जिन स्थितियों को दूसरे तरीकों से लोग सालों तक नहीं बदल पाते, हम उन्हें कुछ पल में बदल देते थे। हमारी हत्याएँ इसीलिए हमेशा पवित्र और महान होती थीं, क्योंकि वे उन लोगों के अन्दर हमारे लिए इस विश्वास को जन्म देती थीं, जीवित रखती थीं और यह विश्वास बहुत ज़रूरी था।"

"चाहे तुम उन्हें उनकी मौत तक भी ले जाओ?"

"हाँ, वे हम पर इतना ही विश्वास करते थे और हमारे लिए मर जाते थे।"

"पर तुम खुद भी तो अपनी सत्ता में वही बन गये थे जिसे तुमने नष्ट किया

था? बाबू भी यही बन गया था। उसने तो गुरिल्लों की पूरी सत्ता को नियन्त्रण में लेने के बाद, पुरानी सरकारी व्यवस्थाओं से आपसी सहमति, समझ बढ़ायी। वह ख़ुद में इतना निरंकुश, दमनकारी और वर्चस्ववादी भी बना कि उसने विरोध करनेवालों को प्रतिक्रान्तिवादी कहकर मौत के घाट उतारा। उसने अपनी अदालतें बनायीं, ख़ुद फैसले किये, दल की नीतियाँ तय कीं, अपने लोगों को आगे बढ़ाया। तुम पकड़े गये यह दूसरी बात है, वर्ना तुम भी वही थे। सच तो यह है कि तुम लोग यह पूरा चक्र कहीं से नहीं तोड़ पाते। तुम ख़ुद वही बनते जाते हो जिसका विरोध हमेशा करते हो।''

''नहीं, तुम क्षणिक आवेश में या फिर जो तुम्हारी मामूली किताबों में लिखा है उसे पढ़कर बोल रहे हो। तुम चार लोग हो। एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र हो, सहयोगी हो, एक-दूसरे के विश्वासपात्र हो। समूह में मिलकर मुझ पर हमला कर रहे हो। तुम चाहो तो हम एक खेल खेल सकते हैं। मैं तुम चारों में से किसी एक को तुम्हारा ऐसा अधिकारी बना देता हूँ जिसके पास तुम पर शासन करने का, तुमसे जुड़ी हर चीज़ को नियन्त्रित करने का और तुम्हारे बारे में हर निर्णय लेने का अधिकार हो। इसी हॉल के एक कोने में, सिर्फ़ दो घंटे के लिए, मैं तुम लोगों को इस तरह छोड़ दूँ, तो वह व्यक्ति, जिसे ये सब अधिकार दिये गये होंगे, पूरी तरह बदल जाएगा। वह अचानक तुम्हें गुलाम समझने लगेगा। उसकी नज़र में तुम्हारे लिए तुच्छता और आवाज़ में तुम्हारे लिए हिकारत आ जाएगी। वह वैसा ही हो जाएगा जैसा तुम मुझे इतनी देर से, दूसरी तस्वीर में दिखा रहे हो। उसके जबड़े की हड्डियों, उसके हँसते हुए मुँह की गुफा, उसकी आँखों की चमक, सब पैदा हो जाएगी, जो अभी कहीं नहीं हैं। किसी भी व्यवस्था का नियन्त्रक होना, एक दूसरे मनोविज्ञान को जन्म देता है जो हर तरह से उनका दमन करता है जिन्होंने उसे वहाँ तक पहुँचाया है। चाहो तो हम लोग यह खेल खेलें।'' विवान डगलस ने प्रोफेसर को देखा।

''तुम ठीक कह रहे हो। यही होगा। हमें खेल में समय बरबाद नहीं करना चाहिए। आगे चलो।'' प्रोफेसर ने उन तीनों को कहा।

''अपनी यह तीसरी तस्वीर देखो।'' लड़की मेज पर फिर झुकी। उसने विवान की तीसरी तस्वीर उसकी आँखों के नीचे रख दी। ''तुम एक दुबके हुए चूहे की तरह दिख रहे हो। तुम्हारा हर रोंआ भय से काँप रहा है। तुम्हारी आँखों में गहरा पश्चाताप है, हताशा है, पराजय है। तुम्हारे जबड़े की हड्डियाँ गल चुकी हैं। तुम्हारी वह कुख्यात हँसी, तुम्हारी बढ़ी हुई दाढ़ी और मूँछ के पीछे जूँ की तरह दुबकी है। तुम अपने पूरे बीते हुए जीवन पर अपना विश्वास खोते हुए, उसे व्यर्थ में गया हुआ मानते हुए, पश्चाताप में डूबे हुए हो। तुम भयभीत हो। मुझे विश्वास है

कि यह डर तुम्हारे अन्दर हमेशा रहा होगा जिसे तुमने महान विचारधारा, पवित्र उद्देश्य और समूह की शक्ति के आवरण में, हत्याओं की आड़ में छुपाकर रखा। वही अब छलाँग मारकर तुम्हारे चेहरे की हर सिकुड़ी हुई नस पर नाच रहा है। हम कहना चाहते हैं कि तुम असली व्यक्ति यही थे। कायर भयभीत, दोहरे चेहरेवाले। यदि तुम ऐसे नहीं होते, तो पकड़े जाने के इस क्षण भी तुम्हें अपने कामों पर, अपने जीवन की सार्थकता पर गर्व होता। तुम्हारी आँखों में अपनी निश्चित मिलनेवाली मृत्यु की चमक होती, जैसी इतिहास में ऐसे बहुत-से लोगों की आँखों में रही है। जो कुछ तुमने अब तक कहा, उसका कोई मेल तुम्हारी इस तीसरी तस्वीर से नहीं है, बल्कि तुम्हारी यह तीसरी तस्वीर, तुम जो अब हमारे सामने चौथी तस्वीर की तरह बैठे हो, उससे मेल खाती है। सच तो यह है कि तुम वह कभी नहीं थे जो रिमाड़ी के जंगलों में बनकर रहे। तुम वह हो जो तीसरी तस्वीर में हो या अब इस चौथी तस्वीर में हो। तुम इसे स्वीकार करो। हमें अपना सच बताओ। हम इसी को जानने और समझने आये हैं।'' लड़की ने एक झटके से सर पीछे फेंक दिया। विवान डगलस ने हैरानी से लड़की को देखा।

वह हाँफ रही थी। वह ज़्यादा बोलने पर पीली पड़ जाती थी। खून की कमी से उसकी खाल की चमक ख़त्म होने लगती थी। वह गहरी साँसें ले रही थी। वे दोनों लड़के भी उसे हैरत से देख रहे थे। प्रोफेसर ने भी स्टूल मेज के और पास खिसका लिया।

''तुम मुझे परास्त नहीं कर सकतीं।'' विवान फुसफुसाया, ''मैं अपनी जिजीविषा अपनी स्मृतियों से लेता हूँ।''

किसी ने नहीं सुना। लड़की ने सुना।

''कैसी पराजय, कैसी जिजविषा और कैसी स्मृतियाँ।'' लड़की भी उसी तरह फुसफुसायी, ''क्या स्मृतियों और जिजविषा में कोई सम्बन्ध होता है?''

विवान कुछ नहीं बोला। हॉल में सन्नाटा छा गया। लड़की ने कुछ देर और साँसें लीं फिर सीधी हो गयी।

''तुम तीसरी तस्वीर के बारे में बताओ। अगर तुम थक गये हो तो हम चाय पी सकते हैं। हमारे पास फ्लास्क है। हम चाय लाये हैं।''

''यह ठीक होगा।'' प्रोफेसर ने कहा। तीसरा लड़का जो लिख रहा था, उसने काग़ज मेज पर रख दिये। फर्श पर रखे बैग को उठाकर उसने मेज पर रखा। बैग खोलकर फ्लास्क निकाला। प्लास्टिक के पाँच गिलास निकाले। गिलासों को उसने मेज पर फैला दिया। फ्लास्क का ढक्कन खोला। उसमें से भाप निकली। चाय अभी गर्म थी।

''हमें पता था, इसलिए हम पाँचवाँ गिलास भी लाए।'' प्रोफेसर ने कहा।

विवान को लगा कि उसे चाय की सख्त ज़रूरत थी। उसने कुछ खाया भी नहीं था। हो सकता है वे बैग से बिस्किट भी निकालें। पर ऐसा नहीं हुआ। लड़के ने चाय का गिलास विवान के आगे कर दिया। विवान चाय की गर्म भाप को जल्दी-से-जल्दी अन्दर तक ले जाना चाहता था। अन्दर के अँधेरों में, ठंड में, रिमांडी के जंगलों में। लड़की ने भी चाय का गिलास उठा लिया। उसकी आँखें अब उदास थीं। उसने जिजीविषा की, स्मृतियों की बात सुन ली थी। पर शायद पूरी तरह नहीं सुनी थी या समझी थी। बाकी तीनों ने भी गिलास हाथों में ले लिये।

"हम चाय पीते हुए भी बात कर सकते हैं।" प्रोफेसर बोला।

"हाँ कर सकते हैं।" लड़की बोली।

विवान ने चाय के कुछ घूँट लिये फिर बोलने लगा।

"मुझे पकड़ा नहीं जाना था, मर जाना था। यह हमारा मूल सिद्धान्त है। पर ऐन वक़्त पर, जब मैं आख़िरी गोली कनपटी पर रखकर चला रहा था, नाल फँस गयी। वे मुझ पर झपटे और मैं पकड़ा गया।"

"पर अख़बारों में है कि तुमने आत्मसमर्पण किया। तुमने उस पुलिस अफसर से चिल्लाकर कहा कि गोली मत चलाओ, मैं वीवा हूँ। मुझे ज़िन्दा पकड़ोगे तो मैं तुम्हारे ज़्यादा काम का हूँ।"

विवान कुछ देर चुप रहा फिर चाय के कुछ लम्बे घूँट लेकर उसने खाली गिलास मेज पर रख दिया। उदासी से लड़की को देखा, फिर बोलने लगा।

"दो सप्ताह तक मैं और मेरे आदमी लगातार एक ऊँचाई पर चढ़ते रहे। हमने रास्ते में एक नदी पार की। पहाड़ियों पर भी चढ़े। दो बार हमारी मुठभेड़ पुलिस के दस्तों से भी हुई जिनके पास खोजी कुत्ते थे। इस तरह भागते हुए हमें कई दिन हो गये थे। हमारे आदमियों में थकान के गहरे लक्षण दिखने लगे थे। कभी वे आपस में झगड़ते थे कि किसने अपने हिस्से से अधिक खाना खा लिया है, कभी वे एक-दूसरे की शिकायत करते थे कि वह उन्हें अपमानित कर रहा है। बच्चों की तरह अपनी परेशानियाँ तथा एक-दूसरे की शिकायत लेकर मेरे पास आते थे। यह सब इस हद तक बढ़ने लगा कि उन्हें मतिभ्रम होने लगा था। एक नौजवान ने कहा कि उसने पाँच सिपाहियों को आते हुए देखा है। बाद में पता चला कि वह उसका दिमाग़ी फितूर था। उसी रात मैंने इस बात को समझ लिया था कि अगर ये स्थितियाँ चलती रहीं तो इस तरह की लड़ाई हमारे लोगों के मनोबल को गहरे से तोड़ सकती है।

"चाँदनी रात में धूल-भरी सड़क पर चलकर हम पहाड़ की चट्टान पर बसे हुए 50 घरों के एक छोटे-से गाँव में पहुँचे। वहाँ मुझे लगा कि गाँव के लोग डरे हुए हैं और हमारे आसपास से हट जाने की कोशिश में हैं। यह एक बदली हुई स्थिति थी। लोग हमारा स्वागत करते थे। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों है?

मुझे पता लगा कि गाँव का मुखिया हमारे आने के बारे में जानता था और इसीलिए एक दिन पहले ही भाग गया है। हम बौखलाए हुए थे। मैंने गुस्से और बदले की भावना से गाँव की छोटी-सी परचून की दुकान से खाने का सब सामान छीन लिया। दुकान की रोती हुई मालकिन के पैसे माँगने की गिड़गिड़ाहट भी ठुकरा दी। हमें वह जगह फौरन छोड़ देनी चाहिए थी।

"पर उस जगह को छोड़ने की बजाय हम रात में थोड़ा आगे एक खंडहर में ही रुक गये। वहाँ हम दो दिन रुके। हमने वहाँ एक छोटी-सी सभा भी की जिसमें मेरे एक साथी ने हमारी इस 'क्रान्ति' को समझाते हुए 15 दलित व किसानों के सामने एक भाषण दिया। उनमें से एक आदमी जो स्कूल मास्टर था, वह भी उसी सभा में बोला। उसने हमारे आन्दोलन, हमारी विचारधारा के बारे में बेहद चिढ़ानेवाले सवाल पूछे। वह चालाक लोमड़ी और किसान का अजीब-सा मिश्रण था। उस गाँव के एकान्त में रहनेवालों के लिए, उनके बीच में हमारी जैसे दाढ़ीवाले, गन्दे व हथियारबन्द गुरिल्लों की उपस्थिति काफ़ी अजीब थी। उनमें से कुछ हमको असाधारण मानव समझ रहे थे। भोजन की तलाश में आये हम लोगों के बारे में एक किसान औरत ने लोगों से कहा कि हम जादूगर थे क्योंकि हमको उस गाँव में रहनेवाले हर व्यक्ति के बारे में, हर बात पता थी। जब हमने उसको खाने के पहले रुपये दिये तो उसको लगा कि वह पैसा जादुई है और वह उसके हाथ में आते ही गायब हो जाएगा। हमारी इस बुरी हालत के समानान्तर दूसरी तरफ सरकार एक अच्छी और कारगर मनोवैज्ञानिक रणनीति तैयार कर रही थी। उसने जनता के हित के कई कार्यक्रम अचानक शुरू कर दिये थे, जैसे सड़क बनाना, गुरिल्ला विरोधी साहित्य को बँटवाना, किसानों को ज़मीन का अधिकार देना, गाँवों में स्कूल खोलना वगैरह। इसी के साथ पुलिस आम जनता से हमारे बारे में सूचनाएँ भी इकट्ठा कर रही थी।

"पता नहीं क्यों, धीरे-धीरे मैं अपनी स्थिति से बिल्कुल निर्लिप्त हो चुका था। मानो जानते हुए पूरी लापरवाही के साथ अपनी निश्चित मृत्यु की तरफ बढ़ रहा था। यह थकान थी या पराजय या मेरा बुनियादी चरित्र, या स्मृतियों का घटाटोप या सबका मिश्रण था, जो भी था, पर गहरी उदासीनता के साथ हम गुरिल्ला लड़ाई के सारे नियम-कायदे अब तोड़ रहे थे। जैसे कि बिना आगे की ख़बर लिये हुए खुले घूमना, किसानों की सहायता के बिना चलना और यह भी न जानना कि पुलिस को हमारे आने की सूचना है।

"एक दोपहर हमने एक बूढ़ी औरत को अपने पास बकरी चराते हुए देखा। उसको एहतियातन रूप से पकड़ लिया। उसने कहा कि उसको पुलिस के सिपाहियों के बारे में क्या किसी के बारे में कुछ जानकारी नहीं है। मुझे उस पर सन्देह हुआ।

मैंने दो साथियों को उसके साथ उसके गाँव के छोटे-से घर भेजा। वहाँ उनको उसकी एक बौनी-सी लड़की मिली। उन्होंने उसको 20 रुपये दिये और कहा कि वह किसी को उनकी उपस्थिति के बारे में न बताये। हालाँकि ऐसा करते समय उनको बहुत कम विश्वास था कि वह उनकी बात मानेगी।

''हमारे साथ केवल 13 आदमी थे। उस रात हम बहुत हल्की चाँदनी में, पहाड़ के नीचे उतरे। हमने एक तंग झरने को पार किया जिसके किनारे पर आलू लगे हुए थे। सुबह दो बजे हम रुक गये क्योंकि एक साथी को बिना चश्मे के कुछ भी ठीक से नहीं दिख रहा था।

''सुबह होते ही हमने देखा कि पहाड़ की चोटी पर दोनों तरफ से हमको घेरे हुए सिपाही मौजूद हैं। हम एक अजीब-सी, गली ऐसी जगह में, जो लगभग 300 मीटर लम्बी, 50 मीटर चौड़ी थी, के अन्दर घिर चुके थे। हमारे पास अब युद्ध करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। मैंने अपने साथियों से लड़ने के लिए तैयार होने को कहा। उनको तीन भाग में बाँट दिया। कुछ घंटे इसी तनाव में गुजरे। फिर लड़ाई शुरू हुई।

लड़ाई के बाद हमारे साथी मारे जाने लगे। हमारा एक-दूसरे से सम्पर्क भी टूट गया। आलू के खेत के बीच में एक बड़ी चट्टान के पीछे, अधूरे छिपे हुए मैंने अपनी एम-टू-कार्बाइन दागी। इसके बाद फौरन ही उसकी नली पर एक गोली लगी जिससे वह बेकार हो गयी। एक गोली मेरे बायें पैर की पिंडली में लगी। मैंने निकल भागने की कोशिश की। कुछ छिपे हुए सिपाहियों ने मुझे भागते देखा। जैसे ही वे कुछ फ़ासले पर रह गये, एक मजबूत काठीवाले इन्स्पेक्टर ने झाड़ी के बाहर निकलकर मेरे ऊपर बन्दूक तान दी। मैंने अपनी कनपटी पर रखकर ट्रिगर चलाया। पर वह फँस चुका था। वह मुझे पर झपटा और मुझे दबोच लिया। बाद में उसने लोगों को बताया कि मैंने उससे कहा— मत मारो क्योंकि तुम्हारे लिए मैं मरा होने के बजाय जीवित अधिक मूल्यवान हूँ।''

वीवा गहरी साँस लेकर चुप हो गया। लड़की ने कुछ देर उसकी साँसें सन्तुलित होने का इन्तज़ार किया फिर बोली, ''इस तीसरी तस्वीर में तुम एक डरे हुए चूहे की तरह दिख रहे हो। इसमें तुम्हारी महान क्रान्ति के लिए की गयी हत्याओं के औचित्य का विश्वास कहीं नहीं है। सच तो यह है कि वह कभी था भी नहीं। इसका सबूत है कि तुमने बाद में पुलिस को सब कुछ बताया। तुमने अपने दूसरे दलों की स्थितियों, सम्पर्कों, संगठन के ढाँचों के बारे में बताया। हथियारों के बारे में बताया। तुम इस क्रान्ति के सबसे निकृष्ट सिपाही सिद्ध हुए। तुमने उसके पूरे संगठन को, उद्देश्यों को, उनके आधार को नष्ट किया। तुम उनके लिए एक अभिशाप सिद्ध हुए। तुमने यह क्यों किया? क्यों सब इतनी आसानी से बता दिया?

क्या तुम डर गये थे?''

''नहीं, मैं बहुत उदास हो गया था।'' विवान डगलस ने धीरे-से कहा, ''कुछ भी नहीं बदला था। वह सब जो पहले था बस एक ढाँचे से दूसरे ढाँचे में उतर जाता था। वहाँ भी भय था। वहाँ भी स्वतन्त्रता नहीं थी। हम जिसके विरुद्ध दिखते थे, जिसके विरुद्ध होना चाहते थे, हम वही हो गये थे। बस शब्द दूसरे थे, तरीका दूसरा था, लोग दूसरे थे। बैकड्राप दूसरा था। क्रेन में लटकते ऊँट की आँखों का भय, उसकी परछाईं में गिड़गिड़ाती औरत का भय, स्पेनिश लड़की का भय। इनको जन्म देनेवाले समय में रहने से इन्कार करने के लिए मैं वहाँ गया था, पर मैं ख़ुद इस भय को जन्म देने लगा था। यह भयानक है कि तुम जिसके ख़िलाफ़ होना चाहो, वही बन जाओ। मैं यह समझ गया था। मैं इसीलिए उदास हो गया था। यह उदासी अचानक नहीं आयी होगी। धीरे-धीरे जमा हुई होगी, पर जिस क्षण मैं पकड़ा गया, उस क्षण मेरे अन्दर कुछ भी नहीं था सिवाय इस निस्संग उदासी के। मुझे लगा मेरा समय ख़त्म हो गया है। कोई फ़र्क नहीं पड़ता अब मेरे आनेवाले दिनों से मुझको। वे आयें या न आयें। कितना भयानक है ऐसा जीवन? मेरी तस्वीर में जो तुम्हें दिख रहा है वह यही होगा, डर नहीं। मैंने पुलिस को जो भी बताया, वह यातना के भय से नहीं। इसी उदासी से जन्मी विरक्ति से। तुम कभी उदास होकर देखो। जो जीवन में तुम कभी नहीं छोड़ सकते, वह सब कुछ तुम एक पल में छोड़ते चलते हो। नदी की तरह, वृक्ष की तरह, सीप की तरह, मृत्यु की तरह। मैं अपने दल वालों के लिए अभिशाप भी नहीं था। मैंने जो बताया वह सब पुलिस को पहले से मालूम था। जिस समय मैं पकड़ा गया, उसी समय उन पर भी हमले हुए। वे होने थे। वे सब भी असफल थे। मैं अगर कुछ दिन और नहीं पकड़ा जाता, तो मैं या बाबू किसी दूसरे को मार देते। मैं अब वहाँ आ गया था, जहाँ आगे कुछ नहीं था। डेड एंड था वह। सब कुछ असफल है। मनुष्य की स्वतन्त्रता, उसकी भयमुक्त साँस, उसकी रोग-भूख रहित देह, उसकी उज्ज्वल, पवित्र शान्ति। यह सब मनुष्य की बनायी किसी संरचना में सम्भव नहीं है। कहीं है तो सिर्फ़ उसकी अपनी बनायी उस संरचना में, जो वह स्मृतियों से बनाता है। आलोकित अनश्वर स्मृतियों से। वह इसमें हमेशा सुखी रहता है। स्मृतियाँ जिजीविषा का सबसे विश्वसनीय सूत्र हैं।'' विवान चुप हो गया। सब चुप थे। उसकी साँसों की आवाज़ चूहों के दौड़ने की आवाज़ों के साथ आ रही थी। धीरे-धीरे गहरा सन्नाटा छा गया। देर तक रहा।

''क्या यह दयनीय नहीं है कि दुनिया को बदलने का स्वप्न देखने और वंचित मनुष्य के लिए संघर्ष करनेवाले का ईश्वर में, स्मृतियों में, जीवन की निष्प्रयोजनीयता का समर्थन करनेवाले सिद्धान्तों में दुबक जाना? क्या यह पलायन जीवन को बहुत नीचे स्तर पर जीने का चुनाव नहीं है? क्या कभी सोचा इस पर कि

तुम क्या थे और क्या हो गये? दो बिल्कुल विपरीत जीवन में कोई तो एक व्यर्थ गया होगा? तुमने व्यर्थ जिया होगा?''

''नहीं, कोई भी जिया हुआ जीवन या उसका अंश भी, कभी व्यर्थ नहीं होता। उस पर पश्चाताप करना ग़लत है क्योंकि हमारा अपने जीवन पर ही सबसे कम अधिकार होता है। उसमें ही हमारा हस्तक्षेप सबसे कम होता है। घाटी की गहराइयों में अपने जीवन की गति में दौड़ता हुआ खरगोश नहीं जानता कि मीलों ऊपर आकाश में उड़ते हुए गरुड़ की नुकीली आँखें उसे देख चुकी हैं। उसका जीवन अब उसका नहीं गरुड़ का है। जब तक वह चाहे, जिस तरह चाहे। वही हम सब भी हैं। हम तो यह भी नहीं जानते कि हमारे जीवन में वह क्या है जो अन्त तक हमारे साथ शेष रहेगा? नितान्त हमारा अपना होगा? तुम सब यही देखकर चौंकोगे कि तुमने जिन क्षणों को दुबारा कभी सोचा भी नहीं, वे ही तुम्हारे जीवन में सबसे गहरी जड़ें जमाए रहते हैं। मैंने यह देखा है। स्पेनिश लड़की की आँखों में भूख और भय देखने के बाद मैं रात भर गाड़ी के काँच से मुँह चिपकाए बाहर देखता रहा था। मुझे नहीं पता था कि मेरी आँखों के सामने से क्या गुजर रहा था। वह जो भी था, मैं उससे इतना निर्लिप्त था कि उसे मेरे जीवन में कहीं नहीं होना चाहिए था। पर वही सब मेरे जीवन में शेष रहा। वही सब स्मृतियों में आया। आज भी आता है। कितना मामूली और कितना क्षणिक था सब। रात में नदी में कपड़े धोती औरत, ऊँची चट्टान की सीढ़ी पर बैठी बकरी, एबंडंड लिखे रेलवे स्टेशन के जर्जर सिगनल रूम, निर्जन रेत में मरे जानवर की हड्डियाँ, किले की टूटी दीवार पर गहरे नीले रंग का विज्ञापन, दीवार पर चिपके गोबर के कंडे, बैलगाड़ी से बाहर निकले पहिये पर बैठी चिड़िया। यह सब मेरा ही जीवन था, पर मैं उसके बारे में नहीं जानता था। हमने जो वास्तविक रूप से जिया वह हम नहीं जानते। हमने वह क्यों जिया यह भी नहीं जानते। फिर किस जीवन का कौन-सा पश्चाताप? वह हमारे नियन्त्रण में नहीं है, हमारी चेतना की परिधि में नहीं है। वह हमारा जीवन था ही नहीं। जो हमारे अपने नियन्त्रण में है, वह उतना ही है जो हमारी स्मृतियों में होता है। जो उससे छूट जाता है, वह सब हमेशा के लिए जीवन से बाहर हो जाता है, पूरी तरह नष्ट हो जाता है।''

सड़क पर भट्ठी के पास दुबके हुए किसी ने ठंड से सिहरकर अचानक आलाप उठाया। उसकी आवाज़ सब कुछ चीरती चली गयी। हॉल का पूरा सन्नाटा लरज़ गया।

''तुम्हारे जेल के रिकॉर्ड में लिखा है कि तुम बाद में कहने लगे कि तुम ईश्वर की लिपि पढ़ना जानते हो?'' लड़के ने पूछा।

''हाँ, मैं जानता हूँ।''

''इस बात का क्या मतलब है?''

विवान कुछ नहीं बोला।

''यह किस स्याही से किस काग़ज़ पर लिखी होती है? क्या मुझे सिखा सकते हो?'' लड़की फिर आगे झुकी। विवान ने उसे देखा। उसके चेहरे पर बाल बिखरे थे। झुकी हुई वह विवान की आँखों में देख रही थी। विवान ने उसकी आँखें देखीं। उनमें बाहर की सर्द रात थी। उनमें गहरी उदासी थी जिसका पता उस लड़की को भी नहीं था। विवान ने उसमें महकते हुए जंगल को देखा जिसकी दहशत के बारे में भी वह लड़की नहीं जानती थी। विवान ने उनमें वह सर्दियाँ, वह पतझर भी देखा, चील की तरह फ़ड़फड़ाती कुछ प्रार्थनाएँ, कुछ स्मृतियाँ, कुछ भय देखे। उस लड़की को इनके बारे में भी नहीं पता था। विवान उन्हें पढ़ पा रहा था क्योंकि वे उसी लिपि में लिखे थे जिसके बारे में वह पूछ रही थी। विवान के अन्दर उसके लिए गहरी करुणा जागी। वह वही जी रही थी जो विवान छोड़कर आया था। उसे यह नहीं पता था।

''बोलो।'' वह फुसफुसायी।

''यह छोटे अन्तरालों में जन्मे गहरे एकान्त की भाषा है। तुम भी यह भाषा जानती हो।'' वह लड़की एक झटके से पीछे खिसक गयी। वह अब फटी हुई आँखों से विवान को देख रही थी।

लड़की की आँखें धीरे-धीरे गीली होने लगीं। उसने आँखें बन्द कर लीं। हल्की रोशनी में विवान ने उसे देखा। वह लड़की के सामने था। उन तीनों ने यह नहीं देखा था। वे तीनों विवान को देख रहे थे। विवान की आँखें अलमारियों में बन्द लावारिस मय्यतों के रोज़नामचों को देख रही थीं। विवान को तेज़ गन्ध आ रही थी। उन जिल्दों से निकलती सीलन की, खिड़की से बाहर भूने जाते लहसुन की, लड़की की देह की भी। विवान उदास हो गया। विवान उदास होता चला गया। विवान ने तड़पकर खिड़की की ओर देखा। थोड़ा-सा आकाश दिख जाता, कहीं थोड़ा-सा चाँद दिख जाता, कहीं कोई परिन्दा दिख जाता।

''हमें बताओ वीवा जेल में क्या हुआ? कैसे यह सब परिवर्तन हुआ। क्या हत्याएँ बाद में प्रायश्चित करवाती हैं। क्या सपनों में आती हैं।'' लड़की ने फिर आँखें खोल ली थीं। लड़की फिर बोल रही थी। लड़की फिर कुहनियों के बल मेज पर झुक गयी थी। वह फिर अबोध और निष्कलुष लग रही थी। उसे देखना वीवा को अच्छा लगा। तड़पकर जो वह खिड़की के बाहर देखना चाहता था, वह लड़की की आँखों में था। वीवा फिर बोलने लगा।

''मैं कविताएँ हमेशा लिखता रहा था। जैसा बताया, कई बार तो किसी को मारने के ठीक बाद भी। नली का धुँआ ख़त्म होने से पहले ही अक्सर कविता की

कोई पंक्ति कौंध जाती थी। या फिर कविता लिखने के ठीक बाद भी किसी को मार सकता था। मैंने सोचा था कि जेल में कविताएँ लिखना आसान होगा। मैं खूब कविताएँ लिखूँगा। मैं मनुष्य की मुक्ति की, विचारों के संघर्ष की कविताएँ लिखना चाहता था। मैं प्रेम की, कोमलता की, कामुकता की कविताएँ लिखना चाहता था। मैं प्रकृति की, मृत्यु की, दूसरे नक्षत्रों की कविताएँ लिखना चाहता था। मैं मनुष्य के अन्दर की धधकती लालसाओं की, अन्तहीन प्रतीक्षाओं की, उसके दुखों की कविताएँ लिखना चाहता था। मैं अपने सम्पूर्ण जीवन की कविता लिखना चाहता था। पर मैंने जेल में देखा कि मेरे अन्दर अचानक सब कुछ सूख गया है। कोई हरा-भरा खिलखिलाता वृक्ष बिल्कुल ठूँठ हो जाए जैसे। मुझे पता नहीं था कि ऐसा क्यों हुआ? क्या जेल की यातनाओं ने, हमेशा बने रहनेवाले एकान्त ने या फिर मेरे आसपास कोई रक्त न होने ने ऐसा किया? मुझे पता नहीं था यह क्या है? पर कविता का इस तरह सूख जाना भयानक था। मेरे लिए गहरी यातना थी। अजीब था सब। मैं जब कोई चेहरा सोचता था, तो कोई भी एक चेहरा हर बार सामने आता था। जब किसी मकान की कल्पना करता था, तो एक ही मकान आँखों को दिखता था। सब कुछ जैसे किसी एक बिन्दु पर अपनी-अपनी जगह फ्रीज़ हो गया था। वही लैंडस्केप, वही मनुष्य, वही पंक्तियाँ। वही शब्द, वही बिम्ब, वही भाषा। अपने अनुभवों को, स्मृतियों के खुरचता था तो बहुत छोटे-छोटे निरर्थक अनुभव घूम-फिरकर धुँधलाते हुए-से आते थे। मेरे पास कुछ भी नहीं बचा था, सिवाय रचने की गहरी तड़प के और न रच पाने की गहरी उदासी के। एक रात मैंने जेल की सलाखों के बाहर अद्‌भुत दृश्य देखा। एक बिल्कुल सूखे, लम्बे पेड़ के तने के नुकीले सिरे पर नन्ही-सी रंगीन चिड़िया बैठी उस पर चोंच से ठक-ठक कर रही थी। उसके ठीक ऊपर चाँद था। चिड़िया का लाल-नीला रंग उसमें चमक रहा था। गहरी शान्ति, सफेद, ठंडी चाँदनी, एकान्त, रात की सिहरन और अपनी नन्हीं चोंच से तने पर अनवरत ठक-ठक करती नन्हीं चिड़िया। मैं पूरी रात उसे देखता रहा। वह उसी तरह चोंच मारती रही। उस रात मुझे अचानक समझ में आया कि गहन मौन, सम्पूर्ण आत्मविस्मृति भी सृजनात्मकता की पराकाष्ठा हो सकती है। तुम्हारी पलक भी न हिले, तुम्हारी साँसें भी न चले, तब भी तुम कुछ रच सकते हो। मैंने उस दिन से काग़ज़ पर क़लम से लिखना छोड़ दिया।

"तीन साल बाद मेरे कमरे में एक और आदमी रहने आया। वह हम सबसे अलग था। उसके आने के बाद से कमरे में हमेशा आलोक रहने लगा था। लोबान की गन्ध रहने लगी थी। उसने मुझे फारसी ओर अरबी पढ़ना सिखाया। उसी ने मुझे ईश्वर की लिपि पढ़ना सिखायी। मैं अक्सर पूरी रात सलाखों से सर टेके उसकी बातें सुनता रहता। वह सब कुछ जानता था। उसे कभी किसी बात पर संशय नहीं

था, दुविधा नहीं थी। हर सुबह उठकर, घुटने मोड़कर, आँख बन्द करके वह कुछ क्षण बैठा रहता, फिर पहला वाक्य बोलता। 'मैं सज गया, अब तुम नाचो'। जब तक मैं रहा, वह इसी तरह दिन शुरू करता। मैं उसकी बातें सुनता रहता था। वह कहता कि तुम मनुष्य होने के सबसे निकट हो इसका सबूत है तुम्हारा संशय, तुम्हारा भय, तुम्हारा द्वन्द्व। जो सिर्फ़ मनुष्य है, साधारण मनुष्य, वह हर क्षण काँपता दिखता है। अपने भय, अपने स्वप्न, अपने पाप-पुण्य, अपनी स्मृतियों को, सुखों को, दुखों को, सूखी पत्तियों की तरह अपनी हथेली में पकड़ने की कोशिश करते हुए। पसीने की बूँदों में नहाए खेतों में, सड़कों पर, घरों के चूल्हों में आँख फोड़ते असंख्य लोग, एक गूँगी और धूसर पवित्रता में डरते हुए ही जीते रहते हैं। किसी भी भयभीत काँपती हुए संशयात्मा को कहीं देखो, तो समझ लो कि तुम खालिस मनुष्य को देख रहे हो। कभी वह दुख की काया को साक्षात अपने चेहरे पर दिखाता। 'देखो मुझे' वह कहता। मैं देखता। धीरे-धीरे उसके चेहरे की कान्ति, निर्मलता बढ़ने लगती। वह धीरे-धीरे बोलता 'मैं अब दुख हूँ, मैं शाश्वत हूँ, मैं सर्वत्र हूँ। मैं सब जगह हमेशा हूँ। हमेशा था। पेड़ की हर पत्ती में, बारिश की हर बूँद में, रोशनी के हर कतरे में। मैं प्राण की हर साँस में हूँ। मनुष्य से पहले मैं जीवित हुआ, मनुष्य के बाद भी रहूँगा। मनुष्य के लिए मुझे मनुष्य ने ही रचा है। उसके कर्म जो उसके बाद भी रेंगते रहते हैं, उसका चिन्तन जो उसके बाद भी धुँधलाता रहता है, उसका जीवन जो उसके बाद भी परछाइयाँ पैदा करता है, पीछे आनेवालों के लिए मुझे छोड़ जाता है। तुम इसे इतिहास कहते हो, उसकी प्रक्रिया, उसकी अनिवार्य परिणति कहते हो। मैं इसे मनुष्य का अधूरापन कहता हूँ। तुम इतिहास का सम्यक पाठ किये जाने में मुझसे मुक्ति देखते हो। मैं इतिहास के नष्ट होने में तुम्हें ख़ुद से मुक्त करता हूँ। तुम इस लोक की अधूरी विकृत संरचनाओं की भाषा बोल रहे हो, मैं दर्शन की, आलोकित अस्मिता की भाषा बोल रहा हूँ। वह चुप हो जाता। मैं उसके चेहरे से धीरे-धीरे दुख को जाता देखता रहता।'' विवान एक झटके से चुप हो गया। उसी दुख की काया अब विवान के चेहरे पर थी। उसकी कान्ति, उसकी ठहरी हुई आभा से विवान की एक-एक झुर्री चमक रही थी। वे तीनों विवान डगलस को अपलक देख रहे थे। प्रोफेसर कुर्सी पर बैठा पलकें झपका रहा था।

''हमें अब बताओ कि कैसे स्मृतियों से जिजीविषा जीवित रहती है? हमें इस पवित्र दुख के बारे में बताओ जो ज़िन्दगी को रोशन करता रहता है?'' लड़की ने पूछा।

विवान डगलस अब थक गया था। तन से, मन से भी, वह कुछ नहीं बोला।

''अपने अब तक के जिए हुए जीवन में तुमने कौन-सा ऐसा सबसे बुरा काम किया जिसे तुम दुबारा नहीं करना चाहोगे?'' लड़के ने पूछा।

''जब मैंने हँसते हुए अन्धे को गोली मारी।''

विवान डगलस चुप हुआ और बिल्कुल पीछे लुढ़क गया। उसका सर कुर्सी की गद्देदार पुश्त से टिक गया। उसकी आँखों के सामने हॉल की गुम्बदनुमा ऊँची छत थी। उस छत पर कड़े लगे थे जिनमें गुजरे हुए जमाने में जलते हुए फानूस टँगे रहते थे। विवान डगलस ने आँखें बन्द कर लीं।

लड़की दो दिन बाद फिर आयी थी। सुबह की सर्दी थोड़ा कम होने के बाद विवान नहाकर निकला था। लड़की को कमरे में देखकर वह चौंक गया। हल्की धूप में वह सीढ़ियों के पास खड़ी थी। अगर विवान उससे पहले नहीं मिला होता तो शायद उसे कोई पेंटिंग या परी या कोई पक्षी समझ लेता। वह इतनी निश्चल व निर्विकार थी। विवान कुछ क्षण उसे देखता रहा फिर उसके पास आया।

''बैठो।'' विवान ने कमरे की अकेली कुर्सी की ओर इशारा किया। वह कुर्सी पर बैठ गयी। रात की आक्रामकता अब उसके चेहरे पर नहीं थी। उसकी साँसों में वह गर्म भाप और शिराओं में वह तनाव भी नहीं था।

''तुम सब दूसरे दिन जानेवाले थे?'' विवान ने तौलिये से बाल पोंछते हुए पूछा।

''वे सब गये। मैं रुक गयी।'' वह धीरे-धीरे बोली, ''मेरे रिश्तेदार हैं यहाँ। मैं तीन दिन बाद जाऊँगी।''

विवान सर पोंछता हुआ उसे देखता रहा।

''मैं अभी आयी तो नीचे आदमी ने बताया कि आपके उतरने में देर है। मैं यहाँ चली आयी। क्या मैं बात कर सकती हूँ, आप अगर चाहेंगे तो मैं नीचे भी इन्तज़ार कर लूँगी।''

तौलिये से बाल पोंछकर विवान दीवार में लगे शीशे तक आया। तौलिया उसने दीवार की खूँटी पर टाँग दिया।

''चाय तो पीती हो?'' विवान भूल गया था कि उस रात लड़की ने चाय पी थी।

''हाँ,'' लड़की कुर्सी से उठकर विवान के पीछे आ गयी, ''मैं अच्छी चाय बना लेती हूँ।''

विवान ने घूमकर उसे देखा फिर सर हिला दिया, ''मुझे समय हो गया अच्छी चाय पिये हुए...उधर।'' विवान ने रसोई की तरफ इशारा किया। लड़की रसोई में चली गयी।

शरीर पर मोटा ऊनी कुर्ता और एक पतला कम्बल डालकर विवान भी रसोई

में आ गया। लड़की ने आग पर चाय का पानी चढ़ा दिया। विवान उसे देख रहा था। रात में उसे ठीक से नहीं देख पाया था या शायद देख रहा था पर वह ख़ुद ठीक से नहीं दिख पा रही थी। उस समय उसके चेहरे को बहुत-से जटिल मनोभावों ने ढक रखा था। अँधेरे ने उसकी साँवली खाल को भी ढक रखा था। अब उसका साँवला रंग चमक रहा था। वह थोड़ी धूप, थोड़ी छाँह में थी, जैसे विवान का कमरा रहता था, पलँग रहता था। उसकी खाल मुलायम और पतली थी। उसके चेहरे पर एक ठहरी हुई मजबूती थी जो अपने काम और अपने विचार पर पूरा विश्वास रखने से आती है। वह उस रात से पूरी तरह बदली हुई शान्त, शालीन, शिष्ट लग रही थी। वह उदास थी, चुप थी। विवान उसे देखता रहा। उसे देखते हुए विवान ने उसकी देह गन्ध को भी महसूस किया। बारिश में मिट्टी के भीगने से जैसे उठती है वैसी गन्ध थी। विवान ने ध्यान दिया कि उसका साँवला रंग भी वैसा ही था जैसे बारिश के बादल होते हैं। उसकी आवाज़ भी बूँदों के गिरने जैसी थी। उसके स्पर्श में भी गीलापन होगा, विवान ने सोचा। ध्यान से देखा विवान ने तो उसे लगा कि लड़की किसी खामोश बारिश का एक मुकम्मल हिस्सा है।

"तुम क्या हमेशा बारिश में भीगती रहती हो?" विवान ने पूछा।

सर्दियों में बारिश की बात सुनकर वह एक क्षण चौंकी।

"हाँ, आपको कैसे पता?"

विवान कुछ नहीं बोला। वह भी चुप हो गयी। पानी में दाने उठने लगे थे। उसने पानी में पत्ती और दूध डालकर उसे खौलने दिया।

"मैं हर पहली बारिश में ज़रूर भीगती हूँ, कहीं भी रहूँ।"

चुप होकर वह पानी के खौलने का इन्तज़ार करने लगी। कुछ ही देर में चाय खौल गयी। उसने दो बड़े गिलासों में चाय छान दी। एक गिलास उसने विवान की तरफ बढ़ा दिया। दूसरा अपने हाथ में पकड़ लिया। वह रसोई के ऊँचे पत्थर के सहारे खड़ी हो गयी। विवान दरवाज़े की चौखट के सहारे खड़ा था। लड़की चाय पीती हुई रसोई की खिड़की से बाहर देखने लगी। उसने कुछ देर खिड़की से गुजरती सर्दियों के आसमान को देखा, उससे गुजरती हवाओं की सरगोशी सुनी, धूप की चमक को छुआ फिर विवान की तरफ घूम गयी।

"मेरा नाम अमीना है, मैंने आपको नाम नहीं बताया था।" वह बोली।

"मैंने सोचा बारिश होगा," विवान बुदबुदाया। लड़की ने सुना नहीं।

"तुम्हारी उमर कितनी है?" उसने पूछा। चाय बनानेवाले वक़्फ़े में वह आपसे तुम पर उतर आयी थी।

"बहत्तर साल, तुम्हारी।" विवान ने पूछा।

"कुछ भी, सत्रह साल, सत्ताइस साल, सात सौ सत्ताइस साल या सत्रह सौ

सत्ताइस साल।''

विवान ने उसके पीछे खुली खिड़की के बाहर देखा। परिन्दों की कतार चली गयी। एक चमकते हुए पेड़ से वे उड़े थे। नदी के पार खेतों की तरफ वे जा रहे थे।

''तुम कुछ पूछने आयी हो?''

''नहीं।''

''कुछ बताने आयी हो?''

''क्योंकि तुम ईश्वर की लिपि पढ़ सकते हो। स्मृतियों के आलोक में जीना जानते हो। मैं यह सीखना चाहती हूँ।''

विवान ने चाय का खाली गिलास पत्थर पर रख दिया। अमीना ने भी।

''आओ।'' विवान घूमकर कमरे में आ गया। अमीना पीछे आयी। विवान पलँग पर बैठ गया। उसने अपने पास की खाली जगह की तरफ इशरा किया। अमीना उस पर बैठ गयी।

''मैं खाली हूँ।'' विवान ने कहा।

''मैं भी।'' अमीना ने कहा।

विवान पलँग पर लेट गया।

''लेट जाओ।'' विवान ने कहा। अमीना भी उसके साथ पलँग पर लेट गयी। विवान की आँखों के सामने कड़ा था। अमीना की आँखों के आगे भी। पलँग पर बारिश की गन्ध थी, बादलों का साँवलापन था, बूँदों की आवाज़ थी। अमीना ने कड़े को देखा। अमीना स्मृतियों के अन्दर चली गयी। अमीना ने बोलना शुरू किया।

विवान बारिश की आवाज़ सुन रहा था। विवान बारिश की गन्ध में था। विवान बारिश को छू रहा था। विवान ईश्वर की लिपि पढ़ रहा था।

''मेरी उम्र सत्ताइस साल है। मेरे बाल लम्बे, रंग बादलों की तरह साँवला, चेहरा पतला है। मुझे परवेज़ ने बताया था कि मेरे जिस्म में कभी टूटते सितारों की आतिशबाज़ी होती है और कभी जिस्म की नदी में तैरती मछलियाँ सरगोशियाँ करती हैं। मैं बारिश लगती हूँ। वह इस आतिशबाज़ी को देखता था, इन सरगोशियों को सुनता था। उसने मुझे यह सब इतनी बार बताया था कि मैं भी इस पर यकीन करने लगी थी। परवेज़ ने मुझे यह सब तब बताया था जब मेरी उमर 20 साल की थी। पिछले पाँच सालों से मैंने अपने जिस्म में कोई आतिशबाज़ी नहीं देखी, कोई सरगोशी नहीं सुनी। परवेज़ पाँच साल पहले मर गया था।

''मैंने परवेज़ को पहली बार तब देखा था जब मुझे रोज़ चुपचाप देखते हुए उसे आठ महीने हो चुके थे। मैं घर से कॉलेज अकेले और पैदल जाती थी। पर्दा भी

नहीं करती थी। मुझे पैदल जाने से घर में सबने रोका था। उन गलियों में पैदल चलना ख़तरनाक हो सकता था, पर मुझे उन गलियों की सीलन भरी महक, मकानों की घनी बुनावट और छतनार शजर, की तरह फैलती आवाज़ें पसन्द थीं। परवेज़ पर जब मेरी पहली नज़र पड़ी तो मैं यूँ ही नीले रंग के एक छोटे-से परिन्दे को देख रही थी, जिसके लिए कहा जाता है कि वह दिख जाए तो मन की मुराद पूरी हो जाती है। मैंने मन्दिर के पासवाले पीपल की शाख पर परिन्दे को और नीचे पत्थर पर बैठे परवेज़ को एक साथ देखा था। उस पर से मेरी पहली निगाह यूँ ही फिसलती चली गयी थी, फिर भी, मैंने साफ़ रंग के, नाजुक नाक-नक्शवाले एक दुबले-पतले लड़के को देखा था। मेरे मन में उस समय कोई मुराद नहीं थी जो उस नीले परिन्दे को देखकर पूरी होती। हो सकता है परिन्दे से उतरकर परवेज़ तक निगाह आते-आते कोई मुराद पैदा हो गयी हो जिसका मुझे तब पता भी न चला होगा और जो शायद बाद में पूरी भी हुई हो। बहुत-सी मुरादें ऐसी होती हैं जो हमारे अन्दर रहती हैं पर हमें पता नहीं होतीं। वे शोर नहीं करतीं, बाहर नहीं दिखतीं, वे अपने होने का पता नहीं देतीं। हम उनके बारे में नहीं जानते इसलिए उनके पूरी होने की दुआ भी नहीं करते। वे हमारे अन्दर चुपचाप रहती चली आती हैं। जैसे अज़ल की मुरादें, धूप की, अन्न की, आज़ादी की मुरादें। परवेज़ की मुराद मेरे अन्दर शायद ऐसी ही थी।

''दूसरे दिन मैं फिर मन्दिर के पास से निकली। मैंने उसी नीले परिन्दे को देखने के लिए निगाह उठायी। वह नहीं था। उतरती हुई निगाह से देखा मैंने। परवेज़ था। एकटक मुझे देखता हुआ। दूसरे दिन भी...चौथे दिन भी। यह फिर मामूल बन गया। परिन्दे को देखने की कोशिश के बाद उतरती निगाह में परवेज़ को देखना। मेरी निगाह परवेज़ पर बहुत छोटे लम्हे के लिए भी शायद नहीं ठहरती थी पर उस एक लम्हे के कतरे में भी मैं उसकी बेचैनी, तड़प, उसकी नामालूम तलाश और गहरी उदासी को देख लेती थी। धीरे-धीरे मैंने मुराद पूरी करनेवाले परिन्दे को देखना बन्द कर दिया। अब मैं सिर्फ़ परवेज़ को ही देखने लगी थी। वह मुझे नीला परिन्दा लगने लगा था।

''यह सिलसिला तीन महीने चला फिर मेरे कॉलेज में गर्मी की छुट्टियाँ हो गयीं। जिस दिन मेरा कॉलेज का आख़िरी दिन था मैंने परवेज़ को देखा। मैंने अपनी निगाह उस पर एक लम्हा रोकी। उसकी निगाहें मुझे पूरा अपने अन्दर ज़ज़्ब कर लेना चाहती थीं। वह जानता था कि अब वह मुझे दो महीने नहीं देख पाएगा। उसके चेहरे पर गहरा दुख था। मैंने उस दुख को देखा उसके रंग को भी देखा। वह नीला था।

''दोपहर को मैं कॉलेज से घर लौटी। मेरे घर में गली से अन्दर आने के दो

रास्ते थे। एक बड़ा फाटक था जो घर के अन्दर खुली जगह में खुलता था, उसके बाद अन्दर जाने का दूसरा छोटा दरवाज़ा था। हम यह बड़ा फाटक बहुत कम खोलते थे। दूसरा रास्ता सीधे बैठक से होकर जाता था। वह हमेशा खुला रहता था। मैं इसी से घर के अन्दर आती थी। उस दिन कॉलेज से लौटकर बैठक से गुजरते हुए मैंने देखा कि बड़े अब्बा की कुर्सी के पास परवेज़ बैठा हुआ है। बड़े अब्बा किसी मरीज़ की नब्ज़ पकड़े हुए थे। परवेज़ सर झुकाए काग़ज़ पर कुछ लिख रहा था। मैं तेज़ी से अन्दर चली गयी। परवेज़ ने मेरे आने को ज़रूर महसूस किया होगा पर उसने सर उठाकर मुझे नहीं देखा। पर मेरे जिस्म में होनेवाली सितारों की आतिशबाज़ी और मछलियों की सरगोशियों ने मुझे बताया कि उसने मुझे बिना नज़र उठाए भी देखा था।

''अन्दर आकर मैं ऊपर, सीधे अम्मी के पास गयी। मैंने उनसे पूछा कि बड़े अब्बा के पास कौन आया है। अम्मी ने बताया कि बिल्कुल पास की गली में रहनेवाले सय्यद साहब का लड़का है। उनके दिन अब अच्छे नहीं रहे इसलिए छुट्टियों में वह बड़े अब्बा के पास हिक़मत सीखने आया करेगा। उनको दूसरे कामों में भी मदद करेगा। बड़े अब्बा को भी ऐसे एक नेक मददगार की ज़रूरत थी। उनसे अब ज़्यादा काम नहीं होता। लड़के का आज पहला दिन है। उसका नाम परवेज़ है।

''मैं चुपचाप अपने कमरे में आ गयी। अम्मी के पास से कमरे तक आने में मैंने दो बार उसका नाम लिया। परवेज़...परवेज़। मैं लेट गयी।

''शाम को मैं बड़े अब्बा की चाय बनाकर नीचे बैठक में ही देती थी। मरीज़ों को देखते हुए वह चाय भी पी लेते थे। हस्बेमामूल मैं चाय बनाकर नीचे लायी। मैं जब बैठक में घुसी तब मैंने देखा कि बड़े अब्बू सर झुकाए किसी मरीज़ की बात सुन रहे थे। परवेज़ ठीक मेरे सामने था। उसने मुझे आँख भरकर देखा। मैंने चाय का कप धीरे-से बड़े अब्बू की मेज पर रख दिया। ''एक और लाओ।'' बड़े अब्बू ने मुझसे कहा, ''यह परवेज़ है, हमारे पड़ोसी सय्यद साहब का लड़का। एक समय हमारे ऊपर उनके बड़े एहसान रहे हैं। परवेज़ अब मेरे साथ काम करेगा।'' मैं वापस चली आयी। मैंने एक कप चाय और बनायी। वह परवेज़ के लिए थी। सिर्फ़ परवेज़ के लिए। मुझे पहली बार अपने साथ परवेज़ की गुनगुनी वाबस्तगी महसूस हुई। मेरे और परवेज़ के बीच पहला महीन धागा जुड़ रहा था। चाय लेकर मैं बैठक में आयी। मैंने कप परवेज़ के आगे रखा। उसने सर उठाकर मुझे देखा। उसके चेहरे पर वही तड़प और उदासी थी जो मन्दिर के पत्थर पर बैठे हुए रहती थी। मैं तेज़ी से अन्दर आ गयी। सीढ़ियाँ चढ़कर जब मैं अपने कमरे में आकर लेटी तो मेरा पूरा बदन काँप रहा था। कुछ गहरी साँसें लेने के बाद मैं कमरे से बाहर आयी। अम्मी अपने कमरे में पलँग पर बैठी, सर झुकाए सरौते से सुपारी काट रही थीं। मैं गयी

और चुपचाप उनकी गोद में सर रखकर लेट गयी। उन्होंने सरौता एक ओर रख दिया। मेरे बालों में उँगलियाँ फेरने लगीं। कुछ देर बाद उन्होंने धीरे-से पूछा।

''क्या हुआ?''

''कुछ नहीं, कल से छुट्टियाँ हो गयीं।''

''तो?''

''मैं सिर्फ़ आराम करूँगी। पूरा दिन इसी तरह तुम्हारी गोद में लेटी रहूँगी।''

''उन्होंने मेरा चेहरा अपनी ओर घुमाया। वह कुछ क्षण मुझे देखती रहीं फिर सर झुकाकर उन्होंने मेरी पेशानी चूम ली।

''अब्बा उन दिनों म्यूज़िक का सामान बेचनेवाली एक दुकान में साझीदार थे। नया काम था इसलिए जोश में थे। सुबह ही घर से चले जाते थे। फिर वह दुकान बन्द करके रात को ही आते थे। दुकन का एक लड़का उनका खाना ले जाता था। ऊपर घर में मैं और अम्मी ही रह जाते थे। बड़े अब्बा कभी ऊपर नहीं आते थे। उनका कमरा, गुस्लखाना, बैठक सब नीचे था।

''गर्मियों की छुट्टियोंवाले खाली, उबाऊ, लम्बे दिन शुरू हो गये थे। ख़ासतौर से सन्नाटे में डूबी गर्म दोपहरें। उस खाली घर में मैं सूखे पत्ते की तरह फड़फड़ाती घूमती। अम्मी अपने काम में लगी रहती। बड़े अब्बा नीचे मरीज़ों में। मैं अकेली रह जाती।

''मेरे कमरे की खिड़की गली में खुलती थी। शहतूत, खिरनी, लोकाट, गन्ने का रस, फालसे, बेचनेवाले दिन भर गली से गुजरते रहते। धूल-भरी तेज़ हवाएँ भी गुजरती रहतीं। मदारी, जोगी और मुर्दे भी गुजरते रहते। लाल मिर्च का अचार डालने में अम्मी की मदद करने के बावजूद भी लम्बी खाली दोपहर बची रहती जो बेहद उबाऊ थी और एक नामालूम होती हुई स्याह रंग की ख़ामोश उदासी में बदल जाती थी। मैं शाम की चाय के समय का बेसब्री से इन्तज़ार करती बैठी रहती। जैसे ही चार बजता मैं चाय के कप नीचे ले जाती। तब मैं परवेज़ को देख पाती थी। कभी मरीज़ ज़्यादा हों, या बड़े अब्बा उससे ही मुख़ातिब हों, तब वह मुझे कभी नहीं देखता था। सर झुकाए काग़ज़ पर लिखता रहता था। मैं चाय उसके सामने रखती। मैं तब देखती कि एक लम्हे के लिए, बिना सर उठाए उसने अपनी निगाहें मेरी उँगलियों पर टिकायी हैं। उसका सर थोड़ा और नीचे हो जाता। वह मेरी उँगलियों को बहुत हसरत से देखता। वह इतना नीचे सर झुका लेता कि मुझे अपनी उँगलियों पर उसकी साँसों को गर्म आँच महसूस होती। मुझे कभी लगता कि वह अभी थोड़ा और झुकेगा और मेरी उँगलियों को चूम लेगा या शायद चबा ही लेगा। मैं कप बहुत धीरे रखती। अपनी उँगलियों को कुछ देर मेज पर पड़ा रहने देती। परवेज़ को उन्हें देखने देती, उसकी गर्म साँसों को ख़ुद की उँगलियों पर महसूस करती।

''मेरे घर में पर्दा नहीं होता था। बड़े अब्बा के एक चाचा मुस्लिम लीगी थे। आगा खाँ, जिन्ना साहब और लियाकत अली की बीवियाँ मुसलमान नहीं थीं। पर्दा नहीं करती थीं। हमारे घर की औरतों का पर्दा तभी से हट गया था। नमाज़ की पाबन्दी भी ख़त्म हो गयी थी। हालाँकि हमारे बड़े अब्बा के चाचा इससे बहुत नाराज़ रहे और पाकिस्तान बनते ही पहला काम उन्होंने यही किया कि हम सबको छोड़कर वहाँ चले गये।

''परवेज़ को बड़े अब्बा के पास आते हुए एक महीना बीस दिन हो चुके थे। उन्हीं दिनों की एक दोपहर की बात है। खाना ख़त्म हो चुका था। अम्मी अपने पीरबाबा के पास चली गयी थीं। मैं ऊँघती-सी, अलसायी-सी कमरे में लेटी थी। मेरे कमरे के बाहर तेज़ धूप थी। तभी मैंने उस धूप में सरकती हुई एक परछाईं देखी। पहले मुझे लगा ऊपर मुँडेर पर चलता हुआ कोई बन्दर है। पर सरकती हुई परछाईं धीरे-धीरे इनसान की शक्ल में बदल गयी। मैं घबराकर उठी और चौखट पर आयी। थोड़ी दूर पर परवेज़ खड़ा था। इधर-उधर देखता हुआ। चौखट पर खड़ी मैं डरी हुई, हैरान-सी उसे देख रही थी। बड़े अब्बा खाना खाकर कुछ देर आराम करने के लिए अपने कमरे में चले जाते थे। मेरा दिल धड़क रहा था। मैंने पहली बार अपनी बेकाबू होती अपनी साँसों और नागिन की तरह पलटती हुई घबराहट को महसूस किया। वह कुछ कदम मेरी तरफ बढ़ा। वह सीधा मेरी आँखों में देख रहा था। मैं बौखला गयी। इधर-उधर उड़ती सूखी पत्तियों, धूल-भरी हवाओं और धूप को देखने लगी।

''अम्मी से कहिए कुछ शीशियाँ निकाल दें। ख़त्म हो गयी हैं।'' वह बोला।

''वह नहीं हैं'', मैं जल्दी-जल्दी बोल रही थी, ''वह पीर बाबा के पास गयी हैं। बड़े अब्बा कहाँ हैं?'' मैंने घबरायी आवाज़ में पूछा।

''आराम करने गये हैं। शीशियों में दवा भरनी थी। उन्होंने कहा ऊपर से मिल जाएगी। आप दे दें।''

''मुझे कुछ नहीं पता। वैसे भी ताली अम्मी के पास रहती है।'' मेरी आँखें परवेज़ के चेहरे के इधर-उधर घूम रही थीं। मैं उसे नहीं देख रही थी। पर मुझे परवेज़ की नज़रों की तपिश महसूस हो रही थी।

''तुम रात को छत पर क्यों नहीं आती हो?''

मुझे परवेज़ की आवाज़ सुनायी दी। मेरे दिमाग़ में जैसे धमाका हुआ। मुझे यकीन नहीं हुआ कि उसने यही कहा है, पर कहा था।

''मैं क्यों आऊँ?'' मैंने अपनी ढीठ आवाज़ सुनी। मैंने इस आवाज़ को घोंट देना चाहा पर वह निकल चुकी थी।

''मेरी छत से तुम्हारी छत दिखती है।'' वह धीरे-धीरे, रुक-रुककर बोल

रहा था, ''तुम्हें ठीक से देखूँगा, पूरी रात।''

''अब मैंने उसके इधर-उधर परछाइयों, धूल, धूप पर घूमती अपनी निगाह वहाँ से हटाकर उसके चेहरे पर रोकी। उसका चेहरा लाल हो गया था। धूप से या घबराहट से या उस बेपनाह मुहब्बत से जो उसके अन्दर दबी थी।

''नहीं,'' मैंने सर हिलाया, ''कतई नहीं।''

''परवेज़ कुछ नहीं बोला। सर झुकाकर वापस लौटने लगा। मैं उसे जाते हुए देख रही थी। उसके साथ खाली दोपहर का सन्नाटा था, धूल का बवंडर था। उस बवंडर में काग़ज़ थे, चिड़ियों के पंख थे, अनाज के छिलके थे, एक गहरी, बहुत गहरी उदासी थी जिसका रंग नीला था।

''सीढ़ियों से नीचे उतरते समय परवेज़ रुका। उसने घूमकर मुझे देखा। उसका चेहरा दुख से, अपमान से कातर हो रहा था। उसने एक बार मुझे देखा फिर नीचे उतर गया।

''कुछ देर बाद शाम की चाय देने मैं नीचे बैठक में गयी। परवेज़ सर झुकाए काग़ज़ों के टुकड़ों पर नुस्खे लिख रहा था। कमरे में वह और बड़े अब्बा ही थे। कोई मरीज़ नहीं था। मेरी आहट सुनकर उसने अपना सर और नीचे झुका दिया। मैंने पहले बड़े अब्बा का कप रखा, फिर उसका। मेरी उँगलियाँ उसकी आँखों के नीचे थीं। मैंने उन्हें कुछ देर रोका। उनको परवेज़ की निगाहों की हरारत नहीं मिली। मैंने उँगलियाँ खींच लीं। बड़े अब्बा कोई किताब पढ़ रहे थे। मैं खड़ी रही। बड़े अब्बा ने सर उठाकर मुझे देखा।

''शाम को छत वाला कमरा ठीक कर दूँ'', मैंने धीरे-से पूछा, ''बहुत दिन हो गये। मेरे पास वक़्त भी है?''

''हाँ।'' बड़े अब्बा ने कहा फिर सर झुकाकर किताब में डूब गये। मैंने परवेज़ को देखा। अब उसने अपना सर उठाया। मुझे देखा। मैंने उसकी आँखों में रोशन चिराग़ देखे, परिन्दों की परवाज़ देखी, आबशारों के शोर सुने।

''मैंने बड़े अब्बू से शाम कहा था, पर मैं छत पर गयी रात का खाना खत्म होने के बाद। रात कहती तो शायद वह मना कर देते। छत पर एक कमरा था जो बंद रहता था। हमारे वही मुस्लिम लीगी रिश्तेदार, अपने समय के बड़े नामी कबूतरबाज़ भी थे। वही छत के इस कमरे में कबूतरों के साथ ही रहते थे। जब वह पाकिस्तान गये तो अपने साथ अपने कबूतर भी ले गये। उनके बाद यह कमरा कभी-कभी खुलता था। इसमें कुछ किताबें थीं, सन्दूक थे। सीढ़ी से कमरे तक के बीच में पूरी खुली छत थी जिसको पार करके इस कमरे में आते थे। मैं ऊपर आकर छत पर खड़ी हो गयी। सामने पुरानी कोतवाली की बड़ी छत के पार एक छोटे-से घर की छत का बल्ब जल रहा था। उसकी बीच की एक मुँडेर पर जलते बल्ब की रोशनी में परवेज़

बैठा था। छत पर तेज़ हवा थी। दोपहर की गर्म लू शाम तक ठंडी हवा में बदल जाती थी। मैं छत पर बहुत कम आती थी। इतना बड़ा आसमान मैंने बहुत दिन बाद देखा था। चमकते हुए सितारों से लबालब था। वे सब इतने बड़े और इतने पास थे कि मैं उनकी रोशनी को महसूस कर रही थी। मैं हैरान थी कि यह कब हुआ? कब आसमान इतना बड़ा और कब सितारे इतने रोशन हो गये? मैं अपनी छत की मुँडेर पर कुहनियाँ टेककर खड़ी हो गयी। मैं सामने परवेज़ को देख रही थी। वह एकटक मेरी छत की ओर देख रहा था। मैं अँधेरे में थी, वह रोशनी में। उसे शायद पता नहीं था कि मैं छत पर आ गयी हूँ। तभी मैंने देखा परवेज़ ऊपर उँगली उठाकर अपने बल्ब की ओर इशारा कर रहा था। मैं कमरे के अन्दर आयी। मैंने कमरे का बल्ब जलाया। खिड़की के पल्ले खोले और परवेज़ की छत की तरफ खुलनेवाली खिड़की की सलाखों से चिपककर खड़ी हो गयी। अब परवेज़ पूरी रात मुझे रोशनी में देख सकता था, मैं उसे। हमारे बीच पुरानी कोतवाली की वीरान छत थी। अचानक परवेज़ अपनी मुँडेर से कूदकर मेरी छत की तरफ कुछ कदम बढ़ा। मुझे लगा वह अपनी छत से कोतवाली की छत पर आएगा। फिर वहाँ से माल गोदाम की पुरानी छत से मेरे पास आ जाएगा। पर वह रुक गया। मैं देख रही थी। उसका शरीर ऐंठ रहा था। वह काँप रहा था। वह अपनी छत की दीवार से चिपका हुआ था। उसने तड़पकर अपने दोनों हाथ मेरी तरफ फैलाए। मुझे अपने पास बुलाने के लिए। उसकी फैली हुई दोनों बाँहों के एक छोर से दूसरे छोर के बीच वही सितारों से लबालब भरा-पूरा आसमान था। उसकी वहशत, उसकी दीवानगी, उसकी तड़प, उदासी, उसकी मुहब्बत सब मुझे उस इकलौती, काँपती, पीली रोशनी में साफ़ दिख रही थी। मैं उसे देखती रही फिर पीछे हट गयी। मैंने कमरे का बल्ब बन्द किया और पीछे मुड़कर देखे बग़ैर नीचे चली गयी।

"सुबह अब्बू के दुकान चले जाने के बाद मैं अम्मी के साथ बैठी गेहूँ साफ़ कर रही थी। अम्मी चुप थीं। मैं भी चुप थी।

"तेरी तबीयत ठीक है?" अम्मी ने पूछा।

"हाँ, क्यों?"

"तेरा रंग उड़ा हुआ है। चेहरे पर उदासी है। क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।" मैंने सर को गेहूँ में और धँसा दिया। अम्मी ने एक बार मुझे गहरी नज़रों से देखा।

"बाल भी बिल्कुल सूखे पड़े हैं।"

"मैं कुछ नहीं बोली। अम्मी ने फिर ज़्यादा बात नहीं की।

"यह सच था। मैं बहुत उदास थी। परवेज़ की रात की तड़प मेरे अन्दर तक उतर गयी थी। उसकी फैली बाँहें, दीवार से चिपका उसका चेहरा मेरे सामने बार-

बार आ रहा था।

''दोपहर को अम्मी पीर बाबा के पास चली गयीं।

''अम्मी के जाते ही मैं कमरे की चौखट पर खड़ी हो गयी। मेरा बदन गर्म लू में झुलस रहा था। सामने के खुले हिस्से पर तेज़ धूप और गहरा सन्नाटा था। चौखट पर खड़ी मैं एकटक उन सीढ़ियों को देख रही थी जिनसे परवेज़ ऊपर आता था। मेरी साँस तेज़ थी। एक-एक लम्हा मुझ पर भारी था। बड़े अब्बा खाना खाने के बाद कुछ देर लेटते ही थे। परवेज़ को आना ही था।

''थोड़ी देर में परवेज़ सीढ़ियों पर दिखायी दिया। मैं चौखट से चिपक गयी। वह धीरे-धीरे मेरे पास आया। मैं अपलक उसे देख रही थी। मेरे बिल्कुल पास आकर वह रुक गया। वह मुझे देखता रहा। मैं हैरान थी कि मेरी आँखें झुकी नहीं। डरी नहीं।

''मैं तुम्हें छुऊँ?'' परवेज़ धीरे-से फुसफुसाया।

''कहाँ? मैंने अपनी डरी हुई आवाज़ सुनी।

''उँगली।''

''कौन-सी?''

''सबसे छोटी।''

मैंने अपने बायें हाथ की सबसे छोटी उँगली आगे कर दी। परवेज़ ने धीरे-से उसे अपनी उँगली की पोर से छुआ।

लू के थपेड़ों से मेरे बाल हवा में उड़ रहे थे। परवेज़ के सूखे होठों पर पपड़ी जमा थी। हमारे चारों ओर गहरा सन्नाटा था।

''आज देर तक रुकना।'' परवेज़ फुसफुसाया, ''पूरी रात तुम्हें देखूँगा।''

''परवेज की आँखों में तड़पती हुई उदास लालसा थी। मेरी आँखों में आँसू आ गये। परवेज़ घुटनों के बल बैठ गया। उसने मेरे पेट से कपड़ा हटाया। मेरी गहरी और काली नाभि पर होठ रगड़े उसने। मैं बेहोश थी। बस अपने ख़ुदा को याद कर रही थी। इतना याद है कि कुछ देर बाद उसने सर उठाकर देखा मुझे फिर उठा और चला गया। मैं वहीं चौखट पर बैठ गयी। मेरे बदन में जान नहीं बची थी। मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। मेरे अन्दर ज़िन्दा रहने की गहरी इच्छा जाग रही थी।

''माँओं का अपनी बेटियों से बड़ा अजीब-सा रिश्ता होता है। वे कब उनकी दोस्त बनकर उसके सारे राज़ जान लेती हैं और कब उसे पूरी दुनिया से बचाकर अपने अन्दर छुपा लेती हैं दूसरा कोई नहीं जानता। मुझे पता नहीं कैसे, पर अम्मी को मेरे अन्दर गहरा बदलाव दिखाई दिया होगा। दूसरे दिन उन्होंने मुझे जबरदस्ती बिठा लिया। मेरे बाल खोलकर उनमें तेल लगाने लगीं। हम इस तरह बैठे कि एक-दूसरे को देख नहीं सकते थे। मुझे पीछे से आती हुई उनकी आवाज़ सुनाई दी।

''तू घायल चिड़िया की तरह फड़फड़ायी घूमती है आजकल। एक चीज़ रखती है तो दो उठाती है। क्या हुआ?''

''कुछ नहीं।'' मैंने पाँव के अँगूठे से फर्श पर 'पे' लिखा।

''अगर घर में अकेले मन नहीं लगता तो दोपहर को मेरे साथ पीर बाबा के पास चलो किसी का जादू-टोना होगा तो उतर जाएगा।''

''नहीं।'' मैंने अँगूठ से 'रे' लिखा, ''जादू-टोना किसका होगा?''

''तुम्हें पता होगा। किसी की आँखों में सीधे देखा था क्या?'' अम्मी की उँगलियाँ मेरे बालों में घूम रही थीं। बहुत ही सलीके से, सधे हुए खिलाड़ी की तरह वह एक-एक घर आगे बढ़ रही थीं। मैं कुछ नहीं बोली। मेरे घर में झूठ नहीं बोला जाता था। किसी भी कीमत पर नहीं। मैंने अँगूठे से आगे 'वाओ' लिखा।

''कब देखा था।'' अम्मी की आवाज़ धीमी हो गयी। वह मेरे कान में फुसफुसा रही थीं। उनकी गर्म साँस मेरे कानों को छू रही थीं। मैं इसे बचपन से पहचानती थी। मेरा हर रोआँ इसे पहचानता था। यह गहरे दुलार की, गहरी ममता की साँस थी।

''कल।''

''कहाँ?''

''ऊपर क्यों आया था?''

''शीशियाँ लेने।''

''पहले से जानती हो?''

''हाँ।''

''कैसे?''

''कॉलेज जाते वक़्त मन्दिर के चबूतरे पर बैठा रहता था।''

''कब से।''

''तीन महीने से।''

''उसने छुआ?''

''हाँ।''

''कहाँ?''

''मेरी उँगली।'' मैं झूठ नहीं बोली। बस पूरी बात भी नहीं बतायी।

''आज दोपहर को फिर आएगा?''

''पता नहीं।''

बालों का तेल सूख गया था। अम्मी ने अब उनमें कंघी फेरना शुरू किया।

''तुम आज मत जाओ।'' मैंने रुँआसी आवाज़ में कहा।

''क्यों?''

''बस, यूँ ही।''

''आज मैं ज़रूर जाऊँगी।'' अम्मी ने मेरी दो चोटियाँ बना दीं। ''उठ, जाकर नहा ले। शक्ल खराब हो रही है।''

''नहीं।'' मैं पीछे लुढ़ककर अम्मी की गोद में गिर गयी। मैंने उनकी हथेलियों से अपनी आँखें ढँक लीं। अम्मी ने धीरे-से अपनी हथेलियाँ मेरी आँखों से हटायीं। मेरे माथे पर हाथ फेरा उन्होंने।

''उठ और नाम पूरा लिख ले, किसी का नाम अधूरा लिखकर नहीं छोड़ते।'' पलटकर मैंने अपना मुँह उनकी गोद में छुपा लिया। क्या माँ के पास होने से बड़ा भी कोई सुख है दुनिया में?

''दोपहर को अम्मी चली गयीं। परवेज़ आया। मैं कमरे की चौखट पर ही खड़ी थी। मैं नहायी थी। मेरे बाल खुले थे। परवेज़ मेरे पास आकर रुक गया। मेरी खिड़की के नीचे से कोई सपेरा बीन बजाता निकला, कोई कठपुतलियाँ नचानेवाला निकला, कोई फ़कीर निकला, मैंने परवेज़ की आँखों में देखा। वह मुस्कराया।

''तुम्हें छुऊँ?''

''कहाँ?'' मैंने पूछा।

''बाल।''

''कोई मक्कारी नहीं।''

''नहीं।'' परवेज़ ने हाथ बढ़ाकर मेरे बाल छुए।

''आज मैं छत पर नहीं आऊँगी।'' मैंने चौखट के दरवाज़े के पीछे छुपते हुए कहा।

''क्यों?'' परवेज़ दो कदम आगे आया।

''मुश्किल है, रोज़ क्या बहाना होगा?''

''यह तुम्हारा कमरा है?'' परवेज़ ने पूछा।

''हाँ।''

''देखूँ?''

''हरगिज़ नहीं।'' मैंने आगे आकर चौखट पर हाथ फैला दिये, ''कमरे के अन्दर नहीं।'' परवेज़ रुक गया।

''तुम क्या हक़ीम बनोगे?'' मैंने पूछा।

''क्यों?''

''फिर क्यों आते हो यहाँ?''

परवेज़ धीरे-से हँसा।

''वैसे बुरा भी क्या है हक़ीम बनना।''

''नहीं, हक़ीम नहीं बनना।'' मैंने कहा।

तभी नीचे से बड़े अब्बा के खाँसने की आवाज़ आयी। परवेज़ मुड़ा।

''छत पर।''

''नहीं।'' मैंने तेज़ी से सर हिलाया। परवेज़ चला गया। मैं वापस कमरे में आ गयी। मुझे पता था मैं छत पर जाऊँगी।

''मुझे कॉलेज के प्रोजेक्ट के लिए कुछ ख़ास तरह के पौधे चाहिए थे। वे मेमोरियल गार्डेन में थे। मैंने अम्मी को बताया अगर मेरे साथ परवेज़ चले तो मैं यह काम छुट्टियों में ख़त्म कर लूँगी। अम्मी ने अब्बा से इज़ाजत ले ली। दूसरी दोपहर परवेज़ के साथ मैं मैमोरियल गार्डेन उसके स्कूटर पर गयी।

''वहाँ हम देर तक घूमे। मैंने झाड़ियों में घुसकर पत्तियाँ तोड़ीं, पेड़ों पर परवेज़ को चढ़ाया। मेरे कढ़ाई वाले थैले में पत्तियों की कई किस्में इकट्ठा हो गयीं।

''वापस लौटते समय अचानक बादल उठे और तेज़ बारिश शुरू हो गयी। हम शहर के सबसे बड़े और सबसे पुराने चर्च के सामने से जा रहे थे। स्कूटर वहीं रोककर हम उसके अन्दर घुस गये। कुछ दूर तक घास के मैदानों के बाद ही एक कोने में एक आर्च था जिसके अन्दर हम पनाह ले सकते थे। वहाँ दो कमरों के पिछले दरवाज़े या फिर चैपल के दरवाज़े खुलते होंगे। फ़िलवक़्त वह एक छोटा-सा गोलम्बर था जहाँ पत्थर की एक बेंच पड़ी थी। हम उसमें चले गये। मैं थोड़ा भीग गयी थी। परवेज़ भी। हम पत्थर की बेंच पर बैठ गये। बाहर तेज़ बारिश हो रही थी। सामने की घास और कच्ची मिट्टी को भिगोती हुई बारिश की वह खास गन्ध, धीरे-धीरे जमीन से उठने लगी थी जिसमें तिलिस्म होता है। तेज़ हवा के साथ बौछारें अन्दर भी आ रही थीं। हम जिस पत्थर की बेंच पर बैठे थे वहाँ हमारे पंजे भीग रहे थे। मैंने पैर मोड़कर ऊपर कर लिये। परवेज़ के पंजे भी भीग रहे थे। हम चुपचाप बैठे बारिश देख रहे थे। उसकी आवाज़ सुन रहे थे। हम बहुत देर तक ऐसे ही बैठे रहे। पेड़ों के तने बारिश में भीगकर गहरे भूरे रंग में बदल चुके थे। उनकी शाखों से टपकती बूँदें तेज़ी से मिट्टी में ज़ज्ब हो रही थीं। जहाँ पानी जमा हो गया था वहाँ छोटे-छोटे बुलबुले बन रहे थे। चारों ओर बादलों का हल्का अँधेरा था। तेज़ हवाएँ थीं, बारिश थी। चारों ओर एक नामालूम नूर था, एक जादुई तरन्नुम थी। हम चुप बैठे बारिश देखते रहे।

''मुझसे शादी करोगी?'' मैंने सुना। यह परवेज़ था। मैं कुछ नहीं बोली। मेरे बदन में कोई जुम्बिश नहीं हुई। हम फिर चुप हो गये। हम फिर बारिश देखने लगे। कुछ देर में परवेज़ ने अपना सर मेरे कन्धे पर रख दिया। मैंने अब सर घुमाकर देखा उसे। वह रो रहा था। मैंने अपने पंजे नीचे किये। थोड़ा घूमी। उसका चेहरा अपनी हथेलियों में भरकर ऊपर उठाया। उसने डरी हुई बदहवास आँखों से देखा मुझे। मैंने उसकी दोनों आँखें चूम लीं। चर्च की उस बारिशवाली दोपहर मुझे पहली बार लगा

कि मैं परवेज़ से बेपनाह मुहब्बत करती हूँ।

''कुछ देर बाद बारिश धीमी हुई। हम चुपचाप उस चर्च के अन्दर बनी छोटी-सी जगह से बाहर निकल आये। मैंने अपनी ज़िन्दगी में कोई चर्च पहले नहीं देखा था। उस दिन पहली बार देखा। उसकी पवित्र खामोशी, उसका पुरसुकून फैलाव, और उसकी ऊँची दीवारों से टपकती शान्ति। मैंने सलीब पर लटके उस ईश्वर के पुत्र का शुक्रिया अदा किया जिसने मुझे इस दोपहर अपनी रहमतों में पनाह देकर मेरी ज़िन्दगी को मोहब्बत की पाक रोशनी दी।

''उस रात मैं छत पर नहीं गयी। अब जाने की ज़रूरत भी नहीं थी।

''परवेज़ अब रोज़ दोपहर को आने लगा। उस बारिश के बाद गर्मियाँ कम हो गयी थीं। मैं अपने कमरे की चौखट पर बैठ जाती। परवेज़ बाहर। हम ढेर सारी बातें करते। हम अपने बहुत छोटे-छोटे सपनों को बहुत मजबूत धागों से बुनते रहते। उनमें कुछ भी बड़ा नहीं था। कुछ भी ज़्यादा नहीं था जो किसी को दिखता या परेशान करता। उनमें वही एक बेहद मामूली ज़िन्दगी थी, जैसे सबकी होती है। एक-दूसरे के साथ रहने की ख़्वाहिशों से भरी ज़िन्दगी। हमें किसी से कुछ नहीं चाहिए था। हमें पता नहीं था हमारा धर्म क्या है, देश क्या है, जाति क्या है, समाज क्या है। हमें इन बातों से कोई मतलब भी नहीं रह गया था। रहता भी क्यों? हम सरापा मुहब्बत में थे। हम दुनिया के सबसे अच्छे इनसान थे। मैं जो चाहती थी, जो तड़प मेरे अन्दर थी, उसमें कुछ भी नया नहीं था। वह पहले से ही ईश्वर की हर प्रार्थना में, हर मन्त्र में, हर कविता में थी।

''परवेज़ घर के लड़के की तरह ही हो गया था। बड़े अब्बा उस पर जिम्मेदारियाँ बढ़ाते जा रहे थे। वह उनहें बखूबी पूरा कर रहा था। अब्बा की दुकान भी अच्छी चल निकली थी। अम्मी को पीर बाबा ने बहुत-सी दुआएँ दे डाली थीं। उनमें मेरी ख़ुशियाँ भी शामिल थीं।

''फिर एक दोपहर परवेज़ ने बताया कि वह तीन दिन के लिए बड़े अब्बा के काम से बाहर जा रहा है। कुछ दवाएँ लानी हैं, कुछ रुपये पहुँचाने हैं। मैं चुपचाप पत्थर बनी चौखट पर खड़ी थी। जाते हुए परवेज़ घुटनों के बल बैठा। वह झुका। मेरे पेट से कपड़ा हटाकर उसने मेरी नाभि को चूमा। मैंने उसका सर अपने पेट में धँसा लिया।

'लौटकर इसमें उतरूँगा' परवेज़ ने कहा फिर उठ गया। उसने उदास आँखों से देखा मुझे। उस उदासी का रंग हमेशा की तरह नीला था।

'मैं आता हूँ' वह फुसफुसाया फिर चला गया। सीढ़ियों से नीचे उतरने के पहले उसने आख़िरी बार मुझे देखा।

''परवेज़ तीन दिन बाद नहीं लौटा। वह जहाँ गया था, वहाँ से हजारों मील

दूर, कहीं किसी जगह पर एक नामालूम पुरानी इमारत के लिए हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हुआ। जिस ट्रेन में परवेज़ था उसमें से मुसलमानों को खींचकर मारा गया। परवेज़ भी उनमें से एक था। दो हफ्ते बाद एक रिसाले के कवर पर बड़ी-सी तस्वीर छपी। उसमें सर पर पट्टी बाँधे, हाथ में खून से भीगी, नंगी तलवार उठाये हुए एक आदमी खुशी से चीख रहा था। उसके पैरों के पास वह लाश पड़ी थी, जिसका उसने कत्ल किया था। वह लाश एक नीले परिन्दे जैसी लग रही थी। उस तस्वीर की तलवार पर कुछ लिखा था जो बहुत साफ़ था, पर अरबी में था। बड़े अब्बा ने उसे पढ़कर बताया। उस पर लिखा था 'दमिश्क की तलवार'। मैं उसे रिसाले को लेकर अपने कमरे में आयी। आकर अधमरी-सी मैं खिड़की से लटक गयी। तेज़ हवाओं में मेरी खिड़की के सामनेवाला पीपल हिला। मैंने सुना। गली में कोई गुब्बारे बेचनेवाला बाँसुरी बजाता निकला, फिर शहद बेचनेवाला, फिर घोड़ों की टापों की आवाज़ें सुनायी दीं। खिड़की पर लटके हुए मैंने देखा। चारों ओर दौड़ते-भागते घोड़ों की आवाज़ें थीं। उनके हिनहिनाने की, खुरों की, उस पर सवार इनसानों की। उनके साथ दहलानेवाली चीखों की आवाज़ें थीं। औरतों की, बच्चों की। उन सबके हाथों में दमिश्क की तलवारें थीं। वे तेज़ी से घोड़े बदल रहे थे, कपड़े बदल रहे थे। मुल्क, धर्म और ज़बान बदल रहे थे। अपने चेहरे बदल रहे थे। बस एक चीज़ ऐसी थी जो नहीं बदल रही थी। उनकी तलवारों पर लगा खून। हर तलवार पर परवेज़ का ख़ून था। हर घोड़े के खुर के नीचे एक नीले परिन्दे की कटी हुई लाश थी।''

कमरे में अमीना के डकारने की आवाज़ें आने लगीं। एक झटके से पलँग पर उठकर बैठ गयी वह। हथेलियों के बल आगे झुककर वह गहरी साँसें ले रही थी। उसकी आँखों में पानी भरा था। मुँह से थूक और लार निकलकर चादर पर गिर रही थी। उसका पूरा बदन गहरी साँसें लेने में टेढ़ा होकर हिल रहा था। विवान भी धीरे-से उठ गया। उसने अमीना की पीठ पर हाथ रखा। वह सीधी हुई। विवान ने देखा उसे। उसकी आँखें सफेद थीं, फटी हुई थीं। उनमें गहरी वीरानी थी। वह विवान के सर के पार रसोई की खिड़की के आसमान को देख रही थी। विवान पलँग से उतरा। रसोई में जाकर उसने एक गिलास में पानी निकाला। गिलास लेकर वह अमीना के पास आया। उसने हाथ बढ़ाया। अमीना ने उसे देखा फिर हाथ बढ़ाकर उसका हाथ पकड़ लिया। विवान ने उसे सहारा देकर पलँग से उतारा। उसे सहारा देकर खड़ा किया। अमीना विवान के कन्धे से लगकर झूल गयी। वह अभी तक मुँह खोलकर गाय के डकारने जैसी आवाज़ें निकाल रही थी। विवान ने चुल्लू में थोड़ा पानी लेकर अमीना के मुँह पर छींटे मारे। पानी का गिलास उसके होठों से लगाया। अमीना ने आँखें बन्द कर लीं। धीरे-धीरे पानी पिया उसने। कुछ देर वह विवान के कन्धे के

सहारे खड़ी रही, फिर अलग हुई। उसकी साँस अब थम गयी थीं। उसने हथेलियों से चेहरे का पानी पोंछा। अपने बालों में उँगलियाँ फेरीं, फिर खिड़की पर खड़ी हो गयी। थोड़ा सर बाहर निकालकर उसने गहरी साँसों के साथ पतझर की नर्म हवा अपने फेफड़ों के अन्दर भरी। विवान भी पास में आकर खड़ा हो गया। अमीना धीरे-धीरे बोल रही थी, ''परवेज़ की मौत से मैंने सीखा कि जैसे-जैसे हम अपनी ज़िन्दगी जीते हैं, हमारे अन्दर ख़ौफ़ का हिस्सा बढ़ता चला जाता है। एक समय ऐसा आता है जब हम हर बात से डरने लगते हैं। ज़रा-सी जुम्बिश से भी। हम डरे हुए लोग ही उनकी असली ताकत बन जाते हैं जो इन ताकतों के मरकज़ में बैठे हैं। जिन्होंने इसके सारे ढाँचों पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया है। वे जानते हैं कि वे तब तक महफ़ूज़ हैं, निर्द्वन्द्व हैं जब तक हमारी ज़िन्दगी में वे इस डर को बड़ा करते रहेंगे। वे ऐसा ही करते रहते हैं। धर्म से, कानून से, विचार से, दंड से, भीड़ से, हत्याओं से, पाखंडी महानताओं के लिथड़े अतीत से। थोड़े-थोड़े दिनों बाद वे हमें हत्याएँ करके दिखाते रहते हैं कि वे जब चाहे ऐसा कर सकते हैं। ऐसा करते समय वे मुस्कराते भी रहते हैं। हम एक नन्हीं चिड़िया की तरह डर से काँपते हुए जीना सीख लेते हैं। अपने डर से, अपने माँ-बाप के डर से, अपने बच्चों के डर से डरे हुए। एक समय ऐसा आता है जब हम पूरी तरह डर से पीली पड़ी आत्माओं में बदलकर उनके चाबुक पर गर्दन हिलाते, फेन बहाते हुए, अपने कन्धों, झुकी पीठ पर उनका रथ खींचने लगते हैं। इसे हम अपना जीवन, अपना समाज, अपना देश, अपना लोकतन्त्र कहते हैं और कितने घिनौने हैं वे लोग जो दूसरों के कत्ल में अपना बड़ा होना पाते हैं। जो अपनी कामयाबी बच्चों और औरतों को ज़िन्दा जला देने में ढूँढ़ते हैं। जो अपने अपाहिज़ मकसदों को इनसानी ज़िन्दगी ख़त्म करने से पूरा करते हैं। ये लोग कैसे जन्म लेते हैं, कैसे पनप जाते हैं और कैसे अमर हैं पता नहीं, पर धरती से ये कभी ख़त्म नहीं हुए। दुख की बात है कि इनके तर्क, इनके सिद्धान्त, इनके धर्म ही इनकी जहालत की सबसे ऊँची पहचान हैं, फिर भी इनके पीछे भीड़ चल देती है। उनकी उँगलियों में सारी डोरें हैं। शायद हम सबके अन्दर की अकेली गुफाओं में ऐसा ही कुछ हमेशा हुँकारता रहता है। तभी हम इनके जैसे बन जाते हैं। हमारे अन्दर का पवित्र हिस्सा इनसे पराजित हो जाता है। वह दुनिया कैसी होगी जिसमें पराजित इनसान, टूटे घुटनों के बल बैठा इन शैतानों के आगे गिड़गिड़ा रहा होगा।''

अमीना ने एक लम्बी साँस ली। वह विवान डगलस की तरफ घूमी। उसने विवान डगलस की हथेली अपनी उँगलियों में पकड़ ली।

''जब मैंने तुम्हारे बारे में सुना तो मैं जिद करके आयी। तुम मेरे लिए महज़ एक हत्यारे थे, वैसे ही, जैसे दमिश्क की तलवारवाला था। वैसे ही, जैसे दुनिया में सब होते हैं। पर तुम्हें देखकर मैं निराश हो गयी। तुम बूढ़े, परास्त और थके हुए थे।

फिर भी, मेरे अन्दर तुम्हारे लिए नफ़रत में कोई कमी नहीं हुई। उस शाम तुमने मेरी नफ़रत को महसूस भी किया होगा। पर तुम्हारी बातें सुनने के बाद मैंने दूसरी तरह से सोचना शुरू किया। तुमने जो उस रात कहा था, मुझे याद रह गया। मेरे पास भी कुछ स्मृतियाँ थीं, कुछ दुख थे, पर मुझे पता नहीं था इनका क्या करूँ? तुमसे मैंने पहली बार यह बात सुनी कि स्मृतियाँ जिन्दा रहने की रोशनी भी देती हैं। तुम उसी रोशनी से जिन्दा थे, पूरी मजबूती के साथ। फिर तुमने ईश्वर की लिपि पढ़ने के बारे में बताया। मैं तब फिर चौंकी जब तुमने कहा कि तुम फारसी और अरबी जानते हो। मैं इस पर भी हैरान थी कि तुम मुझे मिले भी, तो लावारिस मय्यतों के दफ्तर में। मुझे लगा कि यह सब किसी ख़ास मकसद से हो रहा है। मैं इसीलिए रुक गयी। मुझे बताओ कैसे स्मृतियों से ज़िन्दगी की रोशनी मिलती है तुम्हें? मैं सीखना चाहती हूँ।''

अमीना ने विवान की उँगलियाँ अपनी उँगलियों में दबा लीं। विवान उसी तरह अमीना की उँगलियों में अपनी उँगलियाँ फँसाए खिड़की पर झुक गया। अमीना भी। अब विवान बोल रहा था। अमीना सुन रही थी।

''रास्ते में चलते हुए कभी अचानक रुको और उसे देखो जो कुछ तुम्हारे दृश्य की परिधि में है। जो भी है उसे फ्रीज़ कर लो, फिर उसे बाद में, उससे अलग होकर, उसे दर्शक की तरह देखो। उन इमारतों को, धूप को, वृक्षों को देखो। हर क्षण को रेशा-रेशा करके देखो। तुम उससे अलग और लघुतर होती चली जाओगी। यह वही फ्रेम है जिससे तुम रोज़ गुजरती थीं पर तब इस तरह नहीं देखा था क्योंकि तब तुम उसमें थीं। अब उससे अलग हो। यह दूसरी तरह का अनुभव होगा, दूसरी तरह का जीवन होगा। परवेज़ की स्मृतियों को भी अपने अन्दर इसी तरह फ्रीज़ कर लो। उन दोपहरों को, चर्च को, नीले परिन्दे को, पेट के काले गड्ढे को, तलवार को, उन शब्दों को, स्पर्शों को। जब चाहे इससे अलग होकर इसे देखो। फिर यह स्मृति तुम्हें हमेशा रोशनी देगी क्योंकि तुम इसमें नहीं हो। इससे अलग होकर इसे देख रही हो इसलिए इसके दुखों से परे हो। जब चाहो, जिस रेशे में उतरकर, उसकी रोशनी में नहा सकती हो। तुम्हारी ज़िन्दगी कभी धूमिल नहीं होगी, कभी एकाकी नहीं होगी।'' विवान चुप हो गया।

अमीना ने विवान की हथेली अपने गालों से छुआयी। विवान खिड़की पर सीधा खड़ा हो गया। अमीना की आँखें गीली थीं। उसके होठ फैले थे। विवान ने अपनी झुर्रीदार हथेलियों में अमीना का साँवला चेहरा भर लिया।

''तुम बिल्कुल वैसी ही लग रही हो जैसा वह परित्यक्त ईश्वर था।'' अमीना ने अपनी हथेलियों से विवान की हथेलियाँ दबायीं।

''क्या तुम जीवन में सुखी हो?'' अमीना ने पूछा।

विवान ने अमीना को देखा। उसकी आँखों की कत्थई पुतलियाँ गीली थीं। चाय के वैसे ही सूखे हुए नन्हें धब्बों की तरह थीं, जो पत्थर पर पड़े थे। उन पुतलियों में सुख की इच्छा नहीं थी, प्रतीक्षा भी नहीं थी। एक जिज्ञासा थी जो सुख और दुख के भेद को, रहस्यों को, उनकी सीमाओं को, व्याप्ति को समझना चाहती थीं। उसे लग रहा था कि विवान के जीवन से वह इसे समझ सकती है। वह ग़लत थी। किसी दूसरे के जीवन से सुख और दुख की परिभाषाएँ करना ग़लत था। ग़लत तो उन्हें अपने जीवन से भी परिभाषित करना होता है। विवान डगलस उसे यह सब बताना चाहता था, यह भी, कि जो सुख के क्षण होते हैं, वही दुख के क्षणों में बदलने में बिल्कुल भी देर नहीं करते। यह सुख और यह दुख सिर्फ़ उसी क्षण में निहित है जो उसी समय, बिल्कुल उसी समय तुम्हारे पास है। विवान उसे यह सब शब्दों में नहीं समझा सकता था। शब्द बहुत दूर तक साथ नहीं देते, ख़ासतौर से जीवन की परिभाषाओं को समझने या समझाने में। विवान ने सर झुकाकर अमीना के पेट को देखा। उसकी नाभि ढकी थी। विवान डगलस घुटनों के बल बैठ गया। सर झुकाया उसने। उसने कपड़ों के ऊपर अमीना की नाभि को चूमा, जहाँ परवेज़ था। फिर सर उठाकर देखा उसने। अमीना की आँखों से पानी टपकने लगा। उसने विवान के बालों में कुछ देर तक उँगलियाँ चलायीं फिर बालों को पकड़कर उसे ऊपर खींच लिया। विवान उठ गया। उसने देखा। अमीना के गालों से आँसू बहकर सूख चुके थे। सूखने के बाद वह गाल पर लकीर छोड़ गये थे। विवान डगलस ने उसकी एक लकीर पर उँगली रखी। सुख...विवान बुदबुदाया। फिर दूसरी पर उँगली रखी...दुख...। अमीना ने आँखें पोंछ लीं। मेज पर आकर अपना पर्स उठाया उसने। उसमें से एक अँगूठी निकाली। वह फिर खिड़की पर आयी।

''यह मुझे परवेज़ ने जाते समय पहनायी थी। इसमें कुछ लिखा है जो मैं पढ़ नहीं सकती। किसी से पढ़वा भी नहीं सकती थी। तुम बताओ क्या लिखा है।''

विवान ने अँगूठी ली। विवान ने दराज़ से सौ गुना बड़े दिखानेवाले आतशी शीशे से पढ़ा जो अँगूठी पर लिखा था। 'पॉव की धूल...माहरुख'...विवान ने पढ़ा। विवान धीरे-से पीछे खिसककर दीवार से चिपक गया। उसका चेहरा पीला हो गया।

''क्या हुआ?'' अमीना ने पूछा।

''कुछ नहीं।'' विवान ने अँगूठी को एक बार ध्यान से देखा फिर हाथ बढ़ाकर अँगूठी अमीना को लौटा दी।

''क्या लिखा है।'' अमीना ने पूछा।

''लिखा है 'पाँव की धूल...माहरुख'...''

''यह क्यों लिखा है? कौन है माहरुख?''

विवान ने देखा कि खुले बालों के बीच अचानक अमीना की शक्ल बिल्कुल अलमारी के पल्लों पर बनी लड़की जैसी हो गयी थी। विवान ने सर घुमा लिया। वह चुपचाप खिड़की के बाहर देखने लगा।

''मैं कल चली जाऊँगी।'' अमीना विवान के पास आकर फुसफुसायी। विवान कुछ नहीं बोला। उसने विवान की हथेली पकड़ी। विवान ने सर घुमाकर उदास आँखों से उसे देखा। वह मुस्करायी। उसने झुककर विवान का माथा चूम लिया।

''अँगूठियों, तलवारों और लावारिस लाशों से भी इनसानों का इतिहास लिखा जा सकता है।'' वह बोली।

''और यह इतिहास मनुष्य का सबसे चमकदार इतिहास होगा जितनी कि चमकदार यह सुबह है, जितना वह आख़िरी इनसान है जो अभी इसके सिर पर बदहवास उकड़ूँ बैठा है।'' वह बुदबुदाया।

''मैं जा रही हूँ।'' अमीना ने कहा। उसने अपना पर्स उठाया और बग़ैर विवान को देखे सीढ़ियों से नीचे उतर गयी।

कड़ा हिला।

विवान डगलस के पास से तेज़ हवा गुजरी थी। तेज़ हवाएँ हर मौसम में नहीं आतीं। वे इस मौसम से शुरू हो जाती थीं। इन तेज़ हवाओं में ही पेड़ों के पत्ते टूटते थे, चिड़ियों के पंख गिरते थे। शिथिल हो चुका पुराना मौसम विसर्जित हो जाता था। नये मौसम के आने का घोष भी ये हवाएँ ही करती थीं। इन तेज़ हवाओं में देह के राग-विराग जागते थे। इन तेज़ हवाओं में ही माया का एक लोक निर्मित होता था जिसमें सुख-दुख की सन्धि रेखाएँ ख़त्म हो जाती थीं। इन हवाओं में धूप-छाँह के रंग और आयु बदल जाती थी। वे अधिक गाढ़ी, अधिक चमकदार हो जाती थीं। इन तेज़ हवाओं में ऐसी परछाइयाँ बनने लगती थीं जो अक्सर अपनी काया से बड़ी और ज़्यादा वास्तविक होती थीं।

कमरे में घूमती इन तेज़ हवाओं को पलँग पर लेटे हुए विवान डगलस ने देखा। उसने इन हवाओं के साथ वह सब भी देखा जो ये हवाएँ अपने साथ लिये घूमती थीं। विवान डगलस ने खिड़की के बाहर देखा। दिन मटमैला हो रहा था। धूप की तेज़ी कम पड़ने लगी थी। हवाओं में खुश्की बढ़ गयी थी। विवान डगलस ने पलँग पर लेटे हुए ही हाथों को फैलाकर देह को एक बार खींचा। उसने सोचा कि अगर वह उठ जाए तो हो सकता है कुछ खाने का मन करे। सुबह के करेले का स्वाद मुँह में अभी तक था, पर यह भूख लगने का समय था। उसे भूख लगनी

चाहिए थी पर लग नहीं रही थी। विवान डगलस ने चेहरे पर जमा हो गयी सिकुड़नों, स्मृतियों की छोड़ी हुई अमीना की गन्ध और स्पर्शों पर उँगलियाँ फेरी। अपने घुटने मोड़े उसने, फिर सीधे किये, फिर पलँग से उतर गया। उसके घुटनों की चिड़िया भी उतरीं। विवान डगलस ने उनकी आवाज़ें सुनी। उसने ये आवाज़ें सुबह से नहीं सुनी थीं हालाँकि उसने इसका इन्तज़ार किया था, पर वे शायद उन चिड़ियों के साथ चलीं गयी थी जिन्हें विवान ने रसोई में दाने डाले थे।

विवान डगलस खिड़की पर खड़ा हो गया। बाहर के मटमैलेपन के साथ दीवारों के साए लम्बे दिखने लगे थे। जेल में कैदियों से मिलाई का समय ख़त्म हो गया था। उसकी दीवार के नीचे अब भीड़ नहीं थी। कुछ छूटे हुए आदमी थे जो छूटे हुए अन्न कणों, पानी के ढेर, कौओं के झुंड और कपड़ों, काग़ज़ों के टुकड़ों के साथ अभी बैठे थे। ये वे लोग होते थे जो अपने कैदी से न मिल पाने की उदासी या फिर मिलने के बाद के गहरे दुख से इतने भारी हो जाते थे कि उन्हें जाने में दिक्कत होती थी। कुछ देर तक वे अविश्वास के साथ जेल की दीवार को, जेल के सिपाहियों को देखते थे जो उनकी आतुरताओं को, अकुलाहट को, दुख को, धीरे-धीरे पीसते हुए उन्हें फिर उनके वर्तमान में फेंक देते थे। जेल की दीवारों के ऊपर बने कंगूरों और उभरी ईंटों पर से धूप गुजर चुकी थी। दीवार के नीचे अब दूर तक फैला सन्नाटा था जिसमें इन कंगूरों की काँपती बेडौल परछाइयाँ अभी थीं।

भीड़ कम होने के साथ ही हैनीमेन की मूर्ति के नीचे हड्डी बैठानेवाला भी अपना सामान समेट रहा था। अपनी तस्वीरें, हड्डियाँ और दवाएँ थैले में भरने के बाद वह सर झुकाए रुपये गिन रहा था। उन रुपयों को गिनते हुए उसका सर बिल्कुल उसके मुड़े घुटनों पर चिपक गया था। वह शायद कम देख पाता था। अपनी उँगलियों को बार-बार जीभ के थूक से गीला करके चिपके, मुड़े नोटों को सीधा करता हुआ गिन रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में उसकी जीभ बाहर निकलती जो आगे से काली हो गयी थी। मालिशवाले की जगह खाली थी। वह उससे पहले ही चला गया था जब तेज़ हवाएँ चलना शुरू हुई थीं। आदमियों के नंगे बदन में ये हवाएँ अपने नाखून गड़ाकर धँसती थीं जो सर्दियों के दिनों की बारिश और उदासी के साथ उसकी ठंड को भी लिये होती थीं। धूप जाते ही ये नंगे बदन हवाओं से खुद को ढक लेते थे। बन्द मिल के दरवाज़े पर बैठे दस लोग अब चुप थे। वे लोग वह सब कर चुके थे जो हर छुट्टी के दिन करते थे। उन दस आदमियों में एक अखबार पढ़ रहा था। एक शीशे में देखता हुआ अपनी मूँछ के बाल काट रहा था। दूसरे आदमी खाली आँखों से मिल की, बाहर निकले हुए चिकने पत्थरोंवाली शानदार दीवार और पत्थरों की ही बनी बाहर की सबसे ऊँची चिमनी की बड़ी-सी घड़ी को देख रहे थे। उनके देखने की परिधि में मिल की वर्कशाप की एक दीवार

की चौड़ी खिड़कियाँ भी थीं जिस पर बेशुमार धूल के जाले, जंगली बेलें और अन्दर रहनेवाले कबूतरों के झुंड थे। मिल की दीवार और उसके पत्थर, जेल की दीवार और उसके पत्थर की तरह कमज़ोर और उखड़े हुए नहीं थे। जेल मिल से सौ साल ज़्यादा पुरानी थी। जेल चल रही थी। मिल बन्द थी। जब सड़क खाली होती, इनसानों की भीड़ नहीं होती, तब सन्नाटे में आमने-सामने खड़ी दोनों विशालकाय दीवारें, अपने अन्दर रहनेवाले इनसानों की ज़िन्दगी की मुनादी करती सुनायी देती। जेल में अभी कैदी थे। मिल में मजदूर अब नहीं थे।

विवान डगलस को लगा कि अगर वह खिड़की पर कुछ देर खड़ा रहे और कुछ देर इन हवाओं को अपने अन्दर उतरने दे, तो उसे ज़रूर भूख लग जाएगी। भूख इसलिए ज़रूरी नहीं थी कि उसका समय था, वह इसलिए ज़रूरी थी कि विवान डगलस खाली था। भूख इस खाली होने को बाँटती थी। विवान डगलस ने सोचा कि जब तक भूख नहीं लगती वह बकरों की खालें माँगनेवाला मज़मून लिख ले जो मदरसों, यतीमखानों, मुसाफ़िरख़ानों और दूसरी तंज़ीमों में देना था। मज़मून लिखने के लिए विवान डगलस खिड़की से हटा तो सीढ़ी पर खड़े आदमी को देखकर चौंक गया। वह पतली मूँछोंवाला, साँवले रंग का आदमी था। उसके कुछ बाल सफेद थे। बदन दोहरा था। उसके चेहरे पर विनम्रता थी और होठों पर हल्की-सी हँसी थी। आँखों में पानी था जो उसके चेहरे को अतिरिक्त मुलायमियत देता था। वह दरवाज़े के पास दीवार से चिपका खड़ा था। पता नहीं वह कब से खड़ा था। वह इस तरह खड़ा था जैसे तेज़ हवाओं ने उसे कहीं से उठाकर वहाँ छोड़ दिया है।

''मुझे ऊपर जाना है।'' वह धीरे-से बोला।

''ऊपर कहाँ?'' विवान उसके पास आया।

''छत पर...मेरा लंगूर वहाँ फँस गया है।'' उसने उँगली से ऊपर इशारा किया। ''थोड़ी देर में रात हो जाएगी। उसके पहले उसे उतार लेना है।''

''तो उतार लो।''

''आपकी छत है...आपसे पूछना ज़रूरी था—शायद ऊपर जाने की सीढ़ियों पर ताला बन्द हो।''

विवान डगलस भूल चुका था कि ऊपर कोई छत भी है। वह कभी ऊपर गया ही नहीं था। उसके कमरे की चौखट से ही थोड़ा अन्दर जाती एक पतली जगह से ऊपर सीढ़ी जाती थी। मुंशी ने भी इसके बारे में नहीं बताया। आज यह आदमी बता रहा था कि ऊपर एक छत है जहाँ उसका बन्दर फँस गया है।

''तुम्हें पक्का पता है कि मेरी छत है, और यह सीढ़ियाँ वहीं जाती हैं?''

''हाँ, सबको पता है...ऊपर ताला तो नहीं है?''

''पता नहीं।'' विवान ने सर हिलाया। उसने छत से कभी यह शहर नहीं

देखा था। उसने कभी छत से इन तेज़ हवाओं को और इसमें रहनेवाली उन चीज़ों को भी नहीं देखा था जिन्हें वह खिड़की से देखता था। उसे लगा कि हो सकता है छत पर जाने से उसे भूख भी लग आये। उसने उस भूख को भी नहीं देखा था जो इस तरह छत पर जाने से पैदा होती हो और ज़्यादा तेज़ होती हो। छत पर बहुत कुछ नया था।

''मैं भी चलूँ?'' विवान ने पूछा।

उस आदमी ने हैरानी से विवान को देखा।

''आपकी ही छत है...चलिए...मैं ले चलता हूँ।''

विवान डगलस उसके साथ कमरे के बाहरवाले पत्थर पर आया। वह नीचे उतरनेवाली सीढ़ी का पहला पत्थर था, चढ़नेवाली सीढ़ी का आख़िरी पत्थर। दायें हाथ पर बड़ी पतली-सी जगह थी जिससे एक सीढ़ी ऊपर गयी थी। उस सीढ़ी पर खाली बोतलें, पुराने अखबार, फटा जूता, एक पुराना चूहे का पिंजरा और झाड़ू रखी थी। इन्हें विवान ने रखा था या फिर मुंशी ने या फिर उसकी लड़की ने कभी चुपचाप रख दिया था, विवान को याद नहीं था।

विवान ने सर हिलाया, ''तुम आगे चलो।''

ऊपर जानेवाली सीढ़ियों पर अँधेरा था। वे सँकरी और ऊँची थीं।

''मैं आपका हाथ पकड़ लूँ?'' उसने विवान से पूछा। विवान ने अपना हाथ बढ़ा दिया। विवान का हाथ पकड़कर उसे खींचते हुए वह धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़ने लगा। दीवार पर दूसरा हाथ रखे हुए विवान पीछे था।

आठ सीढ़ियों के बाद सीढ़ी घूम गयी। फिर चार सीढ़ियाँ थीं, फिर एक दरवाज़ा था। उस दरवाज़े की फैली दरारों से रोशनी गिर रही थी। उस रोशनी में टटोलते हुए वे आगे बढ़ रहे थे।

''आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।'' विवान ने उस आदमी की आवाज़ सुनी।

''कैसा?'' विवान ने अपनी आवाज़ सुनी।

''आपको छत पर आना चाहिए। हम सब जानते हैं इसके बारे में, पर आपको ही पता नहीं यह कैसे हो सकता है?''

यह हो सकता है विवान जानता था। यह उसी तरह हो सकता था जिस तरह विवान अँगूठी में माँ को पेशाब उबालते देख सकता था, जिस तरह हँसते हुए अन्धे को गोली मार सकता था, जिस तरह विलमौट डगलस का वंशज होकर इस शहर की लावारिस मय्यत कमेटी में नौकरी कर सकता था, माहरुख के घर में रह सकता था। यह उसी तरह हो सकता था जैसे सुबह से विवान के कमरे में हो रहा था, जहाँ परछाइयाँ वास्तविकताओं से बड़ी थीं। जिस तरह स्मृतियों के रेशों में कमरा तैर रहा

था, जिस तरह उसका लंगूर छत पर फँस गया था, यह उसी तरह हो सकता था।

दरवाज़े पर पहुँचकर उसने दरवाज़ा के पल्ले को हल्के से अन्दर की तरफ ढकेला। पल्ला हिला पर खुला नहीं। इस बार उसने झुककर कुंडी देखी फिर पल्ले को एक लात मारी। दरवाज़ा अन्दर की तरफ खुल गया। दरवाज़ा खुलते ही ठंडी हवा और मटमैली रोशनी के भभके सीढ़ियों पर लपके।

''लगता है यहाँ कोई आता रहता है वर्ना दरवाज़ा नहीं खुलता।''

''हो सकता है, शायद मुंशी या फिर उसकी लड़की आती हो।'' विवान ने कहा।

उस आदमी ने सर हिलाया। वह छत पर आ गया। उसके पीछे विवान भी। छत के एक कोने पर, गले में बँधी चेन के साथ सींखचों में फँसा काले मुँह का बन्दर बैठा अपनी लम्बी दुम फटकार रहा था। उस आदमी को देखते ही बन्दर कूदने लगा। वह दौड़कर लंगूर के पास गया। उसने उसके गले की चेन को सींखचे से छुड़ाया। लंगूर कूदकर उसके कन्धे पर बैठ गया। उस आदमी ने चेन को एक हाथ से पकड़ लिया, दूसरे हाथ से लंगूर को कन्धे से खींचकर गोद में दबाया और थप्पड़ मारने लगा।

''साले बदज़ात, दो घंटे से ढूँढ़ रहा हूँ। चल, आज तेरे सब नखरे ठीक कर दूँगा।''

गोद में दबे बन्दर ने अपनी छोटी, चमकदार आँखों से उसे देखा फिर अपनी लटकी दुम घुमाकर उसकी पीठ पर हंटर की तरह मारने लगा।

''साले दो घंटे की हवा में यह भी सीख गया।'' उसने बन्दर को गोद से हटाकर फिर कन्धे पर बैठा लिया।

वह बड़ी छत थी। विवान के कमरे और मय्यत कमेटी के दफ्तर के ऊपर फैली हुई थी। उसकी छोटी दीवारों पर चिकनी काली काई जमा थी जिस पर कुछ हरे तिनके उग रहे थे। उसकी फ़र्श के कोनों पर भी काई थी। छत की मुँडेर छाती तक आती थीं। विवान एक मुँडेर पर झुक गया। सामने बेतरतीबी से फैले घर थे। उन घरों की बाहरी दीवारें बिना प्लास्टर की थीं। उन दीवारों पर कपड़े लटके थे, लोहे के जाल थे। एक-दूसरे से सटे छज्जे थे, छतें थीं। विवान डगलस ने एक गहरी साँस ली। खुली हवा, बड़ा आसमान और ढेर-सी रोशनी साँस के साथ अन्दर गयी। विवान को लगा कि उसे भूख लग आयी है।

वह आदमी भी विवान के पास आकर खड़ा हो गया।

''कैसे फँस गया?'' विवान ने लंगूर को देखते हुए पूछा। लंगूर मुस्कराता हुआ चमकदार आँखों से विवान को देख रहा था। उसकी आँखों में शरारत थी। वह अपनी उँगलियों से उस आदमी के सर पर थपकियाँ दे रहा था।

''यह अब कमीना हो गया है। जब बच्चा था तब से पाला है। साले से मुहब्बत हो गयी है...औलाद से भी ज़्यादा। यह इस बात को समझने लगा है और इसका नाजायज़ फ़ायदा उठाता है। मुहल्ले में कूद-फाँद करता है। इसलिए चेन से बाँधकर रखता हूँ। वैसे सब इससे खुश रहते हैं। इसके अकेले होने पर भी वे लाल मुँहवाले बन्दर दूर तक दिखायी नहीं देते वर्ना वे साले अलग जीना हराम किए रहते हैं।'' वह आदमी खीझता हुआ बोल रहा था। उसके कन्धे पर बैठा, उसके सर पर उँगलियाँ चलाता लंगूर शरारत से मुस्कुराता हुआ विवान को देख रहा था।

''क्या तुम कुछ देर रुक सकते हो यहाँ?'' विवान ने उस आदमी से पूछा, ''मुझे फ़ौरन उतरने में दिक्कत होगी। बाद में हो सकता है अकेले न उतर पाऊँ। मुझे रस्सी की या फिर सहारे की ज़रूरत होगी। हो सकता है रुकने के बाद मेरी भूख भी तेज़ हो जाए।''

''हाँ, मैं रुक जाऊँगा। आपको नीचे ले चलूँगा, जब कहेंगे। पर मैं ज़रा इस बदज़ात को ढंग से बाँध दूँ।''

लंगूर के साथ वह आदमी छत के उसी कोने पर चला गया जहाँ सलाखें थीं। उसने उन्हीं सलाखें से चेन को बाँध दिया। लंगूर ने हैरानी से उसे देखा। वह जाने लगा तो उसने उसका हाथ पकड़ लिया।

''अबे जा नहीं रहा हूँ। बैठ कुछ देर, ले चलूँगा।'' उसने लंगूर से अपना हाथ छुड़ाया। लंगूर मुँडेर के आख़िरी हिस्से पर बैठकर पीठ खुजलाता हुआ शहर देखने लगा।

''यह भूखा तो नहीं है?'' वह आदमी विवान के पास आया तो विवान ने पूछा।

''यह कुछ खाना चाहे तो नीचे मिल जाएगा।''

''नहीं...थोड़ा भूखा रहने दीजिए। भूख रहती है तो वह कभी अकेला नहीं होने देती। देखिए।'' उसने दूर एक छत की ओर इशारा किया, ''वहाँ कुछ मच्छरदानियाँ लटक रही हैं न।'' विवान ने उसके इशारे की तरफ देखा। वहाँ एक छत पर सुखायी जाती हुई लम्बी, रंगीन मच्छरदानियाँ डंडे पर लटकी थीं।

''मैं वहाँ रहता हूँ। मच्छरदानी बनाने का काम करता हूँ। मैंने आपको पहले अक्सर देखा है। सड़क के किनारे लैम्पपोस्ट दिखाते हुए। आपने मुझे नहीं देखा होगा।'' वह मुँडेर पर झुका अपनी घर की छत की तरफ देखता हुआ बोल रहा था।

''वह अकेली औरत जो मच्छरदानियों को रंग रही है, मेरी बीबी है। अब ऐसी हो गयी है, पर पहले ऐसी नहीं थी। इन्हीं मच्छरदानियों के अन्दर मैंने पहली बार उसे चूमा था, उससे मुहब्बत की थी और फिर शादी भी की।'' अपनी बीबी को देखते हुए वह बोल रहा था। उसकी आवाज़ मुहब्बत से गाढ़ी हो गयी थी।

विवान डगलस ने गहरी साँस ली। ज़िन्दगी से लबरेज़ गहरी साँस। अभी भूख में देर थी, अभी मज़मून लिखने में वक़्त था, अभी नाव की कील चुरानी बाकी थी। अभी दिन बाकी था।

''मुझे अपने बारे में बताओ।'' विवान बुदबुदाया, ''अपनी मुहब्बत, मच्छरदानी, अपने लंगूर के बारे में बताओ। इस छत के बारे में, यहाँ रहनेवाली बूढ़ी रंडियों के बारे में और इस छत के आकाशदीये के बारे में बताओ।''

उसने सर घुमाकर विवान को देखा, फिर अपने लंगूर को देखा फिर शहर को देखा, फिर मुँडेर पर वापस झुककर धीरे-धीरे बोलने लगा।

''मेरा नाम गंगादीन है। मेरे बाबा अँग्रेज़ी फौज के बैंड में थे। बाजे का नाम तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानता पर वह हर साज़ बजा सकते थे। मेरे पिता ने इसी बन्द मिल में नौकरी की। तब यह बहुत बड़ी मिल थी। इसके धुँए से पूरा आसमान काला रहता था। आठ हज़ार आदमी इसमें काम करता था। इसके सायरन की आवाज़ों से शहर सोता-जागता था। मेरा पिता कपड़ा रँगने का होशियार कारीगर था। बाद के दिनों में, मिल बन्द होने पर वह भी, पिछले सत्रह सालों से चलनेवाले इसके दरवाज़े के धरने पर बैठा रहता था। आपने देखा ही होगा वह। मिल बन्द होने पर उसे इस बात का ज़्यादा दुख था कि रंगों से उसका साथ छूट गया। जब वह काम से घर लौटता था तो अपने हाथों का रंग नहीं छुड़ाता था। वे हाथ अजीब, नये-नये हाथों से रँगे रहते थे। वह मुझे उन रंगों के बारे में बताता। बताता कि ये रंग किस तितली, किस चिड़िया, किस फूल में होते हैं। वह रंगों को मिलाकर नया रंग तैयार कर लेता था। वह रंगों में रहता था। उसके सपनों में रंग थे, उसकी यादों में रंग थे। वह कुछ सोचता तो उसके चेहरे का रंग बदल जाता, वह हँसता और रोता भी रंगों में था।

''फत्तेचन्द उसका दोस्त था। हमारे घर के पास उसका भी घर था। फत्तेचन्द मच्छरदानी बनाने का काम करता था। अँग्रेज़ गोली-बारूद से उतना नहीं डरता था जितना इस शहर की धूल और मच्छर से। उसके कमरे की हर खिड़की पर जाली ज़रूर होती थी। छावनी में रहनेवाले या सिविल लाइन में रहनेवाले अँग्रेज़ के घर दर्जनों मच्छरदानियाँ होती थीं। फत्तेचन्द के पिता ने मच्छरदानियों का काम शुरू किया था और बढ़ा लिया था। दूसरी बड़ी लड़ाई में उसने बहुत पैसा कमाया, पर अँग्रेज़ों के चले जाने के बाद मच्छरदानी का काम कम हो गया। जो था भी उसे फत्तेचन्द सँभाल नहीं पाया। मच्छरों के मारने की दवाएँ आ गयीं। नालियों में छिड़काव होने लगे। मच्छर भी अब उस तरह नहीं होते थे। फत्तेचन्द धीरे-धीरे एक मामूली मच्छरदानी बनानेवाला रह गया जो बाद में शहर के बड़े ठेकेदारों के लिए मच्छरदानियाँ बनाने लगा।

''मैं भूल जाऊँ इसके पहले अपने बारे में बेहद ज़रूरी बात बता दूँ। आप शायद विश्वास करें न करें फिर भी बताना ज़रूरी है। बचपन में हम जब गली में कंचे खेलते थे तो उसके लिए मिट्टी में छोटा-सा गड्ढा करके, एड़ी बराबर, पिल्लुक बनाते थे। मैं कंचे में उस्ताद था। मैं घर में सिर्फ़ चार कंचे अंटी में दबाकर निकलता और जब लौटता तो मेरी निकर की दोनों जेबें कंचों से भरी होतीं। गली के लड़कों ने मुझे साथ में खिलाना छोड़ दिया। उन्हें खेलता देखकर मैं चिढ़ जाता। मैं उनसे कहता कि मुझे खिलाओ वरना तुमको भी खेलने नहीं दूँगा। वे कहते हम खेलेंगे, तुम हमें कैसे रोकोगे? ज़ाहिर है वे मारपीट के लिए तैयार होते। मैं अकेला पड़ जाता। मैं तब उनके बनाये हुए पिल्लुक पर बैठता और अपनी निकर का कोना उठाकर उसके अन्दर थोड़ा-सा पेशाब कर देता। वे हँसते, फिर दूसरा पिल्लुक खोद लेते। मैं इत्मीनान से उन्हें पिल्लुक खोदते देखता। जब वे पिल्लुक खोदने के बाद खेल शुरू करते, मैं जाता और उसी तरह, उस पिल्लुक पर भी थोड़ा पेशाब कर देता। वे फिर तीसरा खोदते, फिर चौथा। मैं हर बार यही करता। इस तरह गली में वे बीस पिल्लुक खोद देते और मैं बीस बार थोड़ी-थोड़ी पेशाब कर देता। उन्हें मेरे इस पेशाब रोकने की आदत और हुनर पर हैरानी होती। मुझे भी होती, पर मेरे अन्दर न जाने कैसे यह था कि मैं जब चाहता, जितनी देर चाहता, पेशाब रोक सकता था और जब चाहता कर सकता था। यह सब अक्सर होता और मैं हर बार यही करता। मैं इस काम में माहिर हो गया। मेरी इस महारत को मेरी लिंग शक्ति से जोड़कर लड़कों ने मुझे आदर भाव के साथ खिलाना शुरू कर दिया।

''बाद में जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो मुझे बदलू पंसारी के चिरैंधे लड़के ने बताया कि यह हुनर वास्तव में मर्दानगी को बेमिसाल बना सकता है, इतना कि मैं अपने वीर्य से शिलाओं को तोड़ सकता हूँ। उसने समझाया कि अगर औरत के साथ यह कर सको कि अपना झाड़ना जब तक चाहो रोक लो और पूरी रात लगे रहो, तो वह औरत तुम्हारी ग़ुलामी करने लगेगी। मेरे विश्वास न करने पर एक दिन वह मुझे एक सूखे, मरगिल्ले नागा बाबा के तमाशे में ले गया। एक चक्की के सामने नाले पर बड़ा-सा पत्थर पड़ा रहता था। उसे दो आदमी मिलकर भी नहीं हिला पाते थे। नागा बाबा वहीं तमाशा दिखा रहा था। मज़मा लगा था। मैं भी चिरैंधे लौंडे के साथ घुस गया। वह लम्बी जटाओं का जूड़ा बाँधे, शरीर पर गेरू, भस्म पोते, हड्डियों का ढाँचा दिख रहा था। उसकी कमर और कलाइयों में सीप, शंख की मालाएँ पड़ी थीं। वह सिर्फ़ एक लँगोट पहने था। जब मज़मा जम गया तो उसने सबसे सामने पड़ी चादर पर पैसे डालने को कहा। सब तरफ से सिक्के गिरने लगे। चादर सिक्कों से भर गयी। उसने वे सारे सिक्के एक के ऊपर एक रखकर एक ऊँची गड्डी बना ली। फिर अपना लँगोट खोला। अपने लिंग को आगे से खींचकर उसकी खाल के अन्दर

सिक्के भरने शुरू किये। उसने उसमें बहुत-से सिक्के भर लिये। फिर एक पतले डंडे पर अपने लिंग को लपेटा और उस डंडे को अपनी जाँघों के नीचे दबाकर अजीब से आसन में बैठ गया। मैं जो देख रहा था वह सिर्फ़ पागलपन था। वह जो कर रहा था सिर्फ़ पागलपन था। जो खड़े हुए देख रहे थे उनके चेहरे पर पागलपन था। कुछ देर बाद वह उठा। उसने लिंग की खाल को डंडे से उतारा। उसके अन्दर पड़े सिक्के बाहर निकाले। उसने फिर उस चक्की के सामने पड़े पत्थर पर एक कपड़ा बाँधा। मज़मे में से दो आदमी बुलाए जो उस पत्थर को हटा दें। जो दो आदमी गये वे उसे हिला भी नहीं पाये। मैं भी चिरैंधें के साथ गया कि वे आदमी कहीं उसके न हों। पर हम भी उस पत्थर को नहीं हिला सके। उसने फिर अपने लिंग की खाल खींचकर उस कपड़े के अन्दर डाली और दूसरी तरफ से उसका सिर पकड़कर उस पत्थर को हवा में उठा दिया। यह सब जैसे जादू था।

''बाद में चिरैधें ने मक्का खाते हुए बताया कि बाहर की सारी रईस औरतें नागा बाबा की गुलाम हैं। उसके लिंग में तो इतनी ताकत है कि वह एक साथ बीस औरतों के साथ काम कर सकता है और तब तक कर सकता है जब तक औरत हाथ न जोड़ने लगे। चिरैंधे ने बताया कि इसी गुण के कुछ अंश मेरे अन्दर भी हैं। मैं इस पर थोड़ा और अभ्यास करूँ और पेशाब की जगह वीर्य को रोकने लगूँ और जब चाहूँ निकाल सकूँ, तो मैं भी शहर की सारी रईस औरतों को ग़ुलाम बना लूँगा।

''मैं जो कर सकता था मैंने वही शुरू कर दिया। अकेले में हाथ से इसका अभ्यास करने लगा। आप विश्वास करें कि धीरे-धीरे मेरे अन्दर यह हुनर पैदा हो गया कि मैं जब चाहूँ अपना झड़ना रोक सकता था। जब तक चाहूँ रोक सकता था। मैं अब अपनी इस शक्ति से परिचित था और मुझे कम-से-कम एक लड़की पर तो इसे आजमाना ही था जिसे मैं ग़ुलाम बना सकूँ।

''फत्तेचन्द रोज़ शाम को गंगा-किनारे के आनन्देश्वर मन्दिर जाता था। पर पिछले दो महीने से वह उल्टा चलता हुआ मन्दिर जा रहा था। हैरानकुन तरीके से वह उल्टा भी उतना ही तेज़ चलता जितना कि कोई सीधा देखते हुए चलता है। उस मन्दिर के बाहर बैठनेवाले किसी सिद्ध ने उसे बताया था कि अगर तीन महीने तक वह इसी तरह आकर बाबा आनन्देश्वर के दर्शन करता रहे और फिर तीन महीने पूरे होने पर पूर्णमासी की रात अपने घर पर अखंड रामायण करवाए, तो उसकी मनोकामना पूरी होगी। उसकी मनोकामना, मुझे बाद में मालूम पड़ा यही थी कि उसकी बेटी, जो बोर्ड की बारहवीं का इम्तहान दे रही थी, उसे एक अच्छा लड़का मिल जाए जो मच्छरदानी का काम भी जानता हो और उसके काम को सँभाल सके। फत्तेचन्द की घर के नीचे अपनी एक दुकान भी थी। मैंने उस लड़की को कई बार देखा था। वह दुकान पर बैठी हुई किताबें पढ़ा करती थी।

''ये उन दिनों की बातें हैं जब भिश्ती चमड़े की मश्क से नालियाँ धोते थे, बिजली कभी नहीं जाती थी और घरों में तीसरी मंज़िल तक चौबीस घंटे पानी आता था। घरों में खूब सारे भाई-बहन होते थे, बूढ़े होते थे। इन बूढ़ों के पास बहुत-सी कहानियाँ होती थीं जिनमें बहुत-सी परियाँ होती थीं, जादुई पिटारे, उड़नेवाले घोड़े होते थे। उन दिनों नदियों में पानी था, पेड़ों के पत्ते चिकने थे, सब्जियों में गन्ध थी। मौसम चौखटों पर हँसते हुए दस्तक देते थे। इनकी अगवानी में झूले थे, घरों में रँगे जाते हुए कपड़े थे, गीत थे, चूल्हों पर पकते पकवान थे। हर घर के बच्चे आसमान के नीचे खेलते थे, हर बच्चे के माथे पर चोट के निशान होते थे। उन दिनों में बहुत कुछ ऐसा भी था जो बुरा था, पर याद वही रह जाता है जो अच्छा होता है।

''तो ऐसे ही दिनों में एक दिन अजीब वाक़या हुआ। जिस सड़क पर फत्तेचन्द की दुकान थी उस पर दो साँड आपस में लड़ गये। आपने कभी अगर मस्त साँडों को लड़ते हुए देखा हो तो आप समझ सकते हैं कि क्या हुआ होगा। वह लड़ाई दो घंटे से चल रही थी। उनमें से एक साँड कुछ दिन पहले एक रिक्शेवाले को सींगों पर उछाल चुका था। वे साँड पूरी सड़क रोके थे। उनके चारों तरफ दूर-दूर मज़मा लगाये लोग उनकी लड़ाई देख रहे थे। पूरी सड़क दो घंटे से बन्द थी। किसी माई के लाल में हिम्मत नहीं थी कि उनके पास भी जाता। लड़ाई देखनेवालों में मैं भी था। उसी समय मैंने देखा कि फत्तेचन्द की लड़की अने घर से निकली। उसका बोर्ड का पर्चा था। उसे इम्तहान देने जाना था। आपको भी पता होगा कि उन दिनों बोर्ड का पर्चा कितनी बड़ी चीज़ होता था। मैंने उसे देखा। उसके माथे पर चन्दन का टीका लगा था, होठों के कोने पर दही चिपका था और उसकी दोनों हथेलियों में रंग लगा था, जैसे मेरे पिता की हथेलियों में लगा रहता था। वह भी शायद घर में मच्छरदानियों को रंगकर आयी थी। साँड उसी तरह सींग भिड़ाए खड़े थे। थोड़ी देर में वे जिधर भागते, उधर की भीड़ भागती फिर लहर की तरह लौट आती। लड़की को सड़क पार करके जाना था और वह मुमकिन नहीं था जब तक कि साँड लड़ रहे थे। मैंने देखा, उस लड़की के हाथ-पाँव फूलने लगे। उसका चेहरा रुआँसा हो गया। वह अपनी हथेलियों को आपस में मसल रही थी। मैं देख रहा था। मैं उसके पास आया। ''हटा दूँ।'' मैंने उससे पूछा। उसने धीरे-से सर हिलाया। उन दिनों मुझे अपनी ताकत पर बड़ा यक़ीन था। इसकी एक वजह वह भी थी जो मैंने आपको बतायी थी। मैंने कोने के हलवाई की दुकान से उसकी भट्ठी में कोयला जलानेवाला छोटा-सा डंडा लिया और उन लड़ते साँडों के बीच कूद पड़ा। बहुत जोख़िम का काम है दो लड़ते हुए मदमस्त साँडों के बीच जाना। मैं अगर उनकी ज़द में आ जाता तो मेरी मौत तय थी। पर वे दिन दूसरे थे। मौत का तो पता नहीं, पर यह पता था कि फत्तेचन्द की लड़की मुझे देख रही है। करीब दस मिनट

तक उन दोनों साँडों के साथ जूझने के बाद मैंने उनको हटा दिया। भीड़ बिखर गयी। सड़क खाली हो गयी। फत्तेचन्द की लड़की भी अपना इम्तेहान देने चली गयी।

''दूसरे दिन फत्तेचन्द के मन्दिर जाने के बीस मिनट बाद, यानी ठीक छह बजे मैं उसकी दुकान पर गया। लड़की दुकान पर बैठी थी। वह दुकान में अकेली थी। कई तरह की मच्छरदानियाँ रखी थीं। मुझे देखकर वह अपरिचय दिखाती हुई, परिचितों की तरह बहुत थोड़ा-सा मुस्करायी।

''गुलशहतूती रंग की मच्छरदानी है?'' मैंने पूछा।

''यह कैसा रंग होता है?'' उसने पूछा।

''नहीं पता?''

''नहीं।'' उसने सर हिलाया।

''इन्द्रधनुष देखा है कभी?''

''हाँ।''

''उसके आठवें रंग में होता है।'' मैंने कहा और चला आया।

दूसरे दिन ठीक छह बजे मैं उसकी दुकान पर फिर पहुँचा।

''सुरचम्पई रंग की मच्छरदानी है?''

''यह कैसा रंग होता है?'' उसने पूछा।

''नहीं पता?''

''नहीं।''

''इन्द्रधनुष देखा है?''

''हाँ।''

''उसके नवें रंग में होता है।''

तीसरे दिन फिर ठीक छह बजे मैं उसकी दुकान पर गया।

''नीरनारंगी रंग की मच्छरदानी है?''

''यह कैसा रंग होता है?''

''नहीं पता?''

''नहीं।''

''इन्द्रधनुष देखा है?''

''हाँ।''

''उसके दसवें रंग में होता है।''

फिर मैं चौथे दिन, पाँचवें दिन ठीक छह बजे गया।

''आबशारी रंग है, अशफ़ीज़र्द रंग है, उन्नाबी रंग है...?''

हालत यह हो गयी कि छह बजने के पहले ही वह मेरा और नये रंग का इन्तज़ार करने लगी। फिर एक दिन मैं छह बजे उसकी दुकान पर नहीं गया।

हलवाई की दुकान के टाट की आड़ में बैठ गया। मैंने देखा। छह बजते ही वह बेचैन हो गयी। बाहर आयी। इधर-उधर देखा फिर अन्दर गयी। फिर बाहर आयी, फिर अन्दर गयी।

दूसरे दिन मैं फिर ठीक छह बजे पहुँचा। मुझे देखते ही बोली, ''कल क्यों नहीं आये?''

''रंग ढूँढ़ने गया था।''

''क्यों? इन्द्रधनुष टूट गया क्या?''

''मैं समझ गया कि जैसा चिरैंधे ने बताया था, अब वह मेरी गुलाम बनने की राह पर चल पड़ी है।

''आप सोच रहे होंगे कि मैं इतने नायाब रंगों के बारे में कैसे जानता था। मैंने आपको अपने पिता के बारे में बताया। उसने मुझे एक बार बताया था कि दुनिया में चार हजार से ज़्यादा रंग हैं पर इनसान बदनसीब है जो केवल कुछ रंग ही देख पाता है। पेड़ के ही दस हरे रंग होते हैं, अगर कभी ध्यान से देखो। भीगा शजर, सूखा शजर, ताजा शजर, पुराना शजर, हँसता हुआ शजर, रोता हुआ शजर, मुहब्बत में डूबा शजर, शाम की लाली में नहाया शजर, ओस से भीगा शजर, छाँह देता शजर, चिता में जलाता शजर। वह जब चाहता, कभी भी नया रंग बना सकता था, उसे नाम दे सकता था, मैंने उससे एक दिन बीस नये नाम पूछ लिये थे। वही रंग लेकर मैं उसकी दुकान पर जाता था। हाँ इन्द्रधनुष की बात ज़रूर मेरी अपनी थी। इतना बड़ा मैं हो ही चुका था।

''फत्तेचन्द को उलटे पैर मन्दिर जाते हुए तीन महीने पूरे हो गये। पूरे चाँद की रात उसने अपने घर में अखंड रामायण का पाठ रखा। मेरे घर के लोग भी गये। मुझे तो जाना ही था।

''एक छोटे-से कमरे में रामायण रखी थी जहाँ पाठ हो रहा था। वहीं सब बैठे थे। वह भी थी। पाठ के बीच में ही मेरी और उसकी आँखें लड़ रही थीं। आप जानते ही होंगे कि मुहब्बत में आँखें लड़ने से ज़्यादा असरदार और चाहत जगानेवाला कुछ नहीं होता। मुझे नहीं पता क्या वक़्त था, पर इतना ज़रूर याद है कि चाँद ऊपर के रोशनदान से निकला था और लोग ऊँघने लगे थे। जब राम सीता के लिए विलाप कर रहे थे तब वह उठी और अन्दर आँगन की तरफ गयी। जाते-जाते उसने मुझे देखा। जिस तरह देखा, वह मेरे लिए खुला निमन्त्रण था। मैं भी उठा और धीरे-से सरकता हुआ आँगन में चला गया।

''आँगन में बहुत-सी रंगीन मच्छरदानियाँ लटक रही थीं। वे सब उन्हीं रंगों की थीं जो मैंने उससे पूछे थे। उसने उन रंगों को ढूँढ़ा था, बनाया था। इन्द्रधनुष के वे सब रंग पूरे आँगन में फैले थे। इन रंगों में सफेद चाँदनी थी, रातरानी की तेज़

महक थी, हल्के काँपते जाले थे, गहरा सन्नाटा था। आप अगर कभी दो मच्छरदानियों के पार देखें तो कुछ नहीं दिखेगा। उनके जाल एक-दूसरे के सामने आ जाते हैं। मुझे आँगन के आख़िरी कोने में एक हिलती हुई मच्छरदानी दिखी। मैं धीरे-धीरे उसकी तरफ बढ़ा। उस मच्छरदानी के अन्दर वह तख़्त पर लेटी थी। वह मच्छरदानी के अन्दर थी, मैं बाहर। हम चुपचाप आँखें लड़ाने लगे। धीरे-धीरे उसकी आँखों का ही जाल बनता गया। पूरी मच्छरदानी उसकी आँखों के जाल में बदल गयी। मैं उस जाल के अन्दर चला गया।

''जैसा मैंने अपने हुनर के बारे में बताया, मैंने उसे इन्द्रधनुष के वे सब रंग दिखाये जो मैं उससे दुकान पर पूछता था। मैं जब चाहता बीच में रुक जाता। वह बेसुध-सी कहती, हाँ यह सुरचम्पई, यह नीरनारंगी, यह गुलशहतूती, और हाँ अब अशर्फ़ीज़र्द, अब उन्नाबी। उस पूरी रात मच्छरदानी के अन्दर बेशुमार रंग थे, उन रंगों के बीच हम थे, हमारी मुहब्बत थी। चिरैंधे ने जैसा बताया था, वह मेरी गुलाम बन गयी।

''हम एक ही धर्म के थे। हमारे पिता दोस्त थे, पैसों में भी ज़्यादा ऊँच-नीच नहीं थी इसलिए हमारी शादी में कोई दिक़्क़त नहीं आयी। हमारी शादी हो गयी। पर सच तो यही है साहब कि गुलाम तो उसका मैं ही बन गया और आज तक बना हूँ।'' गंगादीन ने एक लम्बी साँस ली, ''ग़ुलाम बन जाने का जज़्बा ही मुहब्बत के इन्द्रधनुष का असली और शानदार रंग है। इसी में होता है कि गुलाम बनते ही पूरी दुनिया कदमों के नीचे आ जाती है। बड़े-बड़े राजे-महाराजे पाँव की धूल नज़र आते हैं।''

गंगादीन कुछ देर चुप रहा फिर बोलने लगा, ''पर मेरा यह हुनर मेरे लिए ठीक नहीं था। एक रात जब मैंने यही सब किया और बाद में जब मैं खाली हुआ, तो मेरी बीबी की जाँघें ख़ून से सनी थीं। वह चीख मारकर उठ बैठी। मैं भी डर से सफेद हो गया। सुबह के चार बज रहे थे। किसी तरह मैंने मस्जिद की अज़ान का इन्तज़ार किया और रोशनी होते ही अस्पताल भागा। वहाँ मैंने डॉक्टर को पूरी बात बतायी। उसने मुझे दवा दी और पिल्लुक की यह आदत छोड़ देने को कहा। उस दिन के बाद से मैंने यह फिर कभी नहीं किया।''

गंगादीन चुप हो गया। सर घुमाकर उसने कँगूरे के अन्दर बैठे अपने लंगूर को देखा फिर मुँडेर पर झुककर साँस लेने लगा। विवान डगलस ने चारों ओर देखा। शाम होना शुरू हो गयी थी। छत के चारों कँगूरों के ऊपर की कालिख, आसमान की कालिख, चिमनियों का धुआँ, लौटते परिन्दे, सब अँधेरे की सबसे बड़ी कालिख में घुल रहे थे। छत पर कई तरह की गन्ध आने लगी थी, कई आवाज़ें थीं, कई रंग थे। रेल के इंजन की सीटी सुनाई दे रही थी, नुमाइश की, कव्वाली की, भजन की

आवाज़ थी, मसालों की गन्ध थी, मरे हुए जानवर की गन्ध थी, पुरानी दीवारों की गन्ध थी। आसमान अभी एक कोने में तीन रंगों वाला था, मकानों की छतें, दीवारें, सूखते कपड़े आठ रंग के थे, उसके और गंगादीन के कपड़े पाँच रंग के थे। लंगूर दो रंग का था। विवान डगलस को रिमाडी के जंगलों की याद आयी। इतनी गन्ध, इतनी आवाज़ें, इतने रंग एक साथ उसने वहीं देखे थे।

गंगादीन लंगूर के पास गया। गंगादीन को देखकर उसने मुँह फेर लिया और नाराज़गी से कँगूरे के नीचे लटक गया। गंगादीन वापस विवान के पास लौट आया। मुँडेर पर फिर झुक गया वह। विवान भी उसके साथ झुक गया।

''मैंने अपने बाबा के बारे में बताया था। उसकी धुनों में अजीब कैफ़ियत थी। वह ऐसी धुन बजाता था कि आदमी सुनकर हत्या करने पर उतारू हो जाए। वह ऐसी धुन भी बजाता था कि सुननेवाला अपनी जान दे दे। दोनों धुनें वह दो घंटे के अन्तर से बजा सकता था। जब कभी मोर्चे पर लड़ाई ख़त्म हो जाती और चारों तरफ लाशें बिखरी होतीं और जब पता नहीं चलता कि कौन बचा और कौन मर गया, तब रात के अँधेरे में वह अपनी मशहूर धुन बजाता था, जिसे सुनकर तम्बुओं से थके-हारे अँग्रेज़ धीरे-धीरे बाहर निकलकर उसके चारों ओर जमा हो जाते। उदास आँखों से उसे देखते, उसकी धुन सुनकर रोते। सुबह ही वह फिर अपनी धुन से उनको लड़ने की वहशत से भर देता था।

''नौकरी छोड़ने के बाद भी, वह अक्सर ही अकेले में वह धुन बजाता था। उस समय यह मुहल्ला तलाक़शुदा औरतों और बूढ़ी रंडियों के घरों से बसना शुरू हो चुका था। उसने इसी मुहल्ले में वह घर लिया था, जहाँ आज मैं रहता हूँ। जब वह यहाँ की वीरानी और अँधेरों में वह धुन बजाता था, तो तम्बुओं में रहनेवाले अँग्रेज़ सिपाहियों की ही तरह, इन घरों की खिड़कियों की चिलमन सरकतीं और उन अकेली औरतों के उदास चेहरे, अँधेरे में तैरती वह धुन सुना करते। आपके घर में तब कोई बूढ़ी तवायफ़ रहती थी जिसका चेहरा कभी किसी ने नहीं देखा था। इस छत के चारों कँगूरों पर अँधेरा होते ही आकाशदीये जल जाते थे। इस मुहल्ले की बदरंग दीवारों और थिलगी लगे अँधेरों के बीच में चार आकाशदीये पूरे शहर को अलग से दिखते थे। बाहर से आनेवाले राहगीरों को लोग पता बताते समय या तो मेरे बाबा की उदास धुन के बारे में बताते या फिर इन चारों आकाशदीयों के बारे में। जब तक वह तवायफ़ ज़िन्दा रही, आकाशदीये जलते रहे। उसकी मौत पर उसका चेहरा तो नहीं देखा गया, पर सुना गया कि वह कभी बहुत सुन्दर थी और इन आकाशदीयों की रोशनी में किसी का इन्तज़ार करती थी। मैंने तो नहीं देखा, पर सुनता आया हूँ कि उसके मरने के बाद भी, जब बहुत दिनों तक इस कमरे में कोई नहीं रहता था, नीचे सिर्फ़ दफ्तर था, तब भी अँधेरा होते ही इन कँगूरों में रोशनी हो

जाती थी। लोग कहते हैं वे प्रेत थे। कोई कहता है उसकी भटकती रूह उन्हें जलाती थी, तो कोई कहता था कि मेरे बाबा की उदास धुनों से आकाशदीये खुद-ब-खुद जल जाते थे। आकाशदीये कब जलना बन्द हुए, पता नहीं। किस्सों की कोई उमर नहीं होती।'' गंगादीन ने साँस ली और उदास आँखों से बढ़ते अँधेरे को देखने लगा।

अब अँधेरा हो रहा था। कुछ घरों में चिराग़ जल गये थे। कुछ घरों में चूल्हे, कुछ में रूहों के दाग़। सबका धुआँ ऊपर उठ रहा था। परिन्दों से पेड़ भर गये थे। हवाओं में ठंडक उतरने लगी थी।

विवान डगलस ने कँगूरों को देखा। वे सब पुराने, बदरंग और चटके हुए थे।

''फिर कभी रोशनी नहीं हुई?'' विवान ने पूछा।

''मैंने नहीं देखी।''

विवान ने इस शहर में, इस मुहल्ले में आकाशदीयों के बारे में नहीं सुना था। वह कभी छत पर भी नहीं आया था। उसे इनके बारे में कभी किसी ने बताया भी नहीं। दफ्तर की अल्मारियों में बन्द रोज़नामचों में भी उसका कोई ज़िक्र नहीं था। पर विवान डगलस को विलमौट डगलस आकाशदीये के बारे में बता गया था। विवान का मन हुआ कि गंगादीन को माहरुख के बारे में बताये, उस बूढ़ी रंडी के बारे में बताये जिसका चेहरा किसी ने नहीं देखा। उसके बारे में बताये जिसका इन्तज़ार वह आकाशदीये जलाकर करती थी। अपने कमरे में लगी उसकी तस्वीर के बारे में, उसके बुन्दे के बारे में बताये। पर गंगादीन विश्वास नहीं करता। यह घर उसके लिए सिर्फ़ किस्सों में था।

''राहगीर भटकते होंगे?'' विवान डगलस ने अजीब-सा सवाल किया। गंगादीन ने सर घुमाकर देखा उसे।

''मेरे बाबा की धुन थी, बहुत सालों तक थी।''

''अब, क्या हम इन कँगूरों में फिर रोशनी नहीं कर सकते?'' विवान ने अजीब सवाल किया।

''ज़रूर कर सकते हैं, आपका तो रोशनी से गहरा रिश्ता है, आप रोशनियाँ करते रहे हैं।''

''हाँ, मैं कर सकता हूँ।'' विवान बुदबुदाया।

गंगादीन मुँडेर से हट गया। लंगूर के पास आकर उसने उसकी चेन सींखचों से खोली। बन्दर कूदकर उसके कन्धे पर बैठ गया।

''हमें चलना चाहिए, आपको क्या मेरे सहारे की ज़रूरत है?''

गंगादीन ने विवान के पास आकर पूछा। विवान भी मुँडेर से हट गया। नीचे जानेवाली पहली सीढ़ी पर आकर उसने गंगादीन के कन्धे पर हाथ रखा। गंगादीन

ने घूमकर छत का दरवाज़ा बन्द कर दिया। सीढ़ियों पर अँधेरा था। रोशनी की ज़रूरत थी।

''आकाशदीये इन सीढ़ियों को, इस घर को भी रोशन करते होंगे?'' विवान ने पूछा।

गंगादीन ने एक क्षण विवान को देखा फिर लंगूर को थपथपाता हुआ बोला।

''हाँ, आकाशदीये अन्दर भी रोशनी करते हैं, जैसे धुन करती है।''

कमरे के सामने की नीचे जानेवाली सीढ़ियों से वह उतर गया। उसके कन्धे पर बैठा लंगूर विवान डगलस के कमरे के अन्दर झाँक रहा था। उसने चेन न पकड़ी होती तो वह ज़रूर अन्दर कूद जाता। सीढ़ियों पर उनके उतर जाने के बाद विवान डगलस कमरे के अन्दर आया। कमरे में अब अँधेरा था। यह अँधेरा अभी गाढ़ा नहीं हुआ था। उसमें कुछ रेशे जाती हुई रोशनी के बचे थे। कुछ तिनके उस चाँदनी के तैर रहे थे जो खिड़की के सामने, आसमान के कोने में उगते हुए चाँद से टूट रहे थे। कमरे के अन्दर रोशनी की ज़रूरत थी। रोशनी आकाशदीये भी करते हैं, जैसे कोई धुन करती है। विवान डगलस ने सोचा कि बल्ब जलाने से पहले वह इनसे रोशनी करने की कोशिश करे। कमरा अगर इनसे रोशन हो गया तो वह हमेशा इस रोशनी में रहा करेगा। विवान डगलस पलँग के पास रखी अलमारी के पल्लों पर बनी माहरुख के पास आया। उसका चेहरा किसी ने नहीं देखा था, उसके आकाशदीये सबने देखे थे। विवान डगलस ने उसके आकाशदीये नहीं देखे थे पर उसका चेहरा देख रहा था। विवान ने अपना चेहरा माहरुख के खुले बालों से सटा दिया। वह देर तक ऐसे ही खड़ा रहा। आकाशदीयों की रोशनी विवान के अन्दर उतरने लगी। रोशनी से पूरा भर जाने के बाद विवान माहरुख से अलग हो गया। कमरे के ठीक बीच में आया वह। धुन भी विवान के अन्दर थी। हमेशा थी। तारघर से, यतीमख़ाने से, मन्दिर के परित्यक्त ईश्वर से, रेल की पटरियों से होती हुई बल्लीमारान तक फैली हुई धुन थी वह। गहरी उदासी, नामुरादों की मुराद अज़ल की, दिल की छूटती नब्ज़ोंवाली उदासी की धुन थी वह। धुन की रोशनी से भी विवान भर गया। अब उसके अन्दर आकाशदीये की, धुन की, दोनों की रोशनी थी। अब यह रोशनी कमरे में फूटनी चाहिए थी, छूटते अनार की तरह, आबशार की तरह, नक्षत्रों की तरह। विवान बिल्कुल सीधा खड़ा हुआ। उसने अपने काँपते पंजों से शिथिल शिराओं को तानकर सीधा किया फिर धीरे-धीरे बदन को हल्की जुम्बिश देने लगा। कुछ ही देर में विवान की देह एक लय में आ गयी। विवान की झुर्रियाँ, थकी शिराएँ धीरे-धीरे खुलने लगीं। विवान डगलस थिरकने लगा। विवान डगलस नाच रहा था। कमरे के

ठीक बीच में बहुत धीमी, उदास धुन के साथ उसकी देह घूम रही थी। उसके पंजे, उसकी कलाइयाँ, उसकी कमर, उसकी गर्दन सब थिरक रहे थे। कभी वृत्त में, कभी लहर की तरह, कभी झुकते हुए। विवान डगलस की आँखें बन्द थीं। बहुत धीमा रक्स था वह। जैसे टूटती हुई पत्ती, जैसे टपकती ओस, जैसे छूटती साँस, जैसे पालवाली नाव, जैसे सरकते हुए स्वप्न, स्मृतियाँ। जैसे अन्धकार में प्रकाश प्रवेश करता है, जैसे प्रकाश में अन्धकार, जैसे जीवन में मृत्यु, मृत्यु में चेतना। हल्के अँधेरे में शरीर को थिरकाता हुआ विवान डगलस एक काँपती लौ में बदल रहा था। गहन नीरवता में, गहन एकान्त में, गहन उद्दाम लालसाओं में, गहन जिजीविषा में विवान डगलस नाच रहा था। उससे अलौकिक रोशनी फूट रही थी। उस रोशनी से कमरा भर रहा था। उसने अन्धकार को ढक लिया, खिड़की के बाहर चाँद को ढक लिया, पूरे आसमान को ढक लिया। विवान डगलस नाच रहा था। यह रोशनी विवान के अन्दर पहले से थी। यह बाहर से नहीं आयी थी। आकाशदीये और धुन भी पहले से थे। बस, विवान डगलस नाचा नहीं था। वह पहली बार नाच रहा था। पहली बार उसके अन्दर माँ, परित्यक्त ईश्वर और ग़ालिब भी नाच रहे थे।

नाचते-नाचते विवान डगलस को लगा कि उसे भूख लग आयी है। वह इस भूख का इन्तज़ार दोपहर से कर रहा था। वह इसी की कोशिश में छत पर भी गया था। कुछ देर विवान डगलस भूख के साथ नाचा फिर रुक गया। यह रोशनी जो उसके नाच से बाहर फूट रही थी वापस उसके अन्दर चली गयी। वह अब फिर अँधेरों के बीच में था। पलँग का सहारा लेकर विवान डलगस ने कुछ गहरी साँसें लीं। उसकी झुर्रियाँ वापस लटक गयीं। नसें फिर शिथिल हो गयीं।

घुटनों की चिड़िया फिर लौट आयीं।

विवान डगलस खिड़की पर आया। सामने आकाश पर चाँद अब ऊपर निकल आया था। चाँद वैसा ही था जैसा बचपन में सब बनाते थे। सन्तरे की फाँक की तरह एक तरफ से घूमा हुआ। भूख की तरह ही विवान को सुबह देखे हुए उस दूसरे चाँद की याद भी आयी जिसे नींद से उठकर उसने देखा था। तेज़ी से आसमानवाले चाँद के ऊपर से भागता हुआ। वह आसमान के जिस चाँद के ऊपर से भागा था, वह पूरा गोल था। स्वप्न और जागृति की सन्धि-रेखा पर दोनों चाँद पूरे गोल थे। दोनों चाँद इस तरह एक साथ, विवान ने रिमाडी के जंगल में भेदिए की लड़की के पास देखे थे।

विवान ने दीवार पर लगे दो स्विच नीचे किये। दो बल्ब जल गये। एक रसोई में था, दूसरा कमरे में। बल्ब की पीली रोशनी में उजाले के कुछ रेशों और तिनकों वाला अँधेरा ख़त्म हो गया। विवान रसोई में आया। इस रोशनी में पूरी रसोई दिखती थी। रसोई में चिटका हुआ सिंक, उसके नीचे के टूटे पाइप से टपकता पानी, नाली

में जमी काई, पत्थर के ऊपर गन्दे बर्तन, नीचे प्लास्टिक के कुछ थैले और एक ठिठका हुआ चूहा था।

विवान ने पत्थर के प्लेटफार्म के नीचे रखी टोकरी बाहर खींची। उसमें रखे छोटे-छोटे थैले बाहर निकाले। उनमें मसाले थे, दाल थी, चावल थे। एक थैले में थोड़ी सूखी हुई फली के टुकड़े थे, मटर के दाने थे, गोभी के पीले पड़ चुके कटे हुए कुछ फूल थे। विवान ने थैलों से उन्हें निकालकर एक बर्तन में पलट दिया। बर्तन में पानी भरकर उसे आग पर चढ़ा दिया। उसके पास अब समय था। मुंशी के आने से पहले मज़मून लिखा जा सकता था।

विवान कमरे में वापस आया। मेज की दराज़ से उसने काग़ज़ निकाला। उसी दराज़ की दरार में फँसा पेन निकाला। कुर्सी को खींचकर बैठा, अपने पाँव मेज के नीचे करके वह मज़मून लिखने लगा :

'1858 में बनी लावारिस मय्यत कमेटी के अब तक के कामों से आप सब अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। अगर चाहें तो आपको इसके अब तक के पूरे कामों का ब्योरा दिया जा सकता है। इसने अब तक कितनी लावारिस लाशों को जलाया या दफ़नाया, कितने लोग कब, कहाँ और किस तरह मरे, यह सब हमारे रोज़नामचों में दर्ज़ है और जो पूरी तरह महफूज़ हैं। इस कमेटी को हमेशा से शहर के पुराने और नामचीं लोगों से पैसा मिलता रहा है जिसके कारण इसके खर्चे आसानी से पूरे होते रहे। अब लोग ऐसा नहीं करते। कमेटी के मेम्बरान भी इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। शायद सब समझने लगे हैं कि लावारिस मय्यतें अब नहीं होतीं। पर ऐसा कभी नहीं हुआ है। कभी होगा भी नहीं। कोई नहीं जानता कि उसके नसीब में कल क्या लिखा है। कब वह एक लावारिस लाश बन सकता है और ऐसी ही किसी कमेटी को उसे दफ़नाना या जलाना पड़ सकता है।

मैं, विवान डगलस, इस कमेटी की तरफ से मुक़र्रर किया गया मामूली ओहदेदार हूँ जिसकी ज़िम्मेदारी है कि किसी भी लावारिस लाश को उसके आख़िरी मरहले तक इज़्ज़त और सुकून के साथ पहुँचाया जाए। हम ऐसा तभी कर सकते हैं जब हमारे पास पैसे हों। इसके लिए हम अपने तरीके से कोशिश करते रहे हैं और ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमने कभी किसी लावारिस मय्यत को देखकर मुँह छुपा लिया हो।

हमारी इसी चिन्ता के सबब, आज सुबह मुंशी कालका प्रसाद के दिमाग़ में एक नयी तजवीज़ आयी और उन्होंने पैसे के इन्तज़ाम का नया तरीका खोज निकाला है। मेरी आपसे गुजारिश है कि इस बार कुर्बानी के जानवरों की खालें जब आपको मिलें तो उसमें से कुछ खालें हमें भी इस नेक काम के लिए दे दें। लोग आपको

सैकड़ों खालें दीन ईमान और सवाब के नाम पर देंगे। कुछ खालें हमें भी देकर आप हमारे इस नेक काम को पूरी मुस्तैदी से जारी रखने में हमारी मदद करेंगे। हम खुद भी घरों में जाकर खालें माँग सकते थे पर लावारिस मय्यतों के बारे में यह कहना अच्छा नहीं होता और फिर शायद लोग हमारा यकीन भी नहीं करते। वे शायद इस पर भी यकीन नहीं करते कि लाशें लावारिस भी होती हैं। पर वे होती हैं। आप भी चाहें तो इनकी तारीख़ और हकीकतें, दमिश्क की तलवारों से, उँगलियों से उतारी हुई अँगूठियों से, उदास धुनों से, कँगूरों में जलनेवाले आकाशदीयों से पूछ सकते हैं। परवेज़ से, इस मोहल्ले की अटारियों पर बैठी बेनूर आँखों से पूछ सकते हैं। गंगा, दज़ला फरात और टेम्स से पूछ सकते हैं। इबादतगाहों के देवताओं से, मुल्क़ों की सरहदों से और बारूद की गन्ध से पूछ सकते हैं। ये सब लावारिस लाशों के बारे में जानते हैं।

हमें यकीन है कि आपकी तन्ज़ीम, इदारा भी ज़रूर इन सबके बारे में जानता होगा। मेरी गुज़ारिश है कि आपको मिलनेवाली खालों में से बकरे, भैंस या ऊँट की कुछ खालें हमें दें जिससे हम इन मय्यतों को इस दुनिया से इज़्ज़त और सुकून के साथ विदा कर सकें! आप जब हुक्म करेंगे हम खालें लेने के लिए हाज़िर हो जाएँगे।

आपका
विवान डगलस
और
मुंशी कालका प्रसाद

पुनः—चाहें तो खाल के साथ खुर, हड्डियाँ और सींग भी दे दें। वे भी अच्छे पैसों में बिकती हैं।

रसोई में एक गन्ध आयी। यह पानी में उबलती हुई सब्ज़ियों की गन्ध थी। विवान डगलस ने पूरे मज़मून को एक बार फिर पढ़ा। तसल्ली होने के बाद उसने एक गोल पत्थर से काग़ज़ को दबाकर मेज पर छोड़ दिया। वह रसोई में आया। आग बुझाकर उसने बर्तन एक बड़ी जाली में पलट दिया। मटमैले रंग का गर्म पानी जाली से बाहर बह गया। विवान डगलस ने जाली पर पड़ी सब्ज़ियों में से एक मटर के दाने को उँगलियों से दबाकर देखा। वह पिचक गया। उसने एक बड़े कटोरे में सब्ज़ियों को पलट दिया। पत्थर के प्लेटफार्म के नीचे की टोकरी में रखे एक थैले से प्याज निकाला। हरी मिर्च, नींबू भी। चाकू से प्याज और मिर्च के टुकड़े किये। इन टुकड़ों को कटोरे में डाला। एक नींबू काटा। नींबू को भी कटोरे में निचोड़ा। रस के साथ

गिरे हुए बीजों को एक चम्मच से अलग किया। शीशियों में रखी नमक, काली मिर्च, उन सब्जियों पर छिड़की। कटोरे में सबको चम्मच से मिलाया। उसकी गर्म भाप और गन्ध को एक बार सूँघा। अब वह इसे खा सकता था। कटोरा लेकर विवान डगलस फिर कमरे में आया। मेज पर उसने कटोरा रख दिया। कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया। मेज पर रखे काग़ज़ को पत्थर के साथ थोड़ा खिसकाकर उसने कटोरा हाथ में उठा लिया। फूँक मारकर गर्म सब्ज़ियों को थोड़ा ठंडा किया फिर चम्मच से सब्जियाँ खाने लगा।

सब्ज़ियाँ ख़त्म करके विवान डगलस कुर्सी से उठा। उसने कमरे और रसोई के बल्ब बन्द कर दिये। कमरे की तेज़ रोशनी ख़त्म हो गयी। वह फिर कुर्सी पर आकर बैठ गया। सामने चाँद को देखा उसने। चाँद अब ऊपर उठ आया था। उसकी सफेद चाँदनी कमरे के अँधेरे हिस्सों में हमेशा से परछाइयाँ बनाती थी। इन परछाइयों की आकृतियाँ विवान डगलस की इतनी अधिक परिचित थीं, कि जब चाँद इस तरह, इतना अन्दर आ जाता था, तो विवान डगलस को कमरे में उन परछाइयों का रहना भी महसूस होता था। वे चाँद के साथ सरकती थीं, रूप बदलती थीं, गुम होती थीं। विवान ने चाँद को यह जादू हमेशा से फेंकते देखा था। रिमाडी के जंगलों में सूखी शाखों के पार, नदी के फैले लम्बे तट पर, जेल की दीवारों के पार छोटे-से आसमान के टुकड़े पर या फिर मय्यत कमेटी के दफ्तर की खिड़की से अन्दर आते हुए उसके सँकरे गलियारों पर। विवान डगलस ने पलँग के पीछे की दीवार को देखा। वहाँ अभी एक जाल बना था। उस जाल में अभी कीड़े आने थे फिर एक वृत्त आना था। वह वृत्त ऊपर के कड़े का होता था जो अपनी परछाईं में अँगूठी की शक्ल बनाता था। यह अँगूठी वैसी ही थी जिसमें विवान कस्बे के बाज़ार में अपना घर देखता था। माँ को, मौसी को देखता था। कुछ देर तक यह जाल, यह अँगूठी दीवार पर रहते फिर चाँद ऊपर निकल जाता था। उसके पीछे भागते हुए ये सब भी।

कुर्सी पर घुटने मोड़कर विवान डगलस दीवार पर बनी परछाई को देखने लगा। अभी उस पर सलाखें बनी थीं। ये सलाखें वैसी ही थीं जैसी जेल में विवान की कोठरी की थीं। इन सलाखों से मुँह चिपकाकर विवान ने आसमान, पेड़, हवा, चिड़िया, चाँद और धूप को उम्मीदों से, हसरत से सालों तक देखा था। इन्हीं सलाखों से मुँह चिपकाकर बारह साल तक विवान के साथी ने विवान को ईश्वर की लिपि में लिखे जीवन के रहस्यों को पढ़ना सिखाया था। विवान को दीवार पर बनी सलाखों पर कुछ कीड़े दिखे। ये खिड़की पर लटके जालों में फँसे कीड़ों की परछाइयाँ थीं। फिर तीसरा कड़ा चाँद की ज़द में आया। फिर अँगूठी बनी। विवान डगलस हैरानी से उसे देखता रहा फिर उसने आँख बन्द कर लीं। उसे लगा आँखों के अन्दर पानी भर गया है। धीरे-धीरे उसके अन्दर गहरी नीरवता जन्म लेने लगी।

यह उसके पूरे स्वत्व को अपने अन्दर खींच रही थी। एक बड़े ब्लैकहोल की तरह। उसमें सब गिरते हुए लुप्त हो रहे थे। नीरवता का महाशून्य था। सुख देता हुआ, प्रक्षालन करता हुआ। गहरे विश्वास, गहरी आश्वस्ति, गहरी आस्था, गहरी जिजीविषा और बहुत गहरे प्रेम को जन्म देता। यह कुछ देर पहले के आकाशदीये और उदास धुन से जन्मी रोशनी से भी बड़ी रोशनी थी। यह अपने स्वत्व में होने की, अपने विराट होने की रोशनी थी। आँखों का पानी धीरे-से बहकर विवान के गालों की झुर्रियों में आया, फिर दाढ़ी पर आया। विवान की हथेली पर आया। विवान ने आँखें खोलीं। चाँद ऊपर चला गया था। दीवार पर लिखी ईश्वर की लिपि मिट चुकी थी।

विवान ने हथेली उलटी करके अपने चेहरे का गीलापन पोंछा। एक गहरी साँस ली। नाव की कील चुराने के लिए वह रात के आख़िरी पहर में जाना चाहता था। उसने चौर्यशास्त्र में पढ़ा था कि सुबह दो बजे से तीन बजे तक का समय चोरी करने का सर्वश्रेष्ठ समय होता है। उस समय मनुष्य की आत्मा उसकी देह से बाहर चली जाती है। वह शव की तरह हो जाता है। विवान इसी समय कील चुराना चाहता था। मुंशी को यह समझाना ज़रूरी था। चौर्यशास्त्र में ही उसने पढ़ा था कि चोरी करने से पहले गहरी नींद, स्नान और तेल की मालिश करना ज़रूरी होता है। विवान मुंशी को यह भी बताना चाहता था कि मुंशी भी गहरी नींद लेकर, स्नान करके, मालिश करके आये। विवान के खुद के लिए तीनों काम सम्भव नहीं थे। शायद मुंशी के लिए भी नहीं थे। पर विवान कुछ देर लेट तो सकता ही था। नाचने से, भूख से विराट होने से, थके शरीर को थोड़ा आराम दे सकता था। विवान डगलस कुर्सी से सरककर पलँग पर लेट गया। कड़े फिर उसकी आँखों के सामने थे।

1950 में, परखनलियों में माँ को पेशाब उबालते हुए और मौसी के आधे सर के दर्द को छोड़कर, विवान हॉस्टल चला गया। कॉलेज और हॉस्टल कस्बे से 90 किलोमीटर दूर, बड़े शहर में था। यह दूरी बहुत नहीं थी पर विवान ने जल्दी ही इसे बड़ा कर लिया। वह घर कम जाता था। हॉस्टल की खुली हवाओं, अलग तरह के दोस्तों और किसी भी बड़ी पाबन्दी से आज़ाद विवान डगलस, जवान और हमउम्र दोस्तों के बीच तेज़ी से अपने आपको, अपने तरीके से ढालने लगा। फुटबॉल का अच्छा खिलाड़ी, अच्छा ग़ज़ल गानेवाला, अच्छी कविताएँ लिखनेवाला, पर पढ़ने में औसत दर्ज़े का विवान डगलस, दोस्तों की पसन्द बन गया था। उन दिनों हॉस्टल की छतों पर, चाय के अड्डों पर, नाटकों को देखते हुए, कॉलेज की लाइब्रेरी के बाहर, सब जगह बहसें थीं जो अकसर पूरी रात चलतीं। सिगरेट के धुएँ, कैंटीन की

बिना दूध की चाय, बेतरतीब जुमले, नयी-से-नयी किताबों के उद्धरण, और अन्तहीन बहसों की अविभाज्य हिस्सा होते हुए विवान डगलस इन सबमें शामिल रहता। ये बहसें, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य बने भारत के पहले राष्ट्रपति की, छह घोड़ोंवाली वायसराय की, बग्घी से पाँच मील लम्बी यात्रा में अँग्रेज़ों से भी अधिक शानदार और वैभवशाली प्रदर्शन के लोकतन्त्र की प्रासंगिकता से होती हुई, कोरिया के युद्ध और दुनिया के दो विचारधाराओं में बँटने से टकराती रहतीं। इन बहसों में 1857 के गदर और अफीम के सम्बन्ध को तलाशा जाता, तो माओत्से तुंग और स्टालिन की मुलाकात के दुनिया के इनसानों पर पड़नेवाले जादुई असर की बातें होतीं, तो 'द गाड हू फेल्ड' की बातें भी होतीं। तिब्बत में चीन की घुसपैठ या तेलंगाना आन्दोलन होता तो 'फ्रेन्क सिनाटरा' के 'अवा गार्डनर' को दिये हुए 10 हज़ार डालर का नेकलेस और 21 साल की 5 फुट 8 इंच लम्बी, 140 पौंड वज़न की सोफिया लारेंस की 38-24-38 की काया भी होती। फ्रायड के दमन से जन्मी कुंठाओं को व्याख्यायित करते हुए वे जब आत्मपीड़क, परपीड़क व्यक्तियों तक पहुँचते तो भारतीय ऋषियों से शुरू होकर दुनिया की क्रूर, प्रत्यक्ष रूप से पुरुष संसर्ग से वंचित महिलाओं से होते हुए, गाँधी, जिन्ना तक चले आते। इन बहसों में अपने इतिहास को पराजितों का जर्जर वैभव बताते हुए इसे जल्दी-से-जल्दी जला देने के तर्क भी होते। इन बहसों में एक नया इनसान, नया समाज, नयी दुनिया गढ़ने की दबी, छुपी ज़िद और विश्वास भी होता। आधी-अधूरी व्याख्याएँ आधे-अधूरे विचार, आधी-अधूरी जानकारियों के साथ इन बहसों में टटोलते हुए आगे बढ़ने की कोशिशें होतीं। इसमें ज़िन्दगी को लेकर सब कुछ आधा-अधूरा होता। फिर भी, इन बहसों से इतना ज़रूर हुआ कि विवान डगलस को धीरे-धीरे लगने लगा था कि उसके चारों ओर, कहीं कुछ बहुत बुनियादी तरीके से ग़लत है जो बदलना चाहिए और जो आसानी से बदला जा सकता है। इन बहसों का अन्त बहुधा किसी के मैंडोलिन बजाने से या फिर विवान डगलस की गायी ग़ालिब की किसी उदास ग़ज़ल से होता।

इन बहसों में, हॉस्टल के इस उन्मुक्त जीवन में, विवान डगलस से धीरे-धीरे घर दूर हो रहा था।

विवान जब पहली बार हॉस्टल से घर आया तो देर तक माँ की हथेली अपनी हथेली में दबाए बैठा रहा। विवान ने माँ से छुट्टी के दिन के बारे में पूछा। माँ ने बताया कि जो काम विवान करता था वह अब रिक्शेवाला कर देता है। वही अब तारघर की लाइन में लगकर पैसे देता है, यतीमखाने के मुंशी को बुला लाता है। माँ मन्दिर और स्टेशन अकेले जाती है। स्टेशन पर अभी भी पराँठे खाती है। वह यह बताना नहीं भूली कि वह अब छह नहीं, चार पराँठे बनाती है और उसे स्टेशन पर

विवान की बहुत याद आती है। विवान ने माँ की उदास आँखों को देखा था। वे दुनिया की सबसे बेनूर आँखें थीं। विवान पूछना चाहता था कि स्टेशन पर माँ के साथ ग़ालिब तो होता है न? पर विवान ने नहीं पूछा। वह जानता था कि वह माँ को कभी नहीं छोड़ेगा। विवान ने कॉलेज में हस्तशिल्प सीखते हुए माँ के लिए एक टोकरी बनायी थी जो वह माँ के लिए लाया था। माँ टोकरी देखकर खुशी से भर गयी थी। माँ जो टोकरी ले जाती थी उसके ऊपर ढक्कन नहीं था। वह गहरे पेटवाली टोकरी थी जिसमें चीज़ें एक के ऊपर एक रखी होती थीं और खुले मुँह से कभी गिरती भी थीं। विवान ने दो पल्ले लगाकर टोकरी का मुँह ऊपर से बन्द कर दिया था। विवान जब तक माँ की हथेली पकड़े बैठा रहा माँ को उसकी ही चिन्ता थी। हॉस्टल के खराब खाने की, तबीयत की, दूसरी दिक्कतों की। जब तक विवान घर पर रहा, माँ ने उसे बहुत-सी चीज़ें बनाकर खिलायीं। बहुत-सी उसको बाँधकर देने के लिए तैयार कीं।

विवान जब तक घर पर रहा मौसी के सर में दर्द नहीं हुआ। वह दो बार ही विवान के सामने आयी। पहली बार तब, जब वह अपना सन्दूक खेलकर, पुरानी डिज़ाइन का रोज़वुड का बना एक पेन स्टैंड लायी जो उसने विवान को अपने कमरे की पढ़ने की मेज पर रखने के लिए दिया। दूसरी बार वह विवान के आख़िरी दिन, चुपचाप माँ के साथ रसोई में उसके काम में हाथ बँटाती हुई, विवान के खाने की चीज़ें बनाती रही, बाँधती रही।

विन्सेंट ने रात के खाने पर ही विवान से मुलाकातें कीं। खाने के दौरान उसने विवान से उसकी पढ़ाई, उसकी दिनचर्या और हॉस्टल के जीवन के बारे में थोड़ा बहुत पूछा। उसने विवान को बताया कि उससे अब ज़्यादा काम नहीं होता क्योंकि पेशाब में शक्कर ज़्यादा आने लगी है। यह भी, कि उसे अब एक भरोसेमन्द, मजबूत सहारे की ज़रूरत है। उसने विवान को इशारे से यह भी बताया कि हिन्दुस्तान की नयी आज़ादी के नये हिन्दुस्तानी के बीच, अँग्रेज़ दिखनेवाले विन्सेंट का यहाँ रहना अब ठीक नहीं है। सबके लिए, सबसे अच्छा यही होगा कि वे लोग इंग्लैंड जाकर रहने लगें, बावज़ूद उसके परिवार के इस देश से पुराने सम्बन्धों के और यहाँ उनकी बहत सारी क़ब्रें होने के। उसने विवान के सामने प्रस्ताव रखा कि इस बार की छुट्टियों में वह भी उसके साथ इंग्लैंड चले और एक बार वहाँ की ज़िन्दगी, अपनी ज़मीनें और लोगों को देख ले। अभी इस देश में कुछ सालों तक और रहा जा सकता है, ख़ासतौर से तब तक, जब तक कि नेहरू के हाथों में स्थितियों का नियन्त्रण है। विवान विन्सेंट की सब बातें सुनता रहा था।

विवान की छुट्टियों के वे दिन खाली, उबाऊ और अकेले थे। वह अपने साथ कुछ किताबें लाया था जिन्हें पढ़ते हुए वह छुट्टियों के ख़त्म होने का इन्तज़ार करता

रहा। वह बेवजह सड़कों पर घूमा, घर के पीछे की बस्ती में घूमा। वह उस सीढ़ी पर भी गया जहाँ दस पैसे देकर उसने मीना को नहाते देखा था। वह सीढ़ी अब पक्की हो गयी थी। वह दरार भी भर चुकी थी। विवान उन जगहों पर भी गया जहाँ माँ के साथ जाता था। तारघर के पीछे धोबियों के कपड़े सूख रहे थे। यतीमखाने का मुंशी विवान को पहचानकर हैरत से मुस्कराया था क्योंकि वह छुट्टी का दिन नहीं था और माँ को नहीं आना था। विवान ने अन्दर घूमती चीलों, मीनारों पर बैठे कबूतर और कपड़े धोते छोटे-छोटे यतीम लड़कों को देखा। वह उस मन्दिर में भी गया जहाँ वह ईश्वर था। मन्दिर के गर्भगृह का दरवाज़ा उखड़ चुका था। ईश्वर वैसा ही था। विवान स्टेशन भी गया। गुलमोहर के नीचे पत्थर पर बैठा। पटरियों के पार खेत थे, खेतों के ऊपर आसमान के कई रंग थे। विवान को माँ की गोद की याद आयी। वह पत्थर पर सर रखकर लेट गया। विवान ने ग़ज़ल भी गायी जो इस बार किसी ने भी नहीं सुनी।

एक दिन विवान विन्सेंट के कारखाने भी चला गया। उसके कारखाने की बाहर की दीवार के चारों तरफ बहुत-से झोपड़े बन गये थे। ये उसके मजदूरों के थे या फिर उनके गाँव के रिश्तेदारों के थे जो उनकी डोर पकड़कर चले आये थे। ये सब लोग कारखाने से टूटे पत्थरों के टुकड़े खरीदकर उसके सिल-बट्टे बनाते थे। उन सिल-बट्टों पर छेनी-हथौड़ी से गुफामानव की तरह की आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचते थे। उन पर फूल, पत्तियाँ, जानवर उकेरते थे। वे सब भी उकेरते थे जो मन में होता था और जो उस पत्थर पर मसाले या दाल पीसने में दिखायी नहीं दे सकता था। उनके झोपड़ों के अन्दर, बाहर कुछ बड़े पत्थरों से बनी देवताओं की मूर्तियाँ थीं। ये मूर्तियाँ बेढंगी, बेडौल थीं। इन देवताओं को वे उस जगह के मन्दिरों और लोगों की माँग के हिसाब से बनाते थे। उनके कपड़े, अस्त्र, चेहरे की रेखाएँ, रंग वे अपने मन से भरते थे। सिल-बट्टे की तरह ही ये देवता, उनके मन में जो था, उसकी छाया थे। मसाले और दाल पीसने पर जिस तरह सिल-बट्टे पर उकेरे उनके मनोजगत के रहस्य छुपे रहते थे, उसी तरह आरती के धुएँ, डमरू के शोर और आँसुओं में बन्द आँखों में, उन झोपड़ों में बनाए देवता भी, उनके रहस्य छुपाए रहते थे। इन देवताओं के बीच में ही आज़ाद भारत के कुछ नये देवता भी पड़े रहते थे। इनकी कीमत आसमान के देवताओं से ज़्यादा थी। इन नये देवताओं की मूर्तियाँ बहुत-सी जगहों पर, बहुत जल्दी-जल्दी दिखने लगी थीं। इनके गलों में मालाएँ होती थीं। चेहरे पर तृप्ति, सन्तोष और आत्ममुग्धता होती थी। उन झोंपड़ों के आगे खाली जगहों पर बैठे, सर झुकाए, पत्थरों पर उनकी मूर्तियाँ बनाते पुरुष थे, बच्चे थे, औरतें थीं। तेज़ी से हाथ चलाकर वे उन्हें बना रहे थे। उनके चारों तरफ पत्थरों की धूल थी, कण थे, आवाज़ें थीं। वे नंगे थे। वे भूखे थे। बदहवास थे। नये देवताओं को बनानेवाले इन

भूख, नंगे लोगों ने विवान को बताया कि आज़ाद भारत के इन नये देवताओं की मूर्तियाँ सबसे ज़्यादा बिकती हैं और कुछ दिनों में ये आसमान के देवताओं से आगे निकल जाएँगे। वे खुश थे कि उनका काम भी तब ज़्यादा चलेगा, उन्हें भी ज़्यादा पैसे मिलेंगे। उन्होंने विवान को चारों ओर फैले झोपड़े दिखाये जहाँ नये देवताओं की मूर्तियाँ छेनी-हथौड़ियों से बनायी जा रही थीं। विवान ने उन्हें यह सलाह दी कि ब्रिटिश क्राउन को भी वे लोग एक चिह्न के रूप में इन मूर्तियों में कहीं डाल दें जिससे ये मूर्तियाँ आसमान के देवताओं की मूर्तियों में मिलने से बची रहें। इस पर वे तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि अँग्रेज़ों की हुकूमत अब नहीं है इसलिए वे उनकी रानी का निशान इन पर नहीं डालेंगे। उन लोगों को यह पता था कि देश में अब उनका वोट है और वे सब बहुत जल्दी इन झोपड़ों से बाहर निकल जाएँगे। वे अपने वोट और लोकतन्त्र को समझते थे और इन देवताओं को, आसमान के देवताओं से अलग करने के लिए, उनकी मूर्तियों पर ब्रिटिश क्राउन की जगह अपने 'वोट' को चिह्न की तरह लगाना चाहते थे।

एक बार विवान हफ्ते में दो दिन लगनेवाले कस्बे के बाज़ार भी गया। अँगूठीवाले ने विवान को पहचान लिया था। विवान पिछले कई सालों से उसके पास नहीं आया था। विवान को देखकर वह मुस्कराया। उसकी शक्ल थोड़ी बदल गयी थी। कन्धे झुक गये थे। गालों में गड्ढे दिखने लगे थे। विवान जमीन पर बिछी उसकी चादर पर बैठ गया। विवान ने चाहा कि अँगूठी में कुछ देखे। घर में देखने के लिए कुछ नहीं था। 1951 के उस साल विवान बहुत कुछ देख सकता था।

"कुछ देखोगे?" उसने विवान से पूछा। विवान ने उसे देखा। उसका वह दाँत टूट चुका था। बचे हुए दाँत भी काले हो रहे थे। विवान ने सर हिलाया।

"पर अँगूठी में नहीं। तुम अब बड़े हो गये हो। मैं दूसरी चीज़ देता हूँ।"

उसने अपनी सिरहाने रखी बड़ी-सी कपड़े की पोटली खोलकर उसमें से एक टीन का डिब्बा निकाला। डिब्बे के अन्दर काँच जैसा एक टुकड़ा रखा था। उसे निकाला। विवान ने देखा कि लोहे के फ्रेम में कसा हुआ वह एक लेन्स था।

"खुद को देखो इसमें।"

विवान ने लेन्स में अपना चेहरा देखा। अपने चेहरे की खाल देखी। वह डर गया। उसकी खाल का एक-एक रन्ध्र, सिकुड़न, रोआँ, उसमें दिख रहा था। वह विवान डगलस की साफ़ चिकनी और सुन्दर खाल नहीं थी। एक उथली दलदल थी जिसमें झाड़ियाँ उगी थीं, गड्ढे थे, मैल जमा था।

"इसे रख लो।" उसने कहा, "यह तुम्हें सौ गुना बड़ा करके तुम्हारा चेहरा दिखाएगा। जब चाहो खुद को देखो। तुम्हें हमेशा अपनी वह असली सूरत दिखेगी, जो दुनिया में कोई दूसरा नहीं देख पा रहा होगा।"

अपने कमरे में लौटकर विवान ने रात को पलँग पर लेटकर लेन्स में अपना चेहरा एक बार फिर से देखा। वह चौंक गया। अगर इसके नाक-नक्श साफ़ न होते, यह पहचाना हुआ न होता या खंडित होता, तो इसे वह अपना नहीं, मन्दिर के परित्यक्त ईश्वर का चेहरा समझता। लेन्स में देखने के बाद ही विवान ने पहचान कि अपने इस चेहरे को उसने बहुत बार, बहुत-सी जगहों पर देखा है। यह चेहरा ही तारघर की कतार में खड़ा रहता था, यही वॉनगॉन के 'पोटैटो ईटर्स' में था, यही डरी आँखों से राजा का जुलूस देख रहा था। यही यहूदियों के यातनागृहों में था, यही गाँधी की शवयात्रा को अविश्वास से देख रहा था। इस चेहरे को विवान ने कस्बे में उठनेवाले ताज़ियों में, रामलीला में, अर्थी के पीछे घिसटते और बारात के आगे आतिशबाज़ी करते देखा था। इस चेहरे को ही विवान ने हमेशा शहर की सड़कों पर, मिलों की मशीनों पर, खेतों पर देखा था। विवान इस चेहरे को पहचानता था क्योंकि इस चेहरे पर कुछ भी सुन्दर नहीं था। इसकी खाल की सिकुड़नों में हमेशा ही दुख, भय, निराशा थी। यह चेहरा सब कुछ स्वीकार करता था। अपने तक आनेवाली हर चीज़ को ग्रहण करता था। यह प्रतिरोध नहीं करता था, कामनाएँ नहीं करता था, आग्रह नहीं करता था। अपनी उपस्थिति नहीं दिखाता था। इस चेहरे पर हमेशा एक काली छाया नाचती हुई दिखती थी। ये उसकी अतृप्त लालसाएँ थीं, खुरंड हो चुके स्वप्न थे और मौन, डरी हुई असहमतियाँ थीं। ये सब चेहरे विवान से हूबहू मिलते थे। यह बात दूसरी थी कि विवान उनके बीच, उनके साथ नहीं था और था भी। उस रात विवान को गहरी शान्ति मिली कि उसका चेहरा दूसरे लाखों चेहरे की ही तरह है, अलग से दिखता हुआ नहीं है। विवान कभी अलग से दिखना नहीं चाहता था, कभी दिखा भी नहीं था।

1950 से 1953 तक विवान डगलस की ज़िन्दगी में कुछ भी बड़ा परिवर्तन नहीं आया। साल में दो बार वह कुछ दिनों के लिए घर आया। घर आने के दूसरे दिन से ही लौटने के दिन का इन्तज़ार करने लगता। सड़कों पर घूमते हुए वह बहुत धीरे-धीरे बदलती हुई चीज़ों को देखता, किताबें पढ़ता, सन्नाटा बुनता। इतिहास और राजनीति पढ़ते हुए वह आगे पढ़ने की इच्छा करता था। उसकी शक्ति, चेतना इन दो विषयों के दायरों में विकसित हो रही थी। घर उसके अन्दर धीरे-धीरे अप्रासंगिक, ग़ैर-ज़रूरी होता जा रहा था, सिवाय माँ के।

1954 की एक सुबह हॉस्टल में विवान के कमरे के दरवाज़े पर खटखट हुई। विवान उनींदा-सा लेटा था। उसने उठकर दरवाज़ा खोला। सामने रामू खड़ा था। उसे पहचानने में विवान को एक क्षण लगा। विवान मुस्कराकर रामू को कमरे में ले

आया। दूसरा पलँग खाली था। विवान का रूम पार्टनर उस रात अपने लोकल गार्जियन के घर रुका था। विवान ने रामू को उसी पलँग पर बैठा दिया। खुद सामने पलँग पर बैठ गया। रामू के पास एक छोटी-सी लोहे की पेटी थी। उसमें उसका सामान था। रामू स्टेशन से सीधा विवान के पास आया था। विवान ने रामू का हाल पूछा। उसे अपनी चप्पलें दीं कि रामू अगर पहले बाथरूम जाना चाहे तो हो ले। रामू ने पहले चाय पीना चाहा। विवान रामू के साथ हॉस्टल के दरवाज़े पर लगी चाय की दुकान पर आ गया। वहीं बेंच पर बैठकर रामू ने विवान को अपने बारे में सब कुछ बताया। उसने बताया कि चोरी के इल्ज़ाम में निकाले जाने के बाद वे सब गाँव चले गये। सत्यनारायण वहाँ खेतों में मज़दूरी करने लगा। रामू किसी तरह पढ़ता रहा। अब यहाँ पैराशूट बनानेवाले सरकारी कारखाने में रामू निचले दर्जे के क्लर्क की लिखित परीक्षा में पास हो गया है। यहाँ के अस्पताल में उसका मेडिकल होना है। उसने विवान को बताया कि विवान की गेंद लगने के दो साल बाद रामू की आँख में खराबी आने लगी। उसकी जिस भौंह पर टाँके लगे हैं उसकी नज़र सचमुच कमज़ोर है और रामू नज़र के टेस्ट में ज़रूर फेल हो जाएगा। रामू चाहता था कि इसी शहर में रहने के कारण, विवान किसी भी तरह उसे टेस्ट में पास करवा दे। उसने बताया कि अभी वह सीधा स्टेशन से आ रहा है पर यहाँ उसके गाँव का एक आदमी ट्रांसपोर्ट में पल्लेदारी करता है, उसके यहाँ वह रात को रुक जाएगा। उसने यह भी बताया कि विवान का पता उसने माँ से लिया था जब वह यतीमख़ाने के बाहर रिक्शे पर बैठी मुंशी का इन्तज़ार कर रही थी। उसने विवान को यह भी बताया कि इस आँख के ठीक होने की रिपोर्ट पर ही वह सरकारी दफ्तर मे क्लर्क की नौकरी करते हुए, माँ, बाप सबकी देखभल कर सकेगा।

चाय बनने और ख़त्म होने तक धीरे-धीरे रामू ने विवान को अपने बारे में सब बता दिया। उसने विवान से उसके बारे में कुछ नहीं पूछा। शायद उसने माँ से रिक्शे पर पूछ लिया हेगा या वह जानता होगा कि सब अच्छा ही होगा। विवान से बातें करते समय ज़्यादातर समय रामू ने अपनी आँखें इधर-उधर रखी थीं। वह बहुत धीरे-धीरे बोल रहा था। वह किसी अधिकार से विवान से बात नहीं कर रहा था पर उसकी बातों में एक छुपा धागा इस बात का ज़रूर था कि उसकी आँख विवान की वजह से खराब हुई है इसलिए विवान की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह रामू का यह काम करवाए।

विवान रामू को फिर कमरे में ले आया। उसने रामू से बैठने के लिए कहा और बाहर निकलने के लिए कपड़े बदलने लगा।

विवान के हॉस्टल के पास ही शहर की सबसे बड़ी दवाओं की दुकान थी। इसके मालिकों में एक विशालकाय गुल्लू भी था जो विवान के दो सीनियर लड़कों

का गहरा दोस्त था। गुल्लू का शरीर दैत्याकार था। छह फुट से ऊपर निकलता हुआ। वह बहुत भारी और मजबूत था। उसने पढ़ाई ज़्यादा नहीं की थी पर अँग्रेज़ी बोलना जानता था। पिता के मरने के बाद, कम उम्र में ही अपने दो छोटे भाइयों के साथ वह दुकान सँभालने लगा था। दुकान बहुत बड़ी थी, मशहूर थी और चलती थी। शहर में उसका नाम था। वह उसी सरकारी अस्पताल के सामने थी जहाँ रामू की आँख का टेस्ट होना था।

गुल्लू के दो छोटे भाई भी दुकान में गुल्लू के साथ बैठते थे। दुकान में सबका काम और समय बँटा हुआ था। वे तीनों भाई शहर के सबसे शानदार इलाके में एक तिमंजिला मकान में रहते थे। गुल्लू ही दुकान पर पूरा नियन्त्रण रखता था। सुबह छह बजे दुकान खोलता था और शाम को चार बजे तक अनवरत काम करता था। चार बजे वह दुकान छोड़ देता था। तब उसका दूसरा भाई बैठता था। अपने दैत्याकार शरीर के अनुरूप ही गुल्लू रोज़ आधी बोतल व्हिस्की ज़रूर पीता था, मुर्गा ज़रूर खाता था। उसकी बीबी बहुत दुबली थी। रोज़ व्हिस्की पीने और मुर्गा खाने की तरह ही गुल्लू रोज़ रात को उसको मारता भी था और फिर रोती हुई बीबी को भोगता था, फिर सो जाता था। जिस रात वह बाहर किसी दूसरी औरत के साथ बिताता, उस रात उसकी बीबी मार खाने से बच जाती। सुबह-सुबह पूजा करके, बिना कुछ खाए वह छह बजे दुकान खोल देता था। उसे सुबह उठने में कभी देर नहीं हुई थी, कभी दुकान खोलने में देर नहीं हुई थी। वह कभी बीमार नहीं पड़ा था, बिना शराब, मुर्गे और औरत के किसी रात सोया नहीं था। जीवन को वह सिर्फ़ उतना ही देखता और समझता था, जो उसके सुख की परिधि में आता था। वह कभी बड़ी बातें नहीं करता, कभी ज़्यादा सोचता नहीं, कभी किसी भी चीज़ को पाने के लिए साधन के औचित्य की चिन्ता नहीं करता था।

विवान ने दोस्तों से उसके किस्से सुन रखे थे। उन किस्सों में गुल्लू में दोस्तों के लिए कुछ भी करने की उसकी गहरी ख़्वाहिश की तारीफ़ें भी थीं। विवान दो बार उन सीनियर लड़कों के साथ गुल्लू से मिला था। दो बार दवा लेने उसकी दुकान पर भी गया था जहाँ गुल्लू ने मुस्कराकर उसका अभिवादन किया था। गुल्लू विवान को पहचानता था। विवान को विश्वास था कि उसके दोस्तों का दोस्त होने के कारण, गुल्लू विवान को भी उतना ही महत्त्व देगा। विवान को पता था कि गुल्लू के मेडिकल स्टोर्स और शहर के सभी सरकारी अस्पतालों के बीच गहरा अनैतिक सम्बन्ध था, जिसमें सरकारी अस्पतालों की दवाओं की खरीद से लेकर मरीज़ों को लिखी जानेवाली दवाओं तक के सिलसिले थे।

कपड़े बदल कर विवान रामू को गुल्लू की दुकान पर ले गया। गुल्लू दुकान खोलकर उसी समय बैठा था। विवान ने गुल्लू को संक्षेप में बताया कि उसकी गेंद

की वजह से ही रामू की नज़र कमज़ोर हो गयी है और विवान के लिए बहुत ज़रूरी है कि रामू आँखों के टेस्ट में पास हो जाए। अपने स्वभाव के अनुरूप, अपने किसी भी दोस्त की चिन्ता और सम्मान को, अपनी चिन्ता और सम्मान की बात समझनेवाला गुल्लू तत्काल तैयार हो गया। उसके लिए यह बहुत छोटी-सी बात थी। उसने दुकान अपने आदमी पर छोड़ी और द्वितीय विश्व-युद्ध में इस्तेमाल की जा चुकी पुरानी, भारी मोटरसाइकिल पर ही विवान और रामू को बैठा लिया। जिस डॉक्टर को दूसरे दिन रामू की आँखों का परीक्षण करके सर्टिफिकेट देना था, गुल्लू उसके घर चला गया। उसने उस डॉक्टर को रामू से मिलवाया और डॉक्टर को अलग ले जाकर पूरी बात समझा दी। विवान की इज़्ज़त को अपनी और अपनी इज़्ज़त को डॉक्टर की इज़्ज़त बताकर, हर कीमत पर रामू का काम करवाने के लिए कह दिया।

डॉक्टर ने रामू को अगले दिन टेस्ट शुरू होने से दो घंटे पहले अस्पताल में मिलने को कहा। उस दिन सन्तुष्ट होकर रामू अपने रिश्तेदार के घर चला गया। दूसरे दिन अस्पताल में विवान को वह मिला। विवान रामू को डॉक्टर के पास ले गया। डॉक्टर ने अपने टेक्नीशियन को बुलाकर रामू को उसके साथ भेज दिया। विवान को डॉक्टर ने अपने पास रोक लिया। टेक्नीशियन ने रामू को पूरा चार्ट लिखकर दे दिया जिसे वह दो घंटे में अच्छी तरह याद करके दो बजे आ सके। उसने रामू से अपनी तरफ से कह दिया कि वह निश्चिन्त रहे क्योंकि गुल्लू की सख़्त हिदायत है कि यह काम होना चाहए।

दोपहर दो बजे रामू की आँख का परीक्षण कई लोगों के सामने हुआ। रामू उसमें शत-प्रतिशत खरा उतरा। उसे नज़र ठीक होने का प्रमाण-पत्र मिल गया।

लौटकर रामू विवान के साथ हॉस्टल तक आया। हॉस्टल के दरवाज़े पर ही वह रुक गया। एक हल्की मुस्कान के साथ उसने विवान से हाथ मिलाया। उसकी आँखों में कृतज्ञता और पानी था। विवान की हथेली दबाकर वह चला गया। विवान का मन हुआ कि रामू से सत्यनारायण के बारे में, उसकी बहन के बारे में पूछे, पर तब तक रामू दूर जा चुका था।

रामू के जाने के दो महीने बाद विवान के दोनों सीनियर दोस्तों ने एक सुबह विवान को कैंटीन में आकर बताया कि गुल्लू कुछ दिन पहले सिंगापुर से लौटा है और वहाँ से कुछ नायाब चीज़ें लाया है जिनमें आदमी और औरत के बिल्कुल नग्न दृश्यों की एक फिल्म भी है। उन्होंने यह भी बताया कि गुल्लू के पास फिल्म देखने का इन्तज़ाम है और गुल्लू ने आज रात उन्हें घर पर बुलाया है। विवान को भी साथ लाने को कहा है। उन्होंने बताया कि तीनों फिल्म देखेंगे, सिंगापुर से लायी हुई ख़ास

जापानी शराब पिएँगे और मसालेदार कबाबों के साथ पाँच आटों की बनी रोटी खाएँगे और चले आएँगे। हॉस्टल के लड़कों की वीरान और सूखी ज़िन्दगी में ऐसी शाम एक बड़ा सुख होती थी। विवान तैयार हो गया। छह बजे गुल्लू की दुकान पर मिलने की बात तय हो गयी।

छह बजे वे तीनों गुल्लू की दुकान पर मिले। उनके लिए गुल्लू उस दिन दुकान पर देर तक रुक गया था। उन्हें दुकान से अपने ही साथ गाड़ी में बैठाकर घर ले आया। वे दोनों लड़के गुल्लू के घर पहले भी आते रहे होंगे, पर विवान पहली बार आया था।

तीन मंज़िला मकान में गुल्लू के पास सबसे ऊपर की मंज़िल थी। नीचे की दोनों मंज़िलों में उसके दोनों छोटे भाई रहते थे। वे सब घर के अन्दर की सीढ़ियों से होते हुए ऊपर पहुँचे। सीढ़ियों पर चढ़ते हुए झलक भर में भी, घर का अतुलनीय वैभव दिख रहा था। दोनों मंज़िलों के गलियारों में झूले थे। काँच के शो केस के अन्दर रंगीन मछलियाँ थीं। बेल्जियम कट ग्लास के बर्तन थे। गमलों की कतार थी जिनमें छाँह में रहनेवाले सुन्दर पत्तियों के घने क्रोटन लगे थे। सफेद संगमरमर का फ़र्श था जिस पर धूल का एक कण भी नहीं था। कमरों के दरवाज़े के बाहर बड़े फूलोंवाले पर्दे थे जो अपनी सलवटों में सिमटे हुए दरवाज़ों की चौड़ाई से तीन गुना अधिक थे। छत से लटके फानूस थे। दूसरी मंजिल पर लम्बे बालोंवाला मजबूत कुत्ता था जो सीढ़ियों की रेलिंग से बँधा था। सीढ़ियों की आहट से वह चौकन्ना होकर उठा, पर गुल्लू को देखकर कूँ-कूँ करता पंजों में सर झुकाकर बैठ गया। गुल्लू और दोनों लड़के आगे थे। विवान सबसे पीछे चल रहा था।

सीढ़ियाँ ऊपर खुली छत पर जाकर ख़त्म हो गयी थीं। छत पर एक बड़ी कैनोपी थी जिसके अन्दर झूला पड़ा था। सर्दियों की शाम के उस धुँधलके में एक दुबली-पतली लड़की उस पर बैठी झूल रही थी। उसने कदमों की आहट सुनकर सर घुमाया। गुल्लू के साथ तीन लड़कों को देखकर वह झूले से उतर गयी। सबसे पीछे खड़े विवान ने बहुत साफ़ देखा कि गुल्लू को देखते ही वह काँपने लगी थी। उसके अचानक झटके से उतर जाने से झूला आगे-पीछे हो रहा था। विवान ने झूले को देखा, उसके पीछे दीवार के साथ लगे गमलों के गेंदों को, गुलदाउदी को देखा उसके पीछे आती हुई सर्दियों के नवम्बर का आसमान देखा।

''हम लोग कुछ देर कमरे में बैठेंगे। हम सभी यहीं खाना भी खाएँगे।'' गुल्लू ने अपनी बीबी से कहा। लड़की ने नीचे देखते हुए चुपचाप सर हिला दिया।

''हमारा सब इन्तज़ाम करवा दो।'' लड़की ने फिर चुपचाप सर हिला दिया।

विवान सबसे पीछे था इसलिए लड़की को सबसे छुपकर देख सकता था। लड़की आनेवाले समय की कल्पना से काँप रही थी।

यह गुल्लू के कमरे से जुड़ी छत थी। कमरे के शीशों पर पर्दे थे। कुछ पर पर्दे हटे थे जिनसे अन्दर की रोशनी बाहर छत पर गिर रही थी। छत को पार करके वे सब गुल्लू के कमरे में आये। कमरा बड़ा था। कमरे में पलँग था, सोफे थे, सोफे के सामने दो मेज थीं। सजावट के लिए मूर्तियाँ थीं, रोशनियों के फानूस थे।

गुल्लू ने सबको सोफे पर बैठाया। बातों के टुकड़ों में धीरे-धीरे हल्कापन उतरने लगा। गुल्लू फिल्म देखने का इन्तज़ाम करने लगा। उसने एक फ्रेम पर स्क्रीन खड़ा किया। कुछ तार कहीं जोड़े। छोटा-सा प्रोजेक्टर निकाला। दो आदमी कमरे में आये। एक के हाथ की ट्रे में सोडा और बर्फ थी। दूसरे की ट्रे में हरे सलाद के साथ कुछ नमकीन के टुकड़े थे। उन दोनों आदमियों ने ट्रे का सामान सोफे के सामने की मेज पर लगा दिया। गुल्लू ने इशारा किया। वे दोनों चले गये। गुल्लू ने काँच की खिड़कियों के पर्दे खींच दिये। कमरे में अँधेरा कर दिया। एक लड़के ने गुल्लू से कहा कि वह कमरे का दरवाज़ा बन्द कर ले। कोई भी आ सकता है, उसकी पत्नी ही। इस पर गुल्लू सिर्फ़ हँसा। शराब के गिलास बनाने के बाद गुल्लू ने फिल्म चालू कर दी।

विवान भी एक कोने में बैठा था। कुछ ही क्षणों में सामने का दृश्य और आवाज़ें उसके अन्दर जुगुप्सा पैदा करने लगीं। वह सब उसकी बर्दाश्त से बाहर होने लगा। विवान उठ गया। उन सबने विवान को देखा।

''उधर'' गुल्लू ने कमरे से लगे बाथरूम की ओर इशारा किया। उसकी आँखों में शरारत थी।'' ज़रूरत पड़ती है बाथरूम की।''

''नहीं, जरा बाहर खुले में बैठूँगा।'' अपने हाथ में शराब का गिलास लिये हुए, विवान बची हुई जगह से सँभलकर निकला और कमरे के बाहर छत पर आ गया।

बाहर हल्का कुहासा उतर रहा था। पूरी छत तैरती हुई सफेदी, नीरवता और ठंडक में डूबी थी। विवान कुछ देर छत पर खड़ा रहा। उसके अन्दर का एकान्त धीरे-धीरे एक नामालूम उदासी में बदल रहा था। वैसी ही उदासी जैसी माँ के साथ जाने पर होती थी। विवान ने कुछ क्षण अपनी इस उदासी से बातें कीं, चारों ओर खुले आसमान, घरों के मद्धिम उजाले और फूलों के रंगों से बातें कीं, फिर कुछ कदम चलकर छत की मुँडेर के साथ खड़ा हो गया। उसने गिलास से कुछ घूँट लिये। गिलास को मुँडेर पर रखा फिर घूम गया। अब उसके सामने गुल्लू का कमरा था। उसके काँच पर खिंचे पर्दे थे और कमरे से मिली हुई नीचे जानेवाली सीढ़ियाँ थीं। वह चीखना चाहता था। पता नहीं क्यों, पर वह उस लड़की को बताना चाहता था कि वह उन लोगों में शामिल नहीं है। वह सीढ़ियों पर साथ ज़रूर था पर अब वह अकेला, यहाँ लरजते हुए बदन के साथ खड़ा है। उसकी कमजोर, आत्मग्लानि

से भरी रूह उसका भारी होता हुआ दुख, उसका एकान्त, उसकी उदासी का बोझ नहीं उठा पा रहे हैं। विवान के अन्दर एक गहरी हूक उठी, उस लड़की को देखने की। दुख, अकेलेपन के साथ थरथराते हुए उसके भय को देखने की, उसके साँवलेपन में साँस लेने की। विवान की सृष्टि, विवान का वज़ूद, सब विवान का साथ छोड़ने लगे। विवान ने एक गहरी साँस ली। क्या है यह? क्यों है यह?

नीचे बनते हुए खाने की गन्ध छत पर आ रही थी। तेज़ मसालों की गन्ध थी, बर्तनों के रखने की, उठाने की आवाज़ें थीं। विवान ने मुँडेर पर रखे गिलास से बची शराब को एक घूँट में पिया और गिलास को उलटा करके मुँडेर के पास जमीन पर रख दिया। वह जानता था लड़की नीचे रसोई में है। वह गन्ध के सहारे उस लड़की तक जा सकता था जैसे जानवर जाते हैं। उसी तरह नथुने सिकोड़कर, सर घुमाता हुआ, बदन झटकता विवान गन्ध को सूँघते हुए धीरे-धीरे दबे पाँव सीढ़ियों से नीचे उतर गया।

सीढ़ी के नीचे ही कुत्ता बँधा था। विवान को देखकर वह एक बार उछला फिर पहचानकर चुपचाप मुँह घुमाकर वह लेट गया। ऊपर आते समय ऊपर की दोनों मंज़िलों पर सन्नाटा मिला था। मसाले की गन्ध, दाएँ हाथ के दरवाज़े से आ रही थी। विवान उस दरवाज़े तक आया। चौखट के दरवाज़े की आड़ से थोड़ा सर अन्दर करके उसने झाँका। अन्दर वही दोनों आदमी थे जो ऊपर सामान लाये थे। गुल्लू की बीबी संगमरमर के प्लेटफार्म पर झुकी आग पर चढ़े बर्तन में कुछ देख रही थी। रसोई के अन्दर रोशनी थी, गन्ध थी, हल्की-हल्की आँच थी, धुँआ था। बर्तन में देखते हुए ही वह अचानक घूमी। दरवाज़े पर एक सर को अन्दर झाँकते देखकर वह चौंकी। एक कटा हुआ सर जैसे लटका था। निर्निमेष, अन्दर देखता हुआ। एक क्षण के लिए, लहर की तरह भय उसके चेहरे से गुजर गया। उसने हल्के अँधेरे में विवान के सर को पहचाना या शायद नहीं पहचाना। वह धीरे-धीरे चलती हुई दरवाज़े तक आयी। दरवाज़े पर आने के बाद सर के पीछे का पूरा विवान दिखा। विवान ने भी उसे अब पास से देखा। वह विवान की ही उमर की थी या शायद दो साल बड़ी। उसकी खाल पतली और पारदर्शी थी। उसका रंग साँवला था। उसक बाल कन्धों तक खुले थे। उसकी आँखों की पुतलियाँ काली थीं। उनमें पानी था। वह चलती हुई आयी थी तो विवान ने उसके खुले बालों, उसकी खाल, आँख उसकी गन्ध में एक साँवले जंगल को चलते हुए देखा था। वह हैरानी से, जिज्ञासा से,परेशानी से विवान को देख रही थी।

''मैं ऊपर था, गुल्लू के साथ।'' विवान ने धीरे-से कहा। विवान जहाँ खड़ा था वहाँ गलियारे की रोशनी के टुकड़े थे, अँधेरा था। वह पूरी रोशनी में थी। उसे विवान की उदासी, चीख और कलेजे को फाड़ती हूक दिखायी नहीं दी होगी।

विवान उसके जंगली जादू के पाश में था।

"कुछ चाहिए?" उसने पूछा। विवान ने उसकी आवाज़ सुनी। आवाज़ में भारीपन था...फुसफुसाहट और सिसकी के बीच का, जो अपने कम्पन में भी कामुकता पैदा कर रहा था।

"नहीं, मैं ऊपर नहीं बैठना चाहता, मैं आ गया।"

वह विवान की बात समझी नहीं। उसे लगा शायद विवान कहीं जाना चाहता है पर उसे पता नहीं है।

"क्या मैं कहीं और बैठ सकता हूँ?"

यह ग़लत सवाल था। पर विवान ने कर दिया था। लड़की ने इस बार ध्यान से विवान को देखा। पूरा घर खाली था, विवान कहीं भी बैठ सकता था।

"कहीं भी, जहाँ थोड़ी-सी खुली हवा हो।" विवान का चेहरा अँधेरे में था।

"ऊपर छत पर है।"

"नहीं, छत पर मैं उनसे अलग नहीं हो पाऊँगा।"

लड़की ने अपनी पूरी निगाह विवान पर टिकायी। ये निगाहें लेज़र बीम की तरह विवान की एक-एक अस्थि, मज्जा, रेशे को भेद गयीं।

लड़की दरवाज़े से बाहर आ गयी। विवान उसके पीछे था। दायें हाथ पर ही गलियारे में थोड़ा-सा चलने के बाद वह घूमी। यह एक बड़ी बालकनी थी। इस पर सर्दी की शुरुआत में खिलनेवाले बैंगनी फूलों की लताएँ चढ़ी थीं। रात में ये फूल बन्द थे पर उसकी बैंगनी कलियाँ पूरी बालकनी की दीवारों और रेलिंग से होती हुई छत पर चली गयी थीं। बालकनी में अँधेरा था। बैंगनी फूल, उसकी लताएँ उस अँधेरे को बढ़ा रहे थे। सफेद कुहासा नज़र को पार नहीं जाने दे रहा था।

"यहाँ बैठ सकते हैं, यहाँ कोई नहीं आएगा।" लड़की ने इशारा किया। वहां बिना हत्थेवाली बेंत की दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। विवान ने रेलिंग पर खड़े होकर बाहर की ताज़ी हवा में साँसें लीं, फिर एक कुर्सी पर बैठ गया। अभी तक वह हल्का-हल्का काँप रहा था। लड़की ने उसका काँपना देखा।

"आपकी तबीयत ठीक नहीं है, ऊपर ख़बर कर दूँ?"

"नहीं।" विवान ने अपनी हथेलियाँ आपस में रगड़ीं फिर दोनों को मिलाकर घुटनों के बीच में दबा लिया।

"मैं ठीक हूँ।"

"पर आप काँप रहे हैं।"

विवान कुछ नहीं बोला।

"कुछ गर्म पिएँगे आप, चिकन सूप तैयार है।" लड़की ने थोड़ा-सा झुककर पूछा।

इस तरह झुकने से उसके खुले बाल कन्धों से खिसककर नीचे गिर गये। अब बालों के बीच उसका साँवला पतला चेहरा था, कत्थई आँखें थीं।

विवान ने सर हिला दिया। वह सीधी हुई और चली गयी।

विवान की पीठ रसोई की तरफ थी। कुछ देर बाद ही, काँपते हुए विवान के पीछे से वह फिर आयी। उसके हाथ में छोटी ट्रे थी। उस पर दो बोल रखे थे जिनसे भाप उठ रही थी। वह आगे बढ़कर विवान के सामने आ गयी। उसने ट्रे बढ़ायी। विवान ने एक बोल उठा लिया।

''दूसरा मैं पिऊँगी।'' उसने कहा। दूसरी कुर्सी पर वह बैठ गयी। ट्रे नीचे रखकर उसने बोल हाथ में ले लिया। सूप की गर्म भाप में विवान ने अपना चेहरा धँसा दिया। उसकी काँपती खाल को, उसकी उदासी को, सीने की हूक को राहत मिली। सफेद कुहासे में वह सफेद भाप तिरोहित हो रही थी। उसकी गन्ध उसे कुहासे की सफेदी से अलग करती थी, जिस तरह लड़की की गन्ध, उसे बैंगनी फूलों के, बॉलकनी के अँधेरे से अलग करती थी। भाप में चेहरा धँसाए, भाप के बीच से विवान ने लड़की को देखा। उसके चेहरे पर अब कोई भय नहीं था। उसकी काली आँखों का पानी शान्त था। माथे के चारों ओर बिखरे बाल उसके दुबलेपन और उसकी उभरी हड्डियों को छुपाए थे।

''आप क्यों चले आये?'' उसने सीधे विवान की आँखों में देखा।

विवान कुछ नहीं बोला। उसे खुद नहीं पता था। उसने सोचना चाहा कि क्या था जिसकी वजह से वह उठ गया। उस कमरे में पैदा हो रही जुगुप्सा थी, या फिर उस लड़की को देखने की गहरी तड़प थी, या विवान का अपना एकान्त था, दुख या उदासी थी, बेचैनी थी, वीरानी थी जो ऐसे ही अचानक उसके अन्दर बड़ी होने लगती थी। विवान लड़की को यह सब नहीं बता सकता था।

''घर में कोई नहीं है?'' विवान ने यूँ ही बातें करने के लिए पूछा।

''नहीं, सब नाइट शो गये हैं। रात को लौटेंगे।''

वह धीरे-धीरे चम्मच से सूप पी रही थी। सूप पीते हुए वह चुपचाप विवान को देख रही थी।

''क्या वे लोग मुझे ढूँढ़ेंगे?'' विवान ने फिर ग़लत सवाल किया। लड़की ने हैरानी से विवान को देखा।

''डर लग रहा है?'' लड़की के होंठ थोड़ा फैले। पहली बार विवान ने उसे हँसते हुए देखा। ''कोई नहीं आएगा। वे अब नीचे उतरने के काबिल नहीं बचे होंगे। इन दोनों नौकरों को भी यह सिखाया गया है। वे भी नहीं आएँगे। वैसे भी हम अँधेरे में हैं। मुझे कोई भी आनेवाला दूर से ही दिख जाएगा। वह रोशनी में होगा। फिर कोई आया भी, तो रोशनी से एकदम अँधेरे में आने पर उसे देखने में थोड़ा समय

लगता है। फिर यहाँ बैंगनी फूलों का भी अँधेरा है। मेरे रंग का, मेरे बालों का भी अँधेरा है। कोई कुछ नहीं समझेगा कि किसमें क्या मिला है।'' वह अँधेरे उजाले को भाषा के जालों में बुन रही थी। विवान कुछ नहीं बोला। चुपचाप उन अलग-अलग अँधेरों को पहचानने की कोशिश की उसने। लड़की का अँधेरा जंगल का अँधेरा था। उसने पहली बार गन्ध भरा साँवला जंगल देखा था। विवान सर झुकाकर सूप पीने लगा।

''आप यहीं रहते हैं?'' लड़की ने पूछा।

''नहीं, जहाँ से काली नदी मुड़ती है उस कस्बे में। वहाँ मेरा घर है।''

''आपका रंग बहुत अलग है। मैंने आपको जब ऊपर सीढ़ियों पर देखा तो हैरान हो गयी थी। मैंने सीढ़ियों पर ऐसा रंग पहली बार देखा था।''

''हाँ'' विवान धीरे-से हँसा, ''मेरे पिता अँग्रेज हैं...माँ हिन्दू।''

''इसीलिए, पर मेरा रंग देखिए कितना गाढ़ा है, बिल्कुल जैसे काई होती है।''

विवान उसके रंग को देख चुका था। विवान ने फिर देखा। इस बार लड़की ने विवान के देखने को देखा।

''कभी छूकर देखी है?''

''क्या?''

''काई?''

''नहीं।'' विवान ने सर हिलाया।

''देखिए।'' उसने अपनी हथेली आगे बढ़ा दी। विवान ने उसकी फैली हथेली को देखा। उसकी उँगलियाँ पतली ओर लम्बी थीं। नाखून छोटे थे। खाल में धँसे हुए। उंगलियों के बीच के जोड़ उभरे हुए थे। विवान ने उसकी उँगलियों को अपनी हथेली में पकड़ लिया। वे मुलायम थीं, चिकनी थीं, वे काँप रही थीं। वे गर्म थीं, जीवित थीं, कुछ बोल रही थीं। विवान ने अपनी हथेली पर उसकी उँगलियों का कसाव महसूस किया। उसने विवान की हथेली अपनी उँगलियों में दबा ली। विवान ने उसे देखा। वह एकटक विवान को देख रही थी। धीरे-धीरे मुस्कराती हुई। नहीं, काई नहीं, जंगल। हरहराता हुआ, सरगोशियाँ करता हुआ, जादू फेंकता हुआ, डसता हुआ हत्यारा जंगल, विवान कहना चाहता था, पर विवान ने कुछ नहीं कहा। विवान की देह हल्की-सी काँपी, विवान की देह काँपती रही।

यह रहस्य क्या था, सृष्टि क्या थी, यह जादू क्या था? यह सब कहाँ से जन्म ले रहा था? कहाँ जा रहा था? किसकी उँगलियों की डोरों से बँधा सब नाच रहा था? काँपती देहवाले विवान ने बल्लीमारान से उठती हुई आवाज़ सुनी।

जबकि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
फिर यह हंगाम: अय ख़ुदा क्या है

यह परी चेहर: लोग कैसे हैं
ग़मज:-ओ-अिश्व-ओ-अदा क्या है।

शिकन-ए-ज़ुल्फ़-ए-अम्बरी क्यों हैं
निगह-ए-चश्म-ए-सुर्म: सा क्या है

सब्ज:-ओ-गुल कहाँ से आये हैं
अब्र क्या चीज़ है, हवा क्या है

कुछ हल्की-सी आवाज़ें हुई। ''शायद ओस गिरी'', विवान फुसफुसाया।

''नहीं, ओस का गिरना सुनायी नहीं देता।'' लड़की के चेहरे पर अब एक नया भाव था। हल्की-हल्की हँसी थी। मैदान में उतरनेवाले, गहरे आत्मविश्वास से भरे खिलाड़ी की तरह। उसने अपने हाथ का बोल नीचे जमीन पर रख दिया। वह खड़ी हो गयी। दो कदम आगे बढ़कर वह विवान के बिल्कुल पास आ गयी। विवान के हाथ का बोल भी उसने नीचे रख दिया। वह एक कदम और बढ़ी। अब वह बिल्कुल पास थी। उसने विवान का सर अपने अन्दर अपने पेट से सटा लिया। विवान ने उसके पेट की नंगी, मुलायम खाल की थिरकन को, गर्माहट को महसूस किया। उसने अपने दोनों हाथों से विवान का सर पकड़कर अपने पेट में धँसा लिया। विवान ने धीरे-से खाल का वह टुकड़ा अपने दाँतों में दबा लिया। विवान उसे चूसने लगा। विवान का सर और धँसाते हुए वह विवान के बालों में अपनी उँगलियाँ घुमाने लगी, फिर एक झटके से उसने विवान के बाल पकड़कर उसका सर ऊपर उठाया। विवान ने उसको देखा। उसके खुले बाल नीचे गिर गये थे। उनके बीच उसके चेहरे की खाल पर एक चमक थी, धारदार पैनापन था। एक हँसी थी। झुककर उसने विवान के होंठों को अपने होंठों में दबा लिया। फिर उसकी तरह उसके होंठ दबाए हुए वह विवान की गोद में बैठ गयी। विवान के दोनों तरफ उसका एक-एक पैर था। अब उसकी छाती विवान के सर के सामने थी। उसने विवान का सर अपनी छातियों से चिपका लिया। विवान को अब कुछ नहीं दिख रहा था। दो मुलायम, गर्म गोश्त के टुकड़े थे जिनके बीच विवान का दम घुटने लगा। इसी मुद्रा में धीरे-धीरे काँपती हुई वह विवान के अन्दर उतरने लगी। उसकी आँखें सामने रसोई के काँच के पार उन दोनों आदमियों को मुर्गा बनाते हुए देख रही थीं। उनमें डालनेवाले मसालों को, उनकी मात्रा को, उसकी आँच को, मुर्गे को पकते हुए। विवान की गोद में बैठी वह धीरे-धीरे हिल रही थी। उसकी आँखें चौकन्नी होकर गलियारे के पार,

किसी भी आनेवाले से पहले उसकी परछाईं को देख रही थीं। विवान की हुंकार...फुसफुसाहटें कुछ देर उछलीं फिर शान्त हो गयीं। वह एक क्षण निश्चेष्ट रही फिर एक लम्बी साँस लेकर उठ गयी। थोड़ा पीछे हटकर उसने अपने बाल ठीक किये, कपड़े ठीक किये। विवान ने उसे देखा। लड़की की आँखों में गहरी शान्ति थी, सन्तोष था, ठंडापन और अपरिचय था। उसने एक बार विवान को देखा फिर चुपचाप अन्दर चली गयी।

बाद के दिनों में रिमाडी के जंगलों में विवान ने जब किसी ऐसे आदमी की हत्या की जिससे वह घृणा करता था, तो उसे बिल्कुल अलग तरह की शान्ति का अनुभव होता था। विवान तब अपनी आँखें नहीं देख सकता था, पर उसे हमेशा लगा था कि उसकी आँखें बिल्कुल उस रात गुल्लू की बीबी जैसी ही होंगी।

विवान जब ऊपर आया तो कमरे का दृश्य बदल चुका था। वे सब देखी हुई, अविश्वसनीय लगती, अकल्पनीय मुद्राओं पर बहस कर रहे थे। गुल्लू अधिकार और सर्वज्ञता के साथ उन्हें उन मुद्राओं की विधियाँ समझा रहा था। इन्हीं विधियों के बीच गुल्लू गर्व से सिंगापुर में चीनी लड़कियों के साथ अपने कामशास्त्रीय अनुभव भी बता रहा था। उसने अपनी कुछ तस्वीरें भी उतरवायी थीं जिन्हें दिखा रहा था।

विवान के कमरे में आने पर सबने सर उठाकर एक बार उसे देखा फिर सर झुकाकर गुल्लू की तस्वीरें देखने लगे। किसी ने विवान से नहीं पूछा कि वह कहाँ था। विवान कमरे के साथ बने बाथरूम के अन्दर चला गया। वहाँ खूँटी पर कपड़े टँगे थे। एक खूँटी पर लड़की के कपड़े भी थे। विवान ने पास जाकर उन कपड़ों को छुआ। उन्हें सूँघा। उसे कपड़ों से लड़की की खाल की गन्ध आयी। उसकी गर्माहट भी महसूस हुई। विवान ने मुँह पर पानी के छींटे मारे फिर बाँह से चेहरा पोंछकर शीशे में अपना चेहरा देखा। विवान जैसा था वह शीशा वैसा ही दिखा रहा था। विवान का मन हुआ कि उसके पास इस समय लेंस होता तो वह अपना चेहरा ज़रूर देखता। उसकी खाल के एक-एक रन्ध्र के अन्दर वह साँवला जंगल बैठा था। लेन्स में विवान उसे लहराते हुए, फुसफुसाते हुए, गन्ध उलीचते, धीरे-धीरे अपनी आत्मा में धँसते हुए देखता। जादूगर, हत्यारे जंगल की हँसी, उसकी उभरी हड्डियों, नर्म होठों के टुकड़ों को देखता। पर आईने में विवान वैसा ही था जैसा सबको दिख रहा था। विवान कमरे में आ गया। वे सब हँस रहे थे। पहले की तरह वह एक कोने में चुपचाप बैठ गया। गुल्लू गर्व, श्रेष्ठता और अपनी कामुक उपलब्धियों पर आत्ममुग्ध था। वह जोर से हँस रहा था। गुल्लू ने सबको फिर एक तमाशा देखने के लिए तैयार

किया। वह सिंगापुर से एक उपकरण और लाया था। उसने उसको फोन से जोड़ा। अब उधर से बोलनेवाले की आवाज़ वे सब सुन सकते थे। गुल्लू ने एक बार घड़ी देखी। रात के दस बज रहे थे। उसने एक नम्बर मिलाया। उधर से किसी आदमी की आवाज़ आयी।

''फोन दे'' गुल्लू हिकारत के साथ आवाज़ को झटका देकर बोला।

उधर कुछ देर शान्ति रही फिर कुछ देर बाद एक औरत की आवाज़ आयी।

''क्या कर रही हो?'' गुल्लू ने पूछा।

''क्यों?''

''गया वह?''

''हाँ'' कुछ क्षण चुप रहने के बाद औरत बोली।

''लेट जाओ'' गुल्लू ने कहा। गुल्लू भी अब फोन लेकर पलँग पर लेट गया। वे दोनों लड़के स्पीकर के पास बैठे थे। धीरे-धीरे गुल्लू ने औरत से कामुक बातें शुरू कीं। उसी भाषा में, उन्हीं दृश्यों को साकार करती हुई जो उसने फिल्म में देखी थीं। औरत जवाब देने लगी। उसी भाषा, उसी शब्दावली में। वे दोनों लड़के हैरत से सुन रहे थे। विवान भी सुन रहा था। गुल्लू अपनी मर्दानगी को अभिव्यक्त करनेवाले जुमले दोहरा रहा था। वह औरत उसे उकसाती हुई, सहलाती हुई जवाब दे रही थी। विवान को पलंग पर लेटा गुल्लू बहुत दयनीय लगा। दुनिया का सबसे दयनीय आदमी। विवान का दम फिर घुटने लगा। कमरे में धीरे-धीरे एक हिंसक वातावरण फैल रहा था। विवान उठा और फिर कमरे के बाहर निकल आया।

विवान छत के झूले पर बैठ गया। ऊपर आते हुए विवान रसोई के सामने से निकला था। एक क्षण दरवाज़े पर रुका था वह। इस बार छुपकर, अँधेरे में, केवल सर निकालकर नहीं देखा उसने। वह दरवाज़े पर पूरा खड़ा था। लड़की ने बस एक बार उसे देखा फिर सर झुकाकर काम करने लगी थी। उससे पूरी तरह असम्पृक्त, असम्बद्ध। झूले पर बैठे हुए विवान के अन्दर फिर तड़प उठी। आवाज़ नहीं थी पर ओस अब गिर रही थी। कुहासे में हल्की-सी नमी आ गयी थी। उस साँवली, गर्म, गीली काया को फिर देखने की, छूने की तड़प विवान को चीरने लगी। विवान के अन्दर एक लहूलुहान जगत था। कुछ ही देर पहले यह जगत कहीं नहीं था। कुछ ही देर पहले इसने जन्म लिया था। कुछ ही देर पहले यह विवान की पूरी चेतना को ढक चुका था। इस जगत के पहले विवान के अन्दर रहनेवाले जगत में आश्वस्ति देती सुरक्षा थी, निश्चिन्तता थी, माँ थी, परित्यक्त ईश्वर था, ग़ालिब था, सत्यनारायण की लड़की थी, हॉस्टल की गर्म बहसें थीं, स्वप्न थे, उदासी थी, आग थी पर तड़प नहीं थी। पर वे सब जो पहले थे अब लहूलुहान, क्षतविक्षत पड़े थे। अब जो जगत था वह यातना की एक चीख थी जो धीरे-धीरे विवान के अन्दर धँस रही थी। दुर्बल

काया, उभरी हड्डियोंवाली, भय से काँपती दिखनेवाली लड़की का प्रवेश हुआ और एक क्षण में विवान डगलस का जगत बदल गया। क्या जीवन में सब कुछ इतना अस्थिर, इतना अविश्वसनीय, इतना अनियन्त्रित है? क्या जीवन में किसी भी क्षण का, बात के होने का कोई तर्क है? क्या किसी स्थिति का कोई औचित्य है? क्या जीवन के किसी भी खंड का कोई निश्चित सुनियोजित आरम्भ, मध्य और अन्त होता है? क्या यह सब इस दुर्बल, काँपती और अपने हाथों से हर क्षण छूटती हुई काया का मायालोक है या फिर एक कठपुतली की तरह नचाती भवितव्यता है जो अपठनीय, दुर्बोध और दुर्दम्य है। विवान ने दोनों घुटने मोड़कर झूले की गद्दी पर रख लिये। घुटनों को अपने दोनों हाथों से बाँधकर उन पर अपनी ठोड़ी टिका दी। ओस में वह नहीं था, पर भीग रहा था। आवेग में, संशय में, साँवले जंगल में भीग रहा था।

छत पर अचानक मसालों की तेज़ गन्ध आयी। वे दोनों आदमी सीढ़ियों से खाना लेकर ऊपर आ रहे थे। विवान ने कमरे के अन्दर से आती आवाज़ों में अपना नाम सुना। विवान कुछ नहीं बोला। कुछ ही क्षणों बाद कमरे में सब सामान रखकर वे दोनों वापस नीचे चले गये। कुछ देर बाद विवान ने अपनी पीठ पर किसी का हाथ महसूस किया। विवान ने सर घुमाकर देखा। गुल्लू उसके कन्धे पर झुका हुआ खड़ा था।

"क्या हुआ?" उसने विवान के कान में फुसफुसाकर पूछा।

"कुछ नहीं, बस यूँ ही।"

"तबीयत ठीक है?"

"हाँ।"

"खाना यहाँ भेज दूँ?"

"नहीं," विवान ने कन्धे पर रखा गुल्लू का हाथ थपथपाया, "मैं खाऊँगा नहीं।"

"कुछ और?"

"नहीं", वह मुस्कराया, "बस यूँ ही।"

गुल्लू अन्दर चला गया। विवान गुल्लू को कमरे के अन्दर जाते देखता रहा। कुछ क्षण बाद वह फिर सीढ़ियों से उतरकर नीचे आया। फिर रसोई की चौखट पर खड़ा हो गया। इस बार फिर उसने फिर अपने को दरवाज़े के पीछे छुपाते हुए केवल सर अन्दर किया। वहाँ वही दोनों आदमी थे। गुल्लू की बीबी नहीं थी। विवान अब पूरा सामने आ गया। उन दोनों ने एक साथ विवान को देखा।

"जी", एक आदमी विवान के पास आया।

"नहीं, मेमसाहब से काम था।"

''वह दूसरे कमरे में चली गयीं, क्या बुलाऊँ?''

''नहीं'', विवान ने कहा फिर दरवाज़े से हट गया। लौटकर सीढ़ियों के पास विवान खड़ा हो गया। सामने एक कमरे में पर्दे के पीछे किसी की छाया घूम रही थी। विवान ने दोनों ओर देखा। दोनों तरफ खाली गलियारे थे। कुत्ता चुपचाप लेटा हुआ था। विवान उस कमरे के दरवाज़े पर आया। एक क्षण खड़ा रहा फिर कोने से पर्दा हटाया उसने। विवान ने उसी तरह केवल सर अन्दर किया जैसे रसोई में किया था। वह कमरे के अन्दर घूम रही थी। पर्दे से विवान को झाँकते देखकर रुक गयी। विवान अन्दर आ गया। वह चुपचाप विवान को देखती रही। उसकी काली आँखों में गीलापन था। गीलेपन में एक दर्प भी था। फुफकारता हुआ, तना हुआ, जो उसके चेहरे पर सबसे ऊपर था। विवान कुछ नहीं बोला। विवान को नहीं पता था कि वह क्या चाहता है? वह क्यों आया है?

''सिर्फ़ एक बार'', अचानक विवान ने अपनी गिड़गिड़ाती हुई आवाज़ सुनी। लड़की ने विवान को गहरी निगाह से देखा। विवान के होंठ सूख रहे थे। उसकी आँखें गीली थीं। वह गहरी साँसें ले रहा था। उसकी निस्तेज, पीली पड़ी हुई काया काँप रही थी। विवान उसके पास आया। उसके चेहरे की कातरता को, याचना को, दर्द से फड़फड़ाती उसकी रूह को, उसके ताप को, बेचैनी को, सबको लड़की ने देखा। उसके चेहरे पर तने हुए दर्प ने देखा।

''सिर्फ़ एक बार'', विवान बुदबुदा रहा था। उसके होंठों के कोनों से लार गिर रही थी। उसकी साँसें गर्म भाप की तरह उसके नथुनों से निकल रही रही थीं। आँखें लाल थीं। बदन तप रहा था। लड़की कुछ नहीं बोली। विवान धीरे-से झुका। लड़की चुपचाप खड़ी रही। विवान ने लड़की के साँवले होंठ पर अपने गर्म होंठ रख दिये। कुछ क्षण अपने होंठ उस पर रहने दिये फिर पीछे हट गया।

''अब कभी मत आना।'' लड़की धीरे-से बोली, ''और अब जाओ।''

विवान कमरे से चला आया।

ऊपर आकर विवान छत की मुँडेर पर कोहनी टिकाए कुछ देर खड़ा सामने देखता रहा। कुछ साँसें लीं उसने फिर कमरे में आ गया। वह अब फ़ौरन वहाँ से जाना चाहता था। वे सब अभी तक खाना खा रहे थे। खाने के साथ बची हुई शराब पी रहे थे।

''हमें चलना चाहिए अब।'' विवान ने कहा।

''हाँ'', विवान के एक दोस्त ने कहा, ''चलते हैं बस।''

कुछ देर बाद खाना ख़त्म करके वे सब उठ गये। बातें करते, जोर से बोलते, सीढ़ियों से उतरने लगे। कुछ हुआ और चेन में बँधा कुत्ता तेज़ी से भौंकते हुए एक लड़के पर झपटा। वह लड़का हड़बड़ाकर पीछे हटा और सीढ़ी पर गिर पड़ा।

गुल्लू रुक गया।

"ऐ", कुत्ते को डाँटा उसने, "शटप।"

कुत्ते पर डाँट का कोई असर नहीं हुआ। वह भयानक तरीके से उछलता हुआ भौंक रहा था। उसके दाँत बाहर निकल आये थे। जबड़े की खाल अन्दर चली गयी थी। चेन तुड़ाने के लिए वह वहशत से कूद रहा था। वह लड़का सीढ़ियों से उठकर हड़बड़ाया हुआ दीवार से चिपका, डर से फटी आँखें लिए कुत्ते को देख रहा था। उसने कुछ क्षण बाद गुल्लू को हिकारत से देखा फिर बोला।

"क्या है यार यह? इसीलिए लाये थे?"

गुल्लू के लिए इतना बहुत था। गुल्लू ने कुत्ते को एक लात मारी। कुत्ता लात खाकर सीढ़ी में दुबक गया।

गुल्लू ने उसकी चेन खोलकर अपने हाथ में पकड़ ली। चेन खुलते ही कुत्ता फिर उछलकर भौंकने लगा। गुल्लू उसे चेन के साथ सीढ़ियों पर घसीटता हुआ नीचे तक ले आया। उसके पीछे दोनों लड़के और सबसे पीछे विवान था। कुत्ता अनवरत भौंक रहा था। वे दोनों नौकर हैरानी से सीढ़ी पर घिसटते हुए कुत्ते को देख रहे थे।

नशे में धुत गुल्लू कुत्ते को लातों से मारता हुआ बाहर दरवाज़े पर लाया। दरवाज़े के सलाखों से उसने कुत्ते की चेन बाँध दी। कुत्ता चुप नहीं हो रहा था। गुल्लू ने उसे एक बार देखा फिर अचानक दौड़ता हुआ घर के अन्दर चला गया। उसी तरह दौड़ता हुआ वह लौटा तो उसके हाथ में रिवाल्वर था।

"मार डालूँगा साले आज तुझे।" गुल्लू हाँफता हुआ बोल रहा था। उसने कुत्ते की तरफ रिवाल्वर तान दी। विवान का एक दोस्त गुल्लू से लिपट गया।

"नहीं, क्या कर रहा है यार।"

गुल्लू ने एक झटके से उसे अलग हटा दिया। तब तक दूसरा लड़का भी स्थिति की गम्भीरता समझ गया। वे दोनों गुल्लू से लिपट गये।

"जाने दे यार, जानवर है।"

"नहीं," गुल्लू चीख रहा था, "साला तुम्हारे ऊपर भौंका, मेरे होते हुए, मेरे सामने भौंका। मेरे मना करने पर भी, मेरे दोस्तों पर भौंका।" गुल्लू उन दोनों को ढकेल रहा था। वे दोनों मिलकर भी गुल्लू के दैत्याकार शरीर को सँभाल नहीं पा रहे थे।

आधी रात हो रही थी। सड़क पर तेज़ शोर हो रहा था। विवान चुपचाप घर की चहारदीवारी से सटा, ठंड से काँपता हुआ सब देख रहा था।

तभी एक बड़ी गाड़ी दरवाज़े पर आयी। गाड़ी से दो लड़के और दो औरतें उतरीं। एक बच्चा भी था। उन्होंने घर के दरवाज़े पर यह पूरा तमाशा कुछ क्षण हैरानी से देखा, फिर वे सब तेज़ी से आगे बढ़े। उन्हें देखकर कुत्ता चुप हो गया। सर

और बदन हिलाता हुआ ज़मीन पर लोटने लगा। विवान ने देखा। उन दोनों लड़कों की शक्ल गुल्लू से मिल रही थी। वे दोनों गुल्लू के भाई और उनकी पत्नियाँ थीं।

''क्या है यह?'' एक भाई ने दरवाज़े की आड़ में दुबके, डर से काँपते चौकीदार से पूछा। जल्दी-जल्दी उसने पूरा किस्सा बताया।

''क्या पागलपन है।'' वह भाई गुल्लू के पास आया। विवान के दोनों दोस्त अब गुल्लू को छोड़कर अलग हट गये थे।

''मैं साले को आज ज़िन्दा नहीं छोड़ूँगा, मेरे दोस्तों पर भौंका।'' गुल्लू ने फिर रिवाल्वर तानी।

अब एक लड़की आगे आयी। उसने कुत्ते की चेन खोलकर चेन अपने हाथ में पकड़ ली। गहरी, बहुत गहरी घृणा से उसने गुल्लू के दोनों दोस्तों को देखा, दीवार से चिपके विवान को देखा, फिर कुत्ते को लेकर अन्दर चली गयी। वे सब भी उसके पीछे घर में चले गये।

बाहर अँधेरे में सड़क पर वे सब चुपचाप खड़े थे। कुछ देर खड़े रहे फिर रिवाल्वर जेब में रखकर गुल्लू अपनी गाड़ी में बैठ गया। दोनों दोस्तों के साथ विवान भी बैठ गया। कुछ दूर पर ही हॉस्टल था। गुल्लू ने हॉस्टल के गेट पर गाड़ी रोक दी। वे तीनों गाड़ी से उतर गये। बिना कुछ बोले गुल्लू गाड़ी घुमाकर चला गया। वे तीनों भी चुपचाप हॉस्टल का दरवाज़ा बन्द कर अन्दर चले गये।

रिमाडी के जंगलों के आख़िरी दिनों में, जब विवान ने पेड़ से बाँधकर एक हँसते हुए अन्धे को गोली मारी थी, उसके बाद से उसे हमेशा लगता रहा कि उसे पता नहीं चला कि कब वह एक दूसरे गुल्लू में बदल गया था।

''जिजीविषा के सूत्र संघर्ष में होते हैं...कोई भी, कैसा भी संघर्ष। जैसे मकड़ी अपने अन्दर से ही अपने जाल के तार को पैदा करती है, वैसे ही संघर्ष अपने अन्दर से ही जिजीविषा को पैदा करते हैं। जितना बड़ा संघर्ष, उतनी गहरी जिजीविषा जन्म लेती है। जितना रक्तमय संघर्ष उतनी ही चमकदार जिजीविषा जन्म लेती है। हमारा सच यही है। हमने इस सच को किसी किताब से, किसी प्रार्थना से, किसी गड़े हुए शिलालेख से नहीं उठाया है। हमने इसे जीवित इनसानों की दर्द से फटती हुई नसों और दुत्कारी जाती हुई आत्माओं की फड़फड़ाती चीखों से उठाया है। हम जब हत्याएँ करते हैं, तो वास्तव में हम मनुष्य बने रहने के उस सबसे ज़रूरी संघर्ष को करते हैं जो जन्म से हमारा निर्विवाद अधिकार है और जिससे हमें मृत्यु तक वंचित रखा जाता है। हमें यह अधिकार अपने समय, अपने समाज, अपनी राजनीति के हर ढाँचे के विरुद्ध चलनेवाले अथक युद्ध से ही मिलेगा और जो निश्चित रूप से

रक्तरंजित होगा।''

1956 के आख़िरी दिनों की रात थी। वे सात लोग थे। रात का खाना ख़त्म हो चुकने के बाद हॉस्टल के डाइनिंग हॉल के एक कोने की मेज के साथ लगी कुर्सियों पर वे बैठे थे। दूसरे सब लड़के खाकर जा चुके थे। हॉल का दरवाज़ा बन्द था। हॉल की रोशनियाँ भी बन्द थीं सिवाय अन्दर रसोईघर के बल्ब के। उनकी मेज के हिस्से पर उसी रोशनी के टुकड़े थे जिनमें उनके चेहरे, उनके कपड़े, उनकी बेचैनी, उदासियाँ और सिगरेट चमक रही थीं। वे धीरे-धीरे फुसफुसाते हुए बोल रहे थे। जो बोल रहे थे उनमें कुछ ऐसे थे जो अपनी बात मजबूती से कहने के लिए जबड़े भींच लेते थे। इससे उनका चेहरा कठोर हो जाता था। आँखें चमकने लगती थीं। वे मुट्ठी बन्द करके मेज पर धीरे-धीरे पटकते। कुछ सुन रहे थे। जो सुन रहे थे उनके चेहरों पर कच्ची अबोधता थी, आँखों में चमक थी। वे बोलनेवालों में से किसी को बीच में रोककर कभी कुछ पूछ लेते। जब वे कुछ पूछते तब वे तेज़ी से आगे झुककर गर्म साँस छोड़ते थे। उन सात में से पाँच सिगरेट पी रहे थे। जो दो सिगरेट नहीं पी रहे थे उनमें विवान डगलस भी था।

उन सात में से दो दूसरे कॉलेज से आये थे। उन सातों के बीच बाबू नाम का लड़का उनका नेता था। उसकी काले घुँघराले बालोंवाली दाढ़ी थी जो तेज़ी से बोलने पर थोड़ी हिलने लगती थी। दाढ़ी में उसका चेहरा छुपा था। सर पर एक कैप थी जिसमें उसकी आँखें छुपी थीं। दाढ़ी और कैप की आड़ में, अँधेरे और धुएँ के बीच उसका चेहरा बहुत साफ़ नहीं दिख रहा था। कभी-कभी वो थोड़ा झुककर बोलता तो रोशनी में उसका चेहरा आ जाता। तब उसके गालों के गडढों, उसकी जबड़े की ऊपरी हड्डियों और चौड़ी नाकवाली उसकी शक्ल दिख जाती। उसकी उमर अट्ठाइस साल की थी। तीन लड़के उसके साथ बाहर से आये थे, दो दूसरे कॉलेज के थे, एक बाबू खुद था और एक विवान डगलस था। बाबू और उसके साथ के तीनों लड़कों के कपड़े बिल्कुल साधारण थे। पाँवों में रबर की चप्पलें थीं। सर्दी से बचने के लिए वे गहरे रंग के कोट पहने थे जो कई सर्दियों से नहीं धुले थे। मेज पर हिलती हुई उनकी परछाइयाँ भी सख़्त और खुरदुरी थीं। उनके हाथों में बारूद की, मिट्टी की, पसीने की, गन्ध थी।

विवान और दोनों लड़कों को एक ही सम्पर्क सूत्र से यहाँ इकट्ठा किया गया था। विवान मेज की आख़िरी कुर्सी पर बैठा था। वह चुपचाप बाबू को बोलते सुन रहा था। बाबू की घूमती हुई आवाज़, घूमती हुई नज़र, विवान पर देर तक रुकी रहती थी।

उन्होंने भी विवान को सुना था। कमरों में लड़कों के बीच होनेवाली बहसों के टुकड़े रिमाडी के जंगलों तक भी पहुँचते थे। उन टुकड़ों को ध्यान से सुनकर वे

बोलनेवालों के बीच से अपने लिए इच्छित लड़के का चुनाव करते थे। उसकी गतिविधियों को, विचारों को, टटोलते रहते थे। विवान को पता भी नहीं चला था कि उसकी बातें, जिनमें अक्सर एक धुँधलायी हुई ऊब, या खुरंडी बेचैनी या नकार की उत्तेजना रहती थी, वह धीरे-धीरे रिमाडी के जंगलों में भी पहुँच रही थीं। इतिहास, इसकी अवधारणाएँ, इसके महानायक, इसकी छुपी प्रवृत्तियाँ, इसके प्रभाव, या फिर आज़ादी के बाद का समाज, उसके राजनैतिक ढाँचे के बीच मनुष्य की, स्वयं विवान की उपस्थिति, विवान की बहसों में होती थी जिनमें विवान हमेशा, आख़िरी मनुष्य के पक्ष में अनायास ही, तर्कविहीन आस्था के साथ खड़ा दिखता था। जो कुछ भी चारों ओर है उसमें कुछ बहुत ग़लत है जो हर सूरत में बदलना चाहिए, पर वह क्या है यह विवान साफ़ तरीके से नहीं जानता था। यह सब भी, विवान के दुख, उदासी, स्मृतियों और आवेगों के साथ मिला-जुला उसके अन्दर रहता था।

रिमाडी के जंगल की एक गुफा के अँधेरों में विवान और दूसरे कॉलेज के दो लड़कों को चुना गया। एक गुरिल्ले की विचारधारा निर्मित करने, विकसित करने, दूसरों के बीच पहुँचाने और सशस्त्र संघर्ष में कूदने के लिए। ये अभी कच्ची मिट्टी के ढाँचे थे, पर उन्हें ऐसी ही रातों में, लगातार धीरे-धीरे गूँथते रहने से, मनचाही आकृति देते हुए एक बेहद मजबूत और खूँखार गुरिल्ले में ढाला जा सकता था। बीच के सूत्र इन मुलाकातों को दोस्ताना माहौल से शुरू करते थे। बाबू इसे फिर एक मुकम्मल शक्ल देता था। हॉस्टल की कैंटीन की यह रात विवान की उन चारों से पहली मुलाकात थी। बाबू सिगरेट का धुँआ फेंकते हुए विश्वास और मजबूती के साथ बेहद प्रभावशाली ढंग से धीरे-धीरे बोल रहा था।

''मनुष्य की प्रगति का इतिहास, वास्तव में युद्धों का, रक्त का इतिहास है। वे मूर्ख हैं या कृतघ्न या फिर पाखंडी, जो युद्धों का विरोध करते हैं। दुनिया के लड़े गये हर बड़े युद्ध में सिर्फ़ तलवारें ही आपस में नहीं मिलतीं, दो समाज, दो धर्म, दो विचार, दो अलग-अलग मनुष्य भी मिलते हैं। इनमें जो अविकसित होता है, जो कमज़ोर होता है वह परास्त होता है। जीतनेवाले के सम्पर्क में रहते हुए फिर वह अपना विकास करता है। अपने विजेता से उसकी चेतना, इतिहास, उसके समाज से उसका श्रेष्ठ और प्रगतिशील लेते हुए। यह समझना कि शान्ति, प्रेम और सहिष्णुता से प्रगति सम्भव है, बेहतर मनुष्य का बनना सम्भव है, जो वंचित हैं उनको उनके अधिकार मिलना सम्भव है, यह पाखंड है। कोई किसी को ऐसे ही कुछ नहीं देता। अपने मन से रक्त का भय निकाल दो। युद्ध अपराध है, असामाजिक है, अमानवीय है यह निकाल दो। याद रखो, हर युद्ध ने कोई ईश्वर पैदा किया है या फिर वह बड़ा आदमी, जिसने मनुष्यों की ज़िन्दगी बदल दीं। ध्यान रखो, युद्ध सबका पिता है। कुछ को वह मनुष्य बनाता है, कुछ को देवता। युद्ध ही अन्तिम न्याय करता है। युद्ध

ही अन्तिम सत्य तय करता है। युद्ध से होता हुआ ही सब कुछ अस्तित्व में आता है और नष्ट भी होता है। वंचितों के पक्ष में लड़े गये युद्ध के, रक्त के, हत्याओं के समर्थन में न हिलनेवाली प्रतिबद्धता ही, तुम्हें कुछ बदल सकने की ताकत देगी।'' बाबू चुप हो गया। मेज पर सन्नाटा था।

बाबू का छोड़ा हुआ धुँआ, छोड़ी हुई आवाज़, थोड़ी दूर तक गयी। उसकी आँख फिर विवान पर रुकी।

''मैंने सुना है ग़ालिब तुम्हारा पसन्दीदा शायर है?'' उसने विवान से पूछा।

विवान कुछ नहीं बोला।

''पर हमारे काम का नहीं है क्योंकि उसमें घृणा नहीं है। गहरी उदासी है या फिर निराशा है। घृणा...किसी से भी, कैसी भी घृणा हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। तुम बता सकते हो, तुम्हें अपनी घृणा का कौन-सा क्षण याद है?'' बाबू ने पूछा।

''क्यों?'' विवान मेज पर थोड़ा झुक गया।

''हमारी बेहतर पहचान के लिए, बेहतर दोस्ती के लिए। ऐसे क्षण पहचान लेने से सम्बन्धों को तय कर लेना और समझ लेना आसान हो जाता है।''

''घृणा नहीं, पर गहरी विरक्ति का या शायद गहरे अस्वीकार का क्षण याद है।''

''चलो यही सही, ये सब उसके पहले की ही स्थितियाँ हैं। किसके लिए था वह सब?''

''नहीं, वह कोई बहुत ख़ास बात नहीं थी। ऐसी ही थी जिनसे हम रोज़ गुजरते हैं। उतनी ही मामूली जैसे बल्ब पर घूमता यह कीड़ा या जैसे तुम्हारी सिगरेट से गिरी मेज पर यह राख या फिर जैसे बोलकर भूले हुए शब्द। पर मुझे वह सब याद रह गया।''

''क्या हुआ था?'' बाबू मेज पर कुहनियाँ रखकर झुक गया। ''हम सब सुनेंगे...हमें बताओ।''

विवान ने एक बार उड़ती निगाह उन चेहरों पर डाली। विवान ने एक निगाह मेज पर छूटे हुए अन्न कणों पर डाली, रसोई की प्लास्तर उखड़ी दीवारों, सामने बैठे रहस्यमय चेहरों, काले कोट और बिखरी दाढ़ियों पर डाली। नींद, धुएँ और थकान के बीच, खिड़की के बाहर गिरती सर्द रात और सर्द रात में गिरती ओस के बीच विवान ने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया।

''मैंने सत्यनारायण से बहुत बार सुना था कि प्रेत रूप बदलकर रातों में ही निकलते हैं। उनके साथ-ही-साथ बहुत-सा भय, बहुत-से दुख, बहुत-सी यातनाएँ भी निकलती हैं जिन्हें वे रास्ते में मिलनेवालों को बाँटते चलते हैं। बाद में जब मैं थोड़ा-सा बड़ा हुआ और कहानियाँ पढ़ने भी लगा, तब भी यही पढ़ा। वैसे भी

रोशनी, अँधेरा, छायाएँ, विलाप, दुख, रहस्य, स्वप्न, अतृप्त कामनाएँ और थकी हुई बेजान रूहों की तिलस्मी दुनिया सिर्फ़ रातों में ही होती है। जैसे अभी है, जैसे अभी हम सात प्रेतात्माओं की तरह सर झुकाए बैठे हैं, दुर्दम्य, अपराजेय और रक्तरंजित शक्तियों का आवाहन करने के लिए रहस्यमयी मन्त्रों को बुदबुदाते हुए। ऐसी शक्ति जो हमें आकाशगंगाओं के नक्षत्रों को भी नोचने की ताकत देगी। रात के शहर, रात की बस्तियाँ मुझे हमेशा इसीलिए खींचते हैं। यह सब भी एक रात में ही हुआ। यह एक ही रात में क्यों हुआ, मुझे नहीं पता, पर हुआ।

''मैं कुछ महीने पहले बम्बई गया था। वहाँ से लौटते समय मेरी ट्रेन लेट हो गयी। पूरे पाँच घंटे। अब उसे सुबह 2:00 बजे आना था। मैं सात बजे ही स्टेशन पहुँच गया था। मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं था। मैं यूँ ही एक बस में बैठकर निकल गया। यूँ ही आख़िरी स्टेशन पर उतर गया। वह बम्बई का एक बाहरी हिस्सा था। खाली-खाली सा। वहाँ बड़ी तेज़ी से कुछ इमारतें बन रही थीं। मेरे पास समय था। स्टेशन से बाहर निकलकर मैंने पैदल सड़क पर चलना शुरू किया। उस सड़क पर कुछ पेड़ थे, कुछ रोशनी थी और बहुत कम इनसान थे। मैं उस सड़क पर थोड़ी दूर ही गया तो वे सब भी धीरे-धीरे पीछे छूटते गये। अब मेरे एक ओर एक बनती हुई विशाल इमारत के आधे-अधूरे हिस्से थे। उसके सामने की खुली जगह पर ईंट के, बोरे के, टीन के, दफ्ती के बने मज़दूरों के घर थे। उनसे हल्की रोशनी बाहर गिर रही थी। तभी मैंने देखा। उस ऊँची इमारत के सामने एक बल्ब की रोशनी में क्रेन पर लटका एक ऊँट हवा में झूल रहा था। हवा में लटका वह छटपटा रहा था। भिचें जबड़ों से बिलबिलाने की कोशिश करता हुआ वह अपनी माचिस की तीलियों जैसी सूख चुकी टाँगों को झटक रहा था। उसकी हिलती हुई विशाल छाया मेरे सामने सड़क पर पड़ी थी। ऊँट के चारों पैर, कूबड़ और काँपती देह, उस छाया में भी थे। मेरे सामने हवा में ऊँट खुद था। उसकी खाल बिल्कुल चिकनी ओर चकत्तेदार हो गयी थी। उसके रोएँ झड़ गये थे। उस बल्ब की रोशनी में उसकी आँखें चमक रही थीं। वे भय से, पीड़ा से फटी जा रही थीं। शायद वह इस तरह कभी हवा में नहीं लटका था। इस तरह कभी उसके रोएँ नहीं झड़े थे, इस तरह कभी वह भूखा नहीं रहा था। वह मरनेवाला था। वह किसी भी क्षण मर सकता था। क्रेन उसे उठाकर उस तरफ ले जा रही थी जहाँ एक ट्रक खड़ा था। ऊँट को उस ट्रक पर गिराने की कोशिश में ही वह उसे हवा में झुला रही थी। उसकी उस परछाईं में, ठीक उसी हिलती-डुलती परछाईं के बीच मैंने देखा कि एक औरत, एक आदमी और एक बच्चा खड़े थे। उस औरत का एक हाथ बच्चा पकड़े था, दूसरे हाथ से लाल कपड़े में लिपटी औरत, उस गहरे काले रंग के आदमी का सफेद कुर्ता पकड़े थी। काले रंग का वह मजबूत आदमी, तेज़ी से अपने को छुड़ाने की कोशिश करता

हुआ आगे भाग रहा था। उसका कुर्ता पकड़कर उसे रोकती हुई औरत चारों ओर मदद के लिए देख रही थी। विलाप कर रही थी कि मेरा आदमी मुझे छोड़कर भाग रहा है। कोई इसे रोको। वह आदमी आगे भागता जा रहा था। औरत उसका कुर्ता पकड़कर उसके साथ घिसटती जा रही थी, बच्चा औरत का हाथ पकड़कर उसके साथ घिसटता हुआ सुबक रहा था। औरत की आँखों में वही भय था जो ऊँट की आँखों में था। उसकी देह भी उसकी तरह काँप रही थी। होंठों की लटकी खाल से वैसे ही बिलबिलाने की आवाज़ आ रही थी। यही सब औरत का हाथ पकड़े हुए बच्चे में था। वही भय, वही कँपकपाहट, वही बिलबिलाता हुआ रुदन। उसी क्षण वह सब मेरे अन्दर फ्रीज़ हो गया। हमेशा के लिए। वह कभी नहीं जाता। रात के उस घने अन्धकार में, एकान्त में, वह इनसानों की या फिर रहस्यमय प्रेतों की दुनिया थी मुझे नहीं पता।'' विवान ने एक गहरी साँस ली।

वे सब मेज पर झुके उसकी बातें सुन रहे थे। बाबू ने पीछे हटकर एक सिगरेट जलायी। तीन और लड़कों ने भी जलायी। बाबू धुँआ छोड़कर फिर उसी तरह झुककर विवान को देखने लगा।

''मैं स्टेशन लौट आया।'' विवान फिर बोलने लगा, ''मेरी गाड़ी सुबह दो बजे आयी। फर्स्ट क्लास के कूपे में मेरे साथ एक विदेशी लड़का और लड़की भी थे। चौथी बर्थ खाली थी। वे मेरी ही उम्र के थे। लड़की बहुत सुन्दर थी। उसकी आँखें नीली थीं। उसके चेहरे पर अबोधता थी। वे दोनों एक-दूसरे से सटकर बैठे हुए थे। हमारी नींदों का समय शायद निकल चुका था। हम बातें करने लगे। हमने बातें शुरू कर दीं। वे स्पेनिश थे। हमने पाब्लो नेरूदा की बातें कीं, हमने फ्रैन्को की बातें की, हमने बुलफाइट और स्पेनिश कॉलोनी की बातें कीं। वे राजस्थान जा रहे थे। हमने राजस्थान की बातें कीं। उन्होंने अपने बैग से राजस्थान का एक नक्शा निकाला। मुझसे कुछ पूछा। मैंने बताया उन्हें। रजवाड़ों की परम्पराओं के बारे में, राजस्थान के इतिहास, युद्धों और ऊँटों के बारे में। लड़की ने फिर स्पेनिश लड़के से कुछ कहा। लड़का मुस्कराया। उसने अपने बैग से एक छोटा-सा डिब्बा निकाला। उसमें खाने का कुछ सामान था। लड़की शायद बहुत भूखी थी। उसकी आँखों में, चेहरे पर भूख दिख रही थी। उस डिब्बे में जो भी था, उसने बहुत तेज़ी से उसका एक टुकड़ा तोड़ा। उसे मुँह तक ले जा रही थी कि अचाकन रुक गयी। उसने मुझे देखा फिर पूछा, ''वेजीटेरियन?'' शायद क्रेन से लटके ऊँट का असर या फिर अवचेतन का कोई नामालूम क्षण, पर पता नहीं क्यों, पता नहीं कैसे, मेरे मुँह से निकल गया। ''यस, स्ट्रिक्टली वेजीटेरियन।'' और फिर मैंने देखा कि लड़की की नीली आँखों में एकदम से वही भय उतर आया जो ऊट की आँखों में था, औरत की आँखों में था, बच्चे की आँखों में था। उसने चुपचाप हाथ का टुकड़ा वापस डिब्बे में

रख दिया। लड़के ने धीरे-से डिब्बा बन्द कर दिया। मैं सब देख रहा था। लड़की के चेहरे पर भय, भूख और दुख था, ''क्या हुआ?'' मैंने पूछा। ''कुछ नहीं।'' लड़की ने सर घुमा लिया। वह खिड़की के बाहर देखने लगी। मैंने उस लड़के से पूछा, ''क्या हुआ?'' ''यह बीफ है। हमें माफ करिए। हमें पता नहीं था। हम बहुत शर्मिन्दा हैं।'' वह बुरी तरह गिड़गिड़ा रहा था, जैसे वह औरत गिड़गिड़ा रही थी, ''हमारी टूरिस्ट गाइड में लिखा है, हमें पहले ही पूछना चाहिए था। हम राजस्थान सुबह पहुँच ही जाएँगे, वहाँ खा लेंगे। आप कहें तो हम इसे फेंक दें।'' उसके होंठ, नथुने उसी ऊँट की तरह हिल रहे थे। मुँह से उसी तरह, खिंची हुई आवाज़ निकल रही थी। मैंने कहा कि आप खाएँ मुझे फ़र्क़ नहीं पड़ता। वह लड़की उठी और ऊपर की बर्थ पर जाकर लेट गयी। लड़का भी अपनी बर्थ पर चुपचाप लेट गया। मैंने बत्ती बन्द कर दी। खिड़की से मुँह चिपका लिया। गहरी तेज़ साँसें लीं। दुख, भूख, यातना, विलाप, भय की सत्ता कितनी बड़ी थी, कितनी एकरूप थी। ऊँट से लेकर स्पेनिश लड़की तक। दुनिया के ये सबसे बड़े सच हैं।'' विवान चुप हो गया। मेज पर सन्नाटा छा गया। वे सब चुप थे। उनके बीच सिगरेट का धुँआ तैर रहा था। सन्नाटा देर तक रहा।

''क्या मैं चाय बनाऊँ?'' एक लड़के ने इस सन्नाटे से घबराकर पूछा, ''मैंने सामान रखवा लिया था।''

''हाँ'', बाबू ने कहा।

वह उठकर चाय बनाने चला गया। दो लड़के पेशाब करने चले गये। विवान कुर्सी की पुश्त से टिक गया। आँख बन्द कर लीं उसने।

मेज पर चाय का गिलास रखने की आवाज़ आयी तो विवान ने आँखें खोलीं। मेज पर काँच के सात छोटे गिलासों में चाय थी। उनसे भाप उठ रही थी। वे सब, जो इधर-उधर थे, फिर मेज पर अपनी जगहों पर बैठ गये। उन्होंने अपने हाथों में एक गिलास ले लिया।

''इसमें किसके लिए विरक्ति या किस बात का अस्वीकार था जिसके कारण ये क्षण या यह रात तुम्हें हमेशा याद रही?'' बाबू ने पूछा।

''ऐसे पूरे जीवन या फिर जीवन के इन क्षणों के लिए, जिनमें मनुष्य इस तरह दिखता है।'' विवान बोला।

''और यह जीवन पैदा कहाँ से होता है?''

विवान समझ रहा था कि बाबू बात को कहाँ ले जा रहा है। विवान चुप रहा। बाबू बोला।

''तुमने इस पर नहीं सोचा होगा। तुम इस पूरी रात को, इन क्षणों को एक रोमांटिक लेवल पर ले गये जहाँ पीड़ा और दुख का या आत्मघाती प्रवृत्तियों का

महिमा मंडन है। उनके समर्थन में हाहाकार करती कविताएँ हैं, आत्मरति का सुख है, एक दम्भी, खुद से जन्मी और पोषित महानता है। तुमने इस रात को अपने लिए, इसी रूप में ग्लोरीफाई करके इसलिए रख लिया है कि तुम जब चाहे इसे उठाकर इसके साथ खेलो, इसे चबाओ, कुतरो, इसे दुलारो और अपनी पीड़ा को दार्शनिक शब्दावलियों में, कविता की रोमांटिक छवियों में तानते हुए, उसके नीचे दुबके रहो। वास्तव में यह पूरी रात तुम्हारे अन्दर घृणा के जन्म का बिन्दु ही है जिस पर तुमने ठीक से नहीं सोचा। उन स्थितियों को नहीं समझा जिन्होंने इसे जन्म दिया। तुम इस रात को तो अवीकार कर रहे हो पर उन स्थितियों को नहीं, जहाँ से न जाने ऐसी कितनी ही रातें विस्फोटों की तरह फूट रही हैं। अगर तुम्हारे अन्दर इस रात का अस्वीकार है, तो उन स्थितियों का भी होगा और फिर तुम उन्हें क्यों नहीं बदलना चाहोगे? इस पूरे मसले को ठीक से देखो। स्पेनिश लड़की के भय के पीछे साम्प्रदायिकता, सड़ी-गली परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, जड़ ईश्वर का कट्टरपन और राष्ट्रीयता का संसार है। ऊँट की आँख का भय, पीड़ा, पूँजीवादी व्यवस्थाओं का चेहरा है। रेगिस्तान में रहनेवाले जानवर को पकड़कर समुद्र की नम हवा में पैसों के लिए दौड़ाते हैं। ऊँट के कूबड़ पर हँसते हुए युवा जोड़े, खिलखिलाते बच्चे बैठकर समुद्र की सैर करते हैं। हवाओं के नमक से ऊँट के रोंए धीरे-धीरे झड़ने लगते हैं, हड्डियाँ ग़लती हैं, साँस फूलती है, पर वह फेन बहाता, बिलबिलाता हुआ भागता है। कोई नहीं सोचता कि ऊँट की जगह समुद्र नहीं, रेत है। विकृत पूँजीवादी मानसिकता ऐसे तर्क और ऐसी अनिवार्यताओं पर विश्वास नहीं करती। वह सब, जो तुमने रात को देखा, वह वास्तव में एक ही स्थिति के दो हिस्से थे जहाँ पूँजीवाद और साम्प्रदायिकता का अटूट गठजोड़ होता है। वह पूरी रात तुमसे वही कह रही थी, जो मैं तुमसे कह रहा हूँ पर तुम उसे अभी पूरी तरह नहीं समझ पा रहे हो। तुम अभी सही दिशा, सही साथ और सही दृष्टि न होने के कारण, आधे-अधूरे रास्ते पर चलते हुए, खुद उस ऊँट की तरह हवा में झूल रहे हो।'' मेज से कुहनी हटाकर बाबू पीछे हटा और कुर्सी से टिक गया।

''सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि तुम जीवन को कहाँ पर खड़े होकर देख रहे हो और अपने लिए, उसका चुनाव करते समय, उसे कहाँ से उठा रहे हो। तुम्हारे पास ये स्मृतियाँ, ये छिछले और ओढ़े हुए काव्यमय दुख इसलिए हैं क्योंकि तुम अभी तक उन संरचनाओं से नहीं टकराए हो जो किसी अधिकार की बात तो दूर, तुम्हारे इनसान होने के अहसास तक की धज्जियाँ उड़ा देते हैं। अगर वो सब देख लोगे, तो यह सब, जो तुमने अभी बताया, फिर कभी याद नहीं आएगा। मरते हुए ऊँट का भय, स्पेनिश लड़की की भूख, उस औरत की गिड़गिड़ाहट सब तुम्हारे अन्दर लरजते हुए उन क्षणों की तरह हैं जिन्हें तुमने यूँ ही अचानक देख लिया है

और जिनसे वास्तव में तुम्हारे जीवन का कोई सरोकार नहीं था। पर जब तुम ऐसे भय, ऐसे दुखों को, हज़ारों जीवित मनुष्यों की आँखों में, उनकी ज़िन्दगी में रोज़ देखोगे, तब तुम्हें अपनी ये सब महान व्यथाएँ बौनी और बेमानी लगेंगी। तुम्हारे अन्दर ज़िन्दगी को सही जगह से पकड़ने की पूरी क्षमता है, तुम उसे पकड़ भी रहे हो, पर अभी दृष्टि और परिधि दोनों छोटी हैं।'' बाबू की चाय ख़त्म हो गयी। उसने गिलास मेज पर रखकर फिर एक सिगरेट जला ली। सिगरेट की चिंगारी में उसकी हिलती हुई दाढ़ी चमक रही थी। वे सब चुपचाप सुन रहे थे।

''मनुष्य की बनायी हुई सारी संरचनाएँ, यह धर्म, समाज, न्याय, राज्य, पूँजी, ये ही मनुष्य का पूरा जीवन नियन्त्रित करती हैं। ये ही स्मृतियों के, दुख के, भय के स्वरूपों को भी जन्म देती हैं, निर्धारित करती हैं, नियन्त्रित करती हैं। इनका आधार हैं, पर ये सब हमेशा अधूरी हैं, दूषित हैं, इसलिए ये हमारी सबसे बड़ी शत्रु भी होती हैं। इन्हें निर्दोष,परिपक्व और सक्रिय रखने के लिए इन्हें हमेशा बदलना पड़ता है। कभी-कभी तो जड़ से ही। लोग इन्हें बदलते भी रहे हैं। यह पहली नज़र में कठिन काम लगता है पर होता बिल्कुल नहीं है। इन्हें सिर्फ़ यह पता होना चाहिए कि लोग इन्हें इस रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। ये खुद ही लचीली होने लगती हैं, इनकी जड़ें सूखने लगती हैं। हम और तुम एक ही बिन्दु पर खड़े हैं। हम नदी में रहकर जल को देख रहे हैं और तुम नदी से बाहर रहकर। तुम कुछ दिन हमारे साथ रहो। हमारे कैम्पों में, हमारी कार्यशालाओं में, हमारी बहसों में रहो। तुम बहुत बड़े काम कर सकते हो। हमने पता किया है। तुम बातों को रखना और समझाना जानते हो। आज़ादी के इस पाखंड के विरुद्ध चलनेवाली अपनी इस लड़ाई में हम सबको तुम्हारे ऐसे नये लड़कों की ज़रूरत है।'' बाबू चुप हो गया। मेज पर अब खाली गिलास रखे थे। कुछ सिगरेट जल रही थी। कुछ अँधेरा था, कुछ उजाला। कुछ आँखों में नींद थी, कुछ में उदासी। कुछ शब्द फड़फड़ा रहे थे, कुछ मृत हो गये थे। विवान कुछ जागृति में था, कुछ स्मृति में।

''तुम छुट्टियों में क्या करोगे?'' बाबू ने पूछा, ''क्या घर पर रहोगे?''

''बस कुछ दिन, फिर यहीं रहकर रिसर्च की तैयारी करूँगा।''

''रिसर्च करके क्या करोगे?''

''पता नहीं, शायद पढ़ाने लगूँ।''

''बस? यह काम दूसरे हज़ारों लोग, पहले से ही कर रहे हैं। पुरानी किताबों के उद्धरण, पुराने, जर्जर हो चुके महानायक, सड़ी-गली परम्पराओं और नैतिकताओं को नये लड़कों में बाँटते हुए अपने जैसे बेजान पुतले तैयार कर रहे हैं। जैसे एक खाँचे से निकलते चले आते हैं। यही करोगे? इन किताबों में कुछ नहीं होता। इनके पूरे अर्थ को सिर्फ़ एक पंक्ति से बदला जा सकता है। इनमें लिखी हर बात को अपने

कोण से व्याख्यायित किया जा सकता है। दूसरे यही करते हैं, हम भी यही कर रहे हैं। तुम अगर यही करने जा रहे हो कि जो कुछ उन किताबों से तुम्हें दिया गया है, उसे उसी तरह, एक दीमक लगे जर्जर पुल की तरह नयी पीढ़ी को देने जा रहे हो, तो तुम अपने जीवन को नष्ट कर रहे हो। इससे बुरा जीवन क्या हो सकता है? हाँ, अगर तुम उन किताबों से ऐसा कुछ निकालो जो लड़कों की पूरी दृष्टि और चेतना को बदलकर, उन्हें हमारी लड़ाई के साथ जोड़े, यानी इस समय को, समाज को, संरचनाओं को रेशा-रेशा देखकर निर्णय ले और ज़रूरत समझे तो बदलने की कोशिश करे, तो तुम यह काम कर सकते हो। फिर भी मैं चाहूँगा कि तुम कुछ दिन हमारे साथ रहकर फिर अपना आख़िरी फैसला करो।''

विवान ने बाबू को देखा। बाबू ने दीवार पर लगी घड़ी देखी। सुबह के तीन बज रहे थे। बाबू फिर मेज पर कुहनियाँ टेककर झुक गया।

''मैं फिर अपनी उसी बात पर लौटता हूँ कि यह महत्त्वपूर्ण है कि तुम जीवन को कहाँ से खड़े होकर देख रहे हो और अपने लिए, उसका चुनाव करते हुए, उसे कहाँ से उठा रहे हो। मैं इंजीनियरिंग का विद्यार्थी था। हमेशा पढ़ने में बहुत तेज़ था। हमेशा अच्छे नम्बर पाये। तुम सबकी तरह अपने अच्छे भविष्य, अपने परिवार, अपनी प्रेमिकाओं के बारे में सोचता था। एक सुरक्षित, सम्यक जीवन चाहता था जो इंजीनियर बनते ही मेरी आसान पहुँच में था। एक बार मैं घर गया था। वहाँ मैंने एक घटना देखी जिसने मेरी पूरी सोच, पूरी दृष्टि और मेरे जीवन का लक्ष्य बदल लिया। बहुत मामूली था वह सब। मेरी गली का जमादार, जो पचास साल का था और जो पिछले पैंतालीस सालों से, सिर्फ़ घरों और गली की गन्दी नालियाँ साफ़ कर रहा था, उसे एकाउंट्स का एक चालाक वकील बुरी तरह डाँट रहा था, इसलिए कि तबीयत खराब होने के करण वह दो दिन उसके घर पाखाना साफ़ करने नहीं गया था। वह जमादार हाथ जोड़े खड़ा था। माफ़ी माँग रहा था। उससे 'हुजूर' करके बात कर रहा था। अपने दोनों हाथ जोड़कर माथे से छुआ रहा था। उस आदमी ने पिछले पैंतालीस सालों में कुछ भी और नहीं सोचा था, कुछ भी और नहीं किया था सिवाय दूसरों की गन्दगी उठाने के, और वह आदमी, जो उसे डाँट रहा था, उसने पिछले 20 सालों में, सिर्फ़ कानून की धूर्तता और मक्कारी भरी भाषा का इस्तेमाल करके, पैसेवालों के लिए पैसे बचाने की तरकीबें जुटाने के अलावा, कुछ नहीं किया था। जमादार फटे कपड़ों में था, बीमार था, भूख और गरीबी उसके हर अंग पर चिपकी थी। उस आदमी के पास कनवर्टिबल गाड़ी थी। जमादार की आँखों में भय था, दीनता थी, गिड़गिड़ाहट थी। शायद वैसी ही, जैसे तुमने हवा में लटके ऊँट या उस स्पेनिश लड़की में देखी थी। वह वकील गुर्रा रहा था। समाज को जमादार की बेहद ज़रूरत थी। वह वकील समाज के लिए बिल्कुल निष्प्रयोजनीय था। उसी क्षण मुझे लगा

कि इस पूरे समाज की सोच, बनावट और इसके नियमों में कहीं कोई बहुत बड़ा गड़बड़ है। मेरे लिए वह मेरे अस्वीकार का एक महत्त्वपूर्ण क्षण था। मैंने इसे अपनी घृणा में बदल दिया जो तुमने अभी नहीं किया है। मैं उसके बाद सिर्फ़ सवालों से ही जूझता रहा। मैंने किसी वृक्ष के नीचे तपस्या नहीं की, पर बहुत पढ़ा, बहुत घूमा और अन्त में यही पाया कि यह सब बदलना है तो इसकी लड़ाई चलनी चाहिए और यह लड़ाई सिर्फ़ और सिर्फ़ रक्त की होनी चाहिए। इन सबकी जड़ें बहुत गहरी हैं। इनके पहरेदार इतने अधिक और इतने सतर्क हैं कि वे कुछ भी आसानी से नहीं बदलने देंगे। वे हमें फ़ौरन मार देंगे अगर हमने उन्हें इससे पहले, तत्काल ख़त्म नहीं किया तो। मैंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। इंजीनियर का भविष्य और स्वप्न छोड़ दिया। सुरक्षित जीवन छोड़ दिया। मैं अब तुम्हारे सामने हूँ।'' बाबू ने एक गहरी साँस ली। उसके चेहरे पर थकान आ गयी थी। वे सब चुपचाप सुन रहे थे।

''मैं फिर वही बात कहता हूँ कि तुमने ज़िन्दगी को कहाँ से खड़े होकर देखा और अपने लिए कहाँ से उठाया। जो जिधर से एक बार जीवन को देखना शुरू कर देता है, फिर अक्सर उसे बदल नहीं पाता। वही उसे अन्तिम सत्य लगता है। मुझे लगता है कि अब मैं जो कर रहा हूँ बस वही ठीक है। तुम अभी दुविधा में हो, संशय में हो क्योंकि तुम्हारे पास अभी रोशनी देती हुई कुछ स्मृतियाँ हैं, कच्ची गन्ध छोड़ते कुछ अनुभव हैं, कुछ काल्पनिक दुख हैं। इन सबको एक नयी और मुकम्मल शक्ल मिल सकती है, अगर हमारे साथ आओ।'' बाबू ने विवान की तरफ हाथ आगे बढ़ाया। विवान को देखा। विवान ने उसके बढ़े हाथ को देखा।

''थोड़ा समय लूँगा।'' विवान धीरे-से मुस्कराया।

बाबू ने मुस्कराकर हाथ पीछे खींच लिया।

''ठीक है। यह तुमसे मिलता रहेगा।'' बाबू ने एक लड़के की ओर इशारा किया। बाबू उठ गया। वे सब उठ गये। कैंटीन के हॉल के बड़े दरवाज़े तक विवान उनके साथ आया।

''शायद कुछ देर में सुबह हो जाए।'' एक लड़के ने घड़ी देखी। चार बज रहे थे।

दरवाज़े के बाहर वे सातों अब बिखरे हुए खड़े थे। विवान ने सबसे मुस्कराकर हाथ मिलाया। वे सब सर झुकाकर, सामने धुन्ध में डूबे कच्चे रास्ते पर निकल गये। काले कपड़ों में लिपटे वे प्रेतों की तरह दिख रहे थे। विवान उन्हें जाते हुए देखता रहा जब तक वे दिखते रहे। उनके जाने के बाद विवान एकदम से अकेला हो गया। उसका मन हुआ कि वह इस समय खाली सड़कों पर घूमता हुआ गुल्लू के घर के सामने से निकले। हो सकता है शायद इस सफेदी में, छत पर खड़ा वह साँवला जंगल उसे दिख जाए। विवान ने गहरी उदासी से उस ख़त्म होती हुई रात को देखा।

उसमें गिरती हुई ओस, धुन्ध और चाँदनी को देखा। उसके टूटते पत्तों और टपकती हुई रोशनियों, बूँदों को देखा, फिर अपने कमरे की तरफ चला गया।

छुट्टियों में विवान घर गया। इतने सालों में कुछ ही चीज़ें बेहद मामूली तौर पर बदली थीं।

माँ ने विन्सेंट का पेशाब उबालना बन्द कर दिया था। यह काम अब मौसी करने लगी थी। उसके आधे सर में दर्द अब भी होता था और अब भी विन्सेंट उसके सर को गोद में रखकर दबाता था। माँ अपने पूजा के कमरे में ज़्यादा रहने लगी थी। विन्सेंट ने अपना काम और बढ़ा लिया था। क़ब्रों के पत्थरों के लिए उसने दूसरे राज्य की पहाड़ियों को भी तोड़ना शुरू कर दिया था। साल में दो बार वह अब भी इंग्लैंड जाता था जहाँ दादी से वसीयत में मिली जायदाद की देखभाल करता था, आमदनी का हिसाब लेता था। दोनों बार मौसी उसके साथ इंग्लैंड जाती थी, इसलिए, कि अगर विन्सेंट के जाने के बाद मौसी के सर में दर्द हुआ तो कौन सर दबाएगा और इसलिए भी, कि वहाँ विन्सेंट का पेशाब उबालने की ज़रूरत भी पूरी होती रहेगी। जब वे दोनों चले जाते तब माँ विवान को लम्बे खत लिखती। उसे बुलाती। पहले विवान खत पढ़कर चला आता था, फिर उसने आना बन्द कर दिया। माँ भी पहले बुलाती थी फिर उसने भी बुलाना बन्द कर दिया।

विवान अचानक घर पहुँचा था। दोपहर की और गर्मियों की शुरुआत थी। दिन बड़े और धूप तेज़ होने लगी थी। इस मौसम में फसलें पकती थीं, और उदासी भी। लम्बी और साफ़ दिखती परछाइयों को पैदा करनेवाली धूप में बेशुमार फूल होते थे। विवान के घर में भी थे। पोर्च तक जानेवाली कच्ची सड़क के दोनों ओर लगी खुशबूदार झाड़ियों के नन्हे सफेद फूलों को पार करके, सीढ़ियों को पार करके, विवान गलियारे में आया। गोल गलियारे के अन्दर कमरे थे। गलियारे में सन्नाटा था। विवान गलियारे के खम्भों के बीच से आती धूप पर पाँव रखता हुआ माँ के कमरे तक आया। दरवाज़ा खुला था। पलँग पर बैठी हुई माँ को देखा उसने। वह कपड़े में टाँके लगा रही थी। जिस क्षण विवान ने उसे देखा वह सर झुकाकर दाँत से धागा तोड़ने की कोशिश कर रही थी। धागा तोड़कर उसने सर उठाया तो सामने उसे विवान दिखा। विवान को इस तरह दिखने पर उसे विश्वास नहीं हुआ। कुछ देर तक चुपचाप वह विवान को देखती रही फिर रोने लगी। विवान हाथ का बैग वहीं फ़र्श पर रखकर माँ के पास आया। विवान ने माँ के पैर छुए। उसने कपड़ों को एक ओर सरकाकर विवान के पास बैठा लिया। उसके सर पर हाथ फेरा। उसके बालों को सूँघा। विवान ने अपनी बाँह फैलाकर उसे समेट लिया।

''कैसी हो?'' विवान ने धीरे-से पूछा।

माँ मुस्करायी।

''अचानक क्यों आया?''

''बस, अचानक तुमसे मिलने का मन हुआ, आ गया।''

माँ उसके बदन पर हाथ फेरने लगी। उन हाथों से विवान को स्प्रिट की खुशबू नहीं आयी जो पहले हमेशा आती थी।

''और सब कैसे हैं?'' विवान ने पूछा।

''सब ठीक हैं, जैसे थे।'' माँ विवान की बाँह के नीचे से निकलकर पलँग से उठ गयी।

''क्या खाएगा?''

''मैं वहीं चलता हूँ।'' विवान भी पलँग से उठ गया। माँ के साथ वह रसोई में आया। रसोई खाली थी। दोपहर का खाना ख़त्म हो चुका था। माँ ने अलमारी के कटोरदान से कुछ पराँठे निकाले। थोड़ा-सा दही भी। एक छोटी थाली में पराँठे और कटोरी में दही रखकर विवान को दिया।

''अभी यह खा ले, फिर बनाती हूँ कुछ।''

''इतना बहुत है। नहाकर फिर थोड़ा आराम करूँगा।'' माँ ने सर हिलाया। विवान फ़र्श पर रखे एक ऊँचे पटरे पर बैठ गया। माँ भी सामने की चौकी पर बैठ गयी। वह विवान को खाते हुई देखती रही।

''कितने दिन रुकोगे?''

''दो या तीन दिन।''

''क्यों?''

विवान कुछ नहीं बोला। उसने माँ की तरफ आँख उठाकर देखा भी नहीं। वह जानता था माँ का चेहरा कैसा हो गया होगा। माँ की खाल, माँ की आँखें कैसी हो गयी होंगी। विवान इनसे डरता था इसलिए इन्हें नहीं देखता था। विवान ने विन्सेंट की सेहत के बारे में पूछा।

''वह शाम को देर तक आएँगे।'' माँ ने कहा, ''तुम्हारा पहले से पता होता तो जल्दी आ जाते। तुम तब तक आराम कर सकते हो।''

''मौसी?'' विवान ने पूछा।

''मिल लेना।'' माँ ने रसोई के बाहर सरकती धूप को देखते हुए कहा।

विवान चुपचाप खाने लगा। पराँठे ख़त्म करके उसने थाली वहीं फ़र्श पर रख दी। वह उठ गया। उसने कोने के नल पर हाथ धोये फिर माँ के पास आ गया। हाथ बढ़ाकर उसने माँ को समेट लिया। विवान ने महसूस किया कि उसकी देह बहुत पतली हो गयी है। वह अब बाँहों के बहुत छोटे घेरे में आ गयी थी।

''तुम ठीक रहती हो?'' विवान ने पूछा।

''क्यों?''

''यूँ ही।''

''हाँ।''

विवान कुछ नहीं बोला। कमरे तक वह इसी तरह आया फिर उसने माँ को छोड़ दिया। फ़र्श पर रखा अपना बैग उठाया और अपने कमरे में चला गया।

उसका कमरा हमेशा तैयार और खाली रहता था। अपने कमरे में बैग रखकर विवान मौसी के कमरे में चला गया। मौसी सरौते से सुपारी की डली काटकर, चाँदी की छोटी-सी कटोरी में रख रही थी। विवान को देखकर वह भी अविश्वास से कुछ देर उसे देखती रही। विवान ने मौसी के पैर छुए। मौसी ने उसके सर पर हाथ रखा। विवान को मौसी के हाथों से स्प्रिट की महक आयी। यह महक माँ के हाथों से मौसी के हाथों में पहुँच गयी थी।

''कैसा है?'' मौसी ने पूछा।

''ठीक हूँ।'' विवान ने कहा।

''कब आया?''

''बस अभी। थका हूँ,नहाकर कुछ आराम करूँगा।''

मौसी ने सर हिलाया। वह फिर सुपारी काटने लगी। विवान कमरे से बाहर निकल आया।

रात को खाने की मेज पर विवान की विन्सेंट से मुलाकात हुई। विवान को देखकर वह ख़ुश हुआ। उसने विवान को पास बुलाकर गले लगाया। खाना खाने के दौरान ही विन्सेंट ने विवान से उसके बारे में पूछा। वह कब तक रुकेगा, पढ़ाई कैसी चल रही है, आगे क्या करना चाहता है? विवान ने पहले दोनों सवालों के उत्तर दे दिये। तीसरे के बारे में उसे खुद नहीं पता था।

खाने के बाद विन्सेंट विवान को अपने कमरे में ले गया। उसने अपना पाइप सुलगाया। पतली ओर लम्बी खिड़कियों वाले कमरे में हवा इधर से उधर जा रही थी। उस हवा में चाँद की महक थी, रातरानी की महक थी, विन्सेंट के पाइप के तम्बाकू की महक थी। विन्सेंट सोफे पर बैठ गया। उसने विवान को पास ही बैठा लिया।

''तुमने सिगरेट शुरू की?'' विन्सेंट ने मेज पर पड़े सिगरेट के पैकेट की ओर इशारा किया।

''अभी नहीं।'' विवान ने कहा।

''तुम अब मेरे बराबर लम्बे हो गये हो, मजबूत भी।'' विन्सेंट ने इस पर गर्व महसूस किया जो उसकी आवाज़ में खुशी के साथ मिला हुआ लरज़ रहा था।

''तुम मेरे काम को सँभालो। मैं अब थकने लगा हूँ।'' विन्सेंट ने गर्म जोशीली आवाज़ में कहा। वह विवान को देखकर खुद को मज़बूत और जवान महसूस कर रहा था।

विवान कुछ नहीं बोला। विन्सेंट को देखता रहा। पाइप के धुएँ के पीछे उसके चेहरे पर विवान ने पहली झुर्रियाँ देखीं। कनपटी के ऊपर के सफेद बाल देखे।

''मैंने बहुत काम कर लिया,'' वह बुदबुदा रहा था, ''बहुत फैला भी लिया है। पर उमर बढ़ने पर घुटने टूटने लगते हैं। इसके अलावा भी, अब यह हमारा मुल्क नहीं रहा। हम इतने सालों तक यहाँ रहे। हमारे पुरखों की क़ब्रें इंग्लैंड से ज़्यादा इस मुल्क की जमीन में हैं, फिर भी, समय बदल रहा है। होशियार परिन्दे, चरिन्दे मौसम बदलने से पहले उसे सूँघकर भाँप लेते हैं और निकल जाते हैं। तुम्हें पता ही है इंग्लैंड में अब भी हमारी जायदाद है, घर है। वही हमारा असली मुल्क है। हम सब वहाँ फिर से रह सकते हैं। हम वहाँ हमेशा ऊँची नस्ल के मिलनेवाली शानो-शौकत और इज़्ज़त से रहे। हमें हमेशा इस पर फख्र था। यह ठीक भी था। तुम्हें अन्दाज़ा नहीं होगा क्योंकि तुम्हें कभी बताया नहीं गया। इस मुल्क में भी हमारी शान दिल्ली के बादशाहों से कम नहीं थी। मेरी दादी के पिता टॉमस दिल्ली में हमारे परिवार के पहले व्यक्ति थे, जहाँ तक हमारी यादें जाती हैं। दादी ने मुझे कितनी बार उनके बारे में बताया था। वह अपने पिता के पास बहुत दिन हिन्दुस्तान आकर रही थीं। वह शानदार आदमी थे।''

विन्सेंट सोफे से उठा। उसने सामने शीशी के पल्लेवाली अलमारी खोली। अन्दर की दराज़ से भेड़ के मुलायम कपड़े की बनी कत्थई जैकेट में बन्द एक डायरी निकाली।

''इसे पढ़ो'', उसने डायरी विवान को दी, ''यह विलमौट डगलस की डायरी है। पूरी नहीं भी पढ़ो, तब भी वे हिस्से ज़रूर पढ़ो जिन पर निशान हैं। तुम अपने बारे में थोड़ा और जानोगे। हो सकता है यह सब जानकर तुम्हें अपने भविष्य के बारे में कोई फैसला लेने में भी मदद मिले। कैसा भी फ़ैसला, मेरे साथ यहाँ रहकर काम सँभालने का या न सँभालने का। तुम अगर मेरे साथ रहो, तो फिर देर करने की ज़रूरत नहीं है। कल से ही काम सँभालो। और अगर यह तुम्हें पसन्द नहीं, तो मैं इसे समेटना शुरू करूँ। तुम्हारी माँ और मौसी के साथ वापस इंग्लैंड में बसने की तैयारी करूँ। ध्यान रखना, इस मुल्क में ब्रिटिश साम्राज्य को बनाने, बढ़ाने और ताकतवर रखने में हमारे परिवार का योगदान भी है। तुम अगर यहाँ रहो, तो फिर यह सब भूल जाना, क्योंकि दो दुनियाओं में एक साथ जीना बहुत कठिन है।

दो देशों में, दो धर्मों में जीना भी कठिन है और दो औरतों के बीच जीना भी। तुम विवान डगलस हो, यही तुम्हारी समस्या है। तुम्हें लगता होगा कि अब, इसी नयी और बदलती हुई दुनिया में, इन सब बातों से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। पर पड़ता है। इनसान को अपनी नस्ल की रेखा कभी पार नहीं करनी चाहिए।'' विन्सेंट उदासी से बोल रहा था, ''हो सके तो धर्म और देश की भी नहीं। उमर बीतने पर, देर में ही ये बातें समझ में आती हैं। मैंने इसे तोड़ा था, मैं सुखी रहा या नहीं, नहीं जानता। तुम अपना फ़ैसला खुद करोगे कि तुम कैसे विवान और डगलस दोनों के साथ रहोगे।''

विवान चुपचाप बैठा हुआ सुन रहा था। विवान को हमेशा लगता था कि कहीं बहुत अन्दर से वह अपने पिता को नापसन्द करता है, पर इस क्षण उसे लगा कि विन्सेंट की जर्द होती खाल और कमज़ोर होती काया के नीचे एक बहुत अकेला और दुखी इनसान है। जो सतह पर दिखता है वह अक्सर सतह के नीचे नहीं होता। विन्सेंट ने उस ज़माने के पिताओं की ही तरह कभी विवान से नहीं कहा कि वह उसे प्यार करता है, कभी गोद में नहीं खिलाया, कभी बातें नहीं कीं, पर विवान को इस क्षण लग रहा था कि विन्सेंट उससे सचमुच प्यार करता रहा है। चुपचाप, खामोशी से। विवान का मन हुआ कि उठकर वह विन्सेंट की झुर्री होती देह, काँपते हाथों को सहारा दे दे। अपनी बाँह बढ़ाकर उसे समेट ले, पर विवान ने ऐसा नहीं किया। दूरियाँ बनने में भी समय लेती हैं और मिटने में भी।

विवान माँ के पास बैठा था तो माँ का दुख बड़ा लगा। विन्सेंट के पास बैठा तो उसका दुख बड़ा लगा। मौसी के पास भी अगर बैठे तो शायद उसका दुख भी बड़ा लगेगा। घर पहुँचने से पहले विवान को ऊँट का, उस परछाईं में काँपती औरत का, भूखी स्पेनिश लड़की का दुख भी बड़ा लगा था। उसके पहले गुल्लू की बीबी का, बाबू का, सत्यनारायण का दुख भी बड़ा लगा था। शायद सब दुख बड़े होते हैं, शायद सब दूरियाँ भी बड़ी होती हैं। दुख भी, दूरियाँ भी, एक बार आएँ तो फिर जाते नहीं। विवान बहुत उदास हो गया। उसकी उदासी विन्सेंट के पाइप से निकलते धुएँ, हवाओं और विन्सेंट की थकी आवाज़ के साथ बढ़ने लगी।

विवान के सोने का समय हो गया था विवान सोफे से उठ गया। डायरी उसके हाथ में थी।

''मैं सोचूँगा'' विवान ने धीरे से कहा।

''तुम्हें चाहिए और कुछ?'' विन्सेंट ने पूछा।

''नहीं'' विवान मुस्कराया, ''कुछ चाहिए तो माँग लूँगा।'' विवान कमरे के बाहर निकल गया।

गलियारा पार करके वह अपने कमरे में आया। उसने किनारे की खिड़की खोल दी। खिड़की के पार साफ़ आसमान था। चाँदनी की चमक में दिखता हुआ।

पतझर के पेड़ नंगे हो चुके थे। उन्हीं में से किसी ऊँचे पेड़ पर एक अकेला परिन्दा बोला। विवान ने कपड़े बदले और डायरी लेकर बिस्तर में घुस गया।

विलमौट डगलस, नाइन्टीथर्ड सदरलैंड, हाईलैंडर्स रेजिमेंट इंग्लैंड, अवध, नवम्बर 1857 से नवम्बर 1859

1600 ई. की डूबती हुई सदी के आख़िरी दिन, आख़िरी लम्हों में, जब चर्च के घंटे अपने काँटों के बारह पर पहुँचते ही इस सदी के ख़त्म होने की घोषणा करने को बेचैन थे, रानी एलिजाबेथ ने उस काग़ज़ पर दस्तख़त बनाये जिसने ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए हिन्दुस्तान आने के रास्ते खोल दिये। सन् 1600 की उस आख़िरी शाम, जब हिन्दुस्तान में अकबर नाम का बादशाह असीरगढ़ के किले की घेराबन्दी को लेकर चिन्तित था, अपने बेहद अज़ीज़ बेटे सलीम के बगावती तेवरों को लेकर चिन्तित था, अपने तैमूरी खानदान की शानो शौकत, नाम और इतिहास को लेकर चिन्तित था, तब उसे नहीं मालूम था कि लन्दन नाम के एक नामालूम शहर में, उसी रात, उस मुल्क की रानी ने जिस काग़ज़ पर दस्तख़त किये हैं, वह आनेवाले समय में, उसके तैमूरी खानदान की मौत का घोषणापत्र भी था।

मैंने हिन्दुस्तान का नाम सिर्फ़ काली मिर्च और दूसरे मसालों के सिलसिले में सुना था जिनका ज़िक्र, हमारे घर के कुछ ख़ास पकवानों के बनने पर होता था। मैंने हिन्दुस्तान को पहली बार एक काली, असभ्य औरत के रूप में, ईस्ट इंडिया कम्पनी के ईस्ट इंडिया हाउस में लगी दस फुट चौड़ी और आठ फुट ऊँची पेंटिंग में देखा था, जिसमें पूरब अपनी सारी दौलत-वैभव हमारी महारानी के क़दमों पर बिछा रहा था। इस पेंटिंग में किसी एशियाई समुद्री-तट की पृष्ठभूमि में तीन औरतें थीं। एक औरत अँग्रेज़ थी जिसके आगे घुटनों पर झुकी हुई एक काली औरत थी उसके हाथों में मुकुट, मोतियों की माला और जवाहारात थे। दूसरी औरत चीनी थी जिसके हाथ में पोर्सलीन का बर्तन और चाय थी। उसके पीछे गुलामों की कतार थी जिनके हाथों में सूती कपड़ों के थान थे। उनके पास हाथी थे, ऊँट थे। अँग्रेज़ औरत की भव्य मुद्रा में उसके पाँवों के पास हमारा अँग्रेज़ी सिंह बैठा था। 'यह पूरब है', पिता ने तस्वीर की ओर इशारा करके बताया था और 'यह काली औरत

इंडिया है।' यह हिन्दुस्तान से 1835 में मेरी पहली पहचान थी। हिन्दुस्तान से दूसरी पहचान मैक्समूलर नाम के सज्जन ने करायी थी जो ईस्ट इंडिया हाउस में ऋग्वेद के अनुवाद की फाइल लिये घूमते थे कि ईस्ट इंडिया हाउस उसे छाप दे। बाद में मैक्समूलर साहब ने बताया था कि इस काले हिन्दुस्तान के पास दुनिया की सबसे पुरानी और सबसे ऊँचे दर्ज़े की दार्शनिक किताबें हैं। मेरे लिए हिन्दुस्तान बचपन से ही रहस्यमय हो गया था। हीरे, जवाहारात, काली औरत, दर्शनशास्त्र की मेधा और ईस्ट इंडिया हाउस की पेंटिंग। हमारे साम्राज्य और इस कम्पनी का वह वैभव, गौरव, दर्प जो उस तस्वीर में था, उसके नष्ट होने की घोषणा मेरठ से भेजे गये और कलकत्ता में 12 मई, 1857 की दोपहर को मिले, एक मामूली औरत के तार में थी, 'सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया है। वे अपने बहुत-से अफसरों के घर जला रहे हैं। उन्हें जो भी यूरोपीयन अफसर या सिपाही मिला उसको मार दिया है या घायल कर दिया है। अगर मौसी कल शाम को चलनेवाली हैं तो उन्हें ऐसा करने से रोक लो। स्टेशन से किसी भी गाड़ी का जाना बन्द कर दिया गया है।'

हाइलैंडर्स रेजिमेंट में भरती होने के बाद मैंने कभी नहीं सोचा था कि मुझे हिन्दुस्तान भी जाना पड़ेगा। दो साल रहना पड़ेगा, वहाँ लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी। पर यह सब हुआ और इस तरह हुआ जैसे ईश्वर ने सब पहले से लिखकर रख दिया था, अगर कोई उसे पढ़नेवाला होता।

क्रीमिया युद्ध से वापस आने के बाद हमारी रेजिमेंट को डोवर में रखा गया था जहाँ से अप्रैल, 1857 में उसको लार्ड एल्गिन के नेतृत्व में चीन के अभियान पर जाना था। 20 मई के आसपास हम डोवर से पोर्ट्समाउथ के लिए रवाना हो गये जहाँ सर कौलिन कैम्पबेल के साथ मिलकर हमारी रानी ने हमारी रेजिमेंट का मुआयना किया। 1 जून को तीन कम्पनियाँ, जिनमें एक मेरी भी थी, एक छोटे-से स्टीमर जहाज़ पर सवार होकर प्लाइमाउथ गये। वहाँ 'आगस्टस' नाम के पुराने, 84 बन्दूकों वाले दुमंज़िले जहाज़ पर हम सवार हुए जिसको हमारे चीनी अभियान के लिए तैयार किया गया था।

ऑगस्टस लकड़ी का बना हुआ पुराना जहाज़ था, फिर भी बहुत आरामदायक और तेज़ चलनेवाला जहाज़ था। रास्ते के कुछ द्वीपों पर हम रुके थे। वहाँ हमने अपने-अपने घरों को लिखी चिट्ठियाँ

भी छोड़ी थीं। 9 अगस्त की दोपहर को, जिस समय हम साइमन खाड़ी पर लंगर डाले हुए थे, हमने हिन्दुस्तान में हुए किसी विद्रोह के बारे में सुना। वहीं पर हमें यह भी पता चला कि हम अब चीन न जाकर कलकत्ता जाएँगे। 10 व 11 को बहुत गहमागहमी रही। इस सफर पर जाने के लिए, खाना बनाने के लिए ईंधन भरना था। पीने के लिए पानी भरना था। 11 की शाम को जैसे ही अँधेरा शुरू हुआ, एक स्टीमर आया और हमारे जहाज़ के बिल्कुल पास आकर खड़ा हो गया। बिगुल की आवाज़ पर हमें मालूम हुआ कि उस स्टीमर का नाम 'मारीशस' है जिस पर हमारा मुख्यालय है। हमारे ज़्यादातर अफसर तुरन्त मारीशस पर गये। वह स्टीमर हमारे लिए बहुत ख़ुशियाँ लाया था। हम सबको अपने माता-पिता, मित्रों व प्रेमिकाओं के पत्र प्राप्त हुए जो हमारे जाने के बाद पहुँचे थे और जिनको मारीशस लेकर आया था। हम 12 की सुबह आगस्टस पर साइमन खाड़ी से चले और दिन-रात चलकर 38 दिन के बाद 19 सितम्बर को कलकत्ता पहुँचे। सब मिलाकर जहाज़ पर 900 लोग थे। जहाज़ के चप्पे-चप्पे पर आदमी भरे हुए थे। हमारा जहाज़ बन्दरगाह पर न जाकर समुद्र में नदी मुहाने पर रुका। वहाँ से बाद में हमें स्टीमरों पर बन्दरगाह जाना था।

मारीशस आगे चला गया। 20 की सुबह हमें दो छोटे स्टीमर मिले और हम हुगली नदी पर आगे बढ़े। अगले दिन 21 की दोपहर हमने प्रिसेंप घाट पर लंगर डाला। नदी की यह यात्रा अत्यन्त रोमांचक थी। इस स्टीमर के कमान अफसर और पायलट ने कलकत्ता के समाचार-पत्र हमें दिये। इन अख़बारों से हमें देसी सिपाहियों द्वारा की गयी दिल्ली और लखनऊ की भयानक घेराबन्दी तथा कानपुर में अँग्रेज़ औरतों, बच्चों की नृशंस हत्याओं का पता चला। साथ ही यह भी पता चला कि जनरल हैवलाक, नील व आउट्रम की छोटी-सी सेना, लखनऊ को इन विद्रोहियों से आज़ाद कराने के लिए चल पड़ी है। जब हम गार्डन रीच पार कर रहे थे, तो औरतों और आदमियों से हर घर का छज्जा, छत और बरामदा भरा था। वे रूमाल हिलाकर हमारा स्वागत कर रहे थे। हमारा उत्साह बढ़ा रहे थे। हमारे सब आदमी पूरी हाइलैंड ड्रेस पहने हुए थे। हमारी धुन भी बज रही थी।

25 सितम्बर तक हमारी पूरी नाइंटीथर्ड रेजिमेंट एक बार फिर चिनसुरा में इकट्ठा हुई। 28 को पहली कम्पनी रेल से रानीगंज के लिए रवाना हुई जो लखनऊ जाने के रास्ते में था। उसके बाद रोज़ एक

कम्पनी रवाना होती रही। 7 अक्टूबर को आख़िरी कम्पनी चिनसुरा से चली गयी। रानीगंज से बनारस के लिए बैलगाड़ी पर हमारे सफर करने का इन्तज़ाम किया गया। सड़क की जो हालत थी उसे देखते हुए हर 8 या 10 मील पर बैल बदल दिये जाते थे। हर बैलगाड़ी में छह आदमी होते थे जो सुविधानुसार बैठते या फिर पैदल चलते थे। इस तरह हम लोग 25 से 30 मील तक रोज़ चलते रहे। सुबह दस बजे के आसपास खाना बनाने के लिए कहीं रुकते थे फिर चार बजे चल पड़ते थे ताकि गर्मी से बचने के लिए ठंडक में चलना हो सके। बैल घंटे में दो या ढाई मील की रफ्तार से चलते थे। हमारी कम्पनी 17 अक्टूबर को बनारस पहुँची। बनारस से इलाहाबाद जाने के लिए एक कम्पनी अकेली नहीं जाती थी। दो या तीन कम्पनियों की टुकड़ियाँ फैली हुई थीं और वे हमारी एक कम्पनी की टुकड़ी के लिए बड़ा खतरा हो सकते थे। मेरी कम्पनी इलाहाबाद 19 अक्टूबर को पहुँची। वहाँ हम लोगों को ज़रूरत के सामान दिये गये। उस समय तक इलाहाबाद से कानपुर के रास्ते पर लगभग 48 मील लोहंग तक रेल लाइन पहुँच चुकी थी परन्तु इस पर कोई स्टेशन नहीं बना था। 22 अक्टूबर को तीन और कम्पनियों को मिलाकर मेरी कम्पनी इलाहाबाद से चली। हम लोग खुली ट्रकों और रेलवे ठेकेदारों द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली वैगनों में भरकर चले। लोहंग से कानपुर के लिए हम लोग पैदल कूच करते हुए चले। हमारे तम्बू और दूसरे सब सामान हाथी पर लदे हुए थे।

जब हम लोग फतेहपुर से कूच कर रहे थे तो हमें सुनायी पड़ा कि बाँदा और दीनापुर के विद्रोही, लगभग 10,000 आदमी, तीन हथियारबन्द टुकड़ियों के साथ, जिसमें 18 बन्दूकें थीं, हमारे इलाहाबाद के सम्पर्क रास्ते को रोकने के लिए यमुना पार करके आ रहे हैं। इलाहाबद से हर सम्भव तरीकों से हमारे लिए खाने का राशन व अस्त्र-शस्त्र भेजे जा रहे थे। फतेहपुर में इसके लिए एक डिपो बना लिया गया था। इसलिए इस अफवाह के चलते 93 हाईलैंडर्स की कम्पनी नं. 2 यानी कैप्टन कार्नवलिस की कम्पनी को फतेहपुर में छोड़ दिया गया। हम लोग फतेहपुर से 25 अक्टूबर को चले और दो दिन में 46 मील चलकर 27 की सुबह कानपुर पहुँच गये।

कानपुर में पूरी तरह शान्ति थी। 64 रेजिमेंट के ब्रिगेडियर विल्सन कमांडर थे। व्हीलर की खाई और यादगार बैरक खाली पड़ी

थी। गंगा नदी के दाहिने किनारे पर कानपुर की तरफ अब एक अधिक मजबूत, ऐसी जगह बनायी जा रही थी जिससे अवध जाने के लिए बनाये गये नावों के पुल की हिफाजत की जा सके। इसको पूरी निगरानी के साथ मजबूती ओर नये तरीकों के साथ मिट्टी से बनाया जा रहा था। कानपुर में मिलनेवाले हर कुली को पकड़कर इसमें रात-दिन लगाया गया था। इसके परकोटे और बुर्जों की मजबूती के लिए हर तरह का सामान लगाया जा रहा था। परकोटे में रुई की गाँठे और सिपाहियों के झोलों में भरकर मिट्टी वगैरह लायी जा रही थी। संक्षेप में, जो कुछ भी मिट्टी को भर सकता था, उसका इस्तेमाल परकोटे को मजबूत करने के लिए किया जा रहा था। उसी के साथ एक गहरी खाई भी बनायी जा रही थी जिससे इसकी हिफाज़त ओर अच्छी तरह से हो सके।

हमारे कानपुर पहुँचने के एक दिन पहले ही सर होप ग्रांट की कमांड में एक मजबूत टुकड़ी दिल्ली से भी कानपुर पहुँच चुकी थी। हमारी टुकड़ियों ने अपने टेंट नहीं लगाये थे। हमको जनरल व्हीलर की उसी बैरक के पास की कुछ इमारतों में, जिन पर अभी भी छत बाकी थी, टिकाया गया। मेरी कम्पनी को डाक बँगले में टिकाया गया। कुछ घंटों के आराम के बाद हम लोगों को 10 या 12 के समूह में उन जगहों को देखने के लिए जाने दिया गया जहाँ कुछ दिन पहले ही निरीह अँग्रेज़ी औरतों और बच्चों के साथ विश्वासघात किया गया और फिर बाद में उनका नरसंहार किया गया। हमारे समूह ने सबसे पहले व्हीलर की मशहूर बैरक और खाई को देखा। उसकी परकोटे की दीवार की सबसे अधिक ऊँचाई 4 फीट से भी कम थी और वह भी इतनी पतली थी कि किसी भी तरह से गोलाबारी नहीं झेल सकती थी। अन्दर की बैरकें बिल्कुल टूट चुकी थीं। यही हैरानी की बात थी कि हमारी इतनी छोटी-सी सेना इतने दिनों तक कैसे इन विद्रोहियों का मुकाबला कर सकी? अन्दर के कमरों में अभी तक महिलाओं व बच्चों के कपड़े, टूटे खिलौने, कटी तस्वीरें, किताबें, वाद्ययन्त्र पड़े हुए थे। किताबों में मैंने गैलिक भाषा का 'नया टेस्टामेंट' उठाया जिस पर किसी का नाम नहीं लिखा था। उसके बिना लिखे पन्ने फाड़ दिये गये थे। मुझको लगा कि शायद वे बन्दूक की नली में ठूँसने के लिए इस्तेमाल किये गये होंगे क्योंकि इसके नज़दीक ही एक टूटी हुई इकनाली बन्दूक पड़ी हुई थी जो कि 9 पौंड गोले से तोड़ी गयी थी।

वह गोला भी नज़दीक पड़ा था। मैंने वह टेस्टामेंट रख लिया जो अभी भी मेरे पास उस शहर की स्मृति चिह्न की तरह सुरक्षित है। उसमें साम व गैलिक भाषा के वाक्य अभी शेष हैं परन्तु मैथ्यू का पहला अध्याय और दूसरे अध्याय के सातवें गीत तक गायब हैं। यह टेस्टामेंट ज़रूर उस किले में किसी स्कॉट हाइलैंडर का ही होगा। मैंने बाद में कई बार सोचा कि मैं उसे अपने देश की हाइलैंड सोसाइटी को इस विद्रोह की स्मृति के रूप में भेज दूँ पर मैंने ऐसा नहीं किया। उसे अपने पास उसी तरह रख लिया जैसे माहरुख की अँगूठी रखी।

30 अक्टूबर को जनरल होप ग्रांट की ब्रिगेड ने 93 हाईलैंडर्स के कुछ हिस्से के साथ हथियार व दूसरे सामान को लेकर नाव के पुल को पार किया और लखनऊ के रास्ते होते हुए अवध में प्रवेश किया। मेरी कम्पनी दूसरी तीन कम्पनियों के साथ कानपुर में तीन दिन और रुकी फिर 2 नवम्बर को नाव का पुल पार करके अवध में घुसी। पुल पार करके थोड़ा फासले पर हम लोगों ने अपना डेरा डाला। 3 नवम्बर की सुबह कानपुर की तरफ से मिट्टी के किले से सलामी की तोप दागी गयी। गहरी खुशी के साथ हमें पता चला कि हमारे कमांडर इन चीफ कॉलिन कैम्पबल भी कलकत्ता से यहाँ पहुँचे हैं।

3 नवम्बर की दोपहर तक दूसरा बहुत-सा सामान और हथियार तथा पील की 24 पौंडर तोप भी नदी पार करके पहुँच गये। 4 को सूर्योदय से काफ़ी पहले ही हम लोग लखनऊ की ओर चल पड़े। कानपुर और उसके भयानक नरसंहारों को तो हमने पीछे छोड़ दिया था, परन्तु उसका भूलना या उसकी अनदेखी हमारे लिए मुमकिन नहीं थी। हम सबके अन्दर कानुपर कहीं-न-कहीं धँसा हुआ था, अपनी पूरी बदसूरती, वीभत्सता और खूँरेज़ी के साथ। नावों के इस पुल से लेकर, लन्दन की पार्लियामेंट तक।

कानपुर में ही हमने लावारिस लाशों के बारे में पहली बार सुना। हमने देखा भी कि हमें वो कहीं भी मिल जाती थीं। वे कहाँ से आती थीं, किसकी होती थीं, पता नहीं चलता था। हमारे सामने ही यह बात शुरू हुई थी कि इन लावारिस लाशों के अन्तिम कर्म के लिए एक कमेटी बनायी जाये जो इन इनसानों को उनके आख़िरी समय में, उनके धर्म के अनुसार, उनके ईश्वर तक, पूरी इज़्ज़त के साथ पहुँचाए। पता नहीं कमेटी का क्या होगा पर यह सोचना ही बहुत अच्छी और बेहद ज़रूरी बात है। हम सिपाहियों के लिए तो ख़ासतौर से यह

ज़रूरी है, क्योंकि हम सब कहाँ, कब, किस तरह मरेंगे नहीं जानते।

लखनऊ की ओर कूच करते समय यह बिल्कुल साफ़ था, और न्यूनतम बुद्धिवाला भी यह समझ सकता था कि हम दुश्मनों के इलाके में हैं। रास्ते का कोई गाँव, सिवाय कुछ मरियल कुत्तों के, आबाद नहीं था। हैवलाक के आने के समय ही सब गाँव वाले भाग गये थे और वापस नहीं लौटे थे। यह समझने के लिए, कि अवध की पूरी आबादी हमारे विरुद्ध थी, किसी गहरी बुद्धि, दर्शन या विश्लेषण की आवश्यकता नहीं थी।

सुनसान गाँवों के कारण हमारी दशा बहुत दयनीय थी। न केवल यहाँ के बल्कि इलाहाबाद से हमारे साथ आनेवाले कैम्प के आदमी भी भाग गये थे, जिनमें बकरी चरानेवाले, डबलरोटी, दूध, मक्खन बेचनेवाले भी थे। वे कानपुर वापस चले गये थे। उनमें से किसी के पास हमारे साथ अवध में घुसने का साहस नहीं था। यह सब, खुली भूख और अच्छे स्वास्थ्यवाले हम जवान सैनिकों के लिए बहुत ही निराश करनेवाला था जिनको अपने सीमित राशन के अलावा कूच के आख़िरी में चलनेवाले इन लोगों के बाज़ार की चपातियों, एक छटाँक मक्खन और एक जग बकरी के दूध पर निर्भर रहना पड़ता था। यह त्रासदी और भी गहरी हो जाती थी जब तीन दिन के बिस्कुट हमें एक बार में ही दे दिये जाते थे। वे भी एक पाउंड में चार होने के बजाय, हल्के होते थे। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं कूच पर चलते-चलते ही अपने बैग से खाना आरम्भ कर देता था और पहले पड़ाव पर पहुँचने से पहले ही मेरे तीन दिन के बिस्कुट ख़त्म हो जाते थे। मुझे हाज़मा ख़राब होने का डर कभी नहीं रहा। 20 या 25 मील के कूच में मामूली वज़न के बारह बिस्कुट खा जाना एक जवान व स्वस्थ पेट के लिए कोई बड़ी बात नहीं थी।

दूसरे लोगों के साथ-साथ हमारे बावर्ची व धोबी भी भाग गये थे। हम 93 हाईलैंडर्स की समस्या इतनी नहीं थी क्योंकि हम ताज़े-ताज़े क्रीमिया से आये थे, जितनी कि पुरानी हिन्दुस्तानी रेजिमेंट की थी। खाना पकाने के लिए हर टेंट से आदमी छाँट दिये गये थे लेकिन खाना बनाने के बर्तन भी वे बावर्ची या तो अपने साथ ले गये थे या फिर हमारे सामान में वहाँ लाये ही नहीं गये थे। सेना की पिछली पंक्ति के सिपाहियों को कुछ नहीं पता था। फिर भी, हर टेंट के पास ताँबे के बड़े-बड़े बर्तन थे जिनको खाना पकाने के काम में लगा दिया

गया। इसी तरह सुनसान गाँव में मिट्टी के कछ बर्तन पड़े थे। उनका भी इस्तेमाल कर लिया गया। हाइलैंडर्स, ख़ासतौर से वे, जो पुराने सिपाही हैं, खाना पकाने के लिए इस तरह का जुगाड़ करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।

हम लोगों के कैम्प के साथ चलनेवाले बाज़ारवालों का हमें छोड़कर चला जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। हिन्दुस्तान में सेना के साथ एक पिछलग्गू सेना लगी रहती है। इसका मुखिया 'बाज़ार कोतवाल' होता है। ये लोग अपने घर का सामान व अपने परिवार को अपने साथ रखते हैं। अपना घर छोटे-छोटे कपड़ों के तम्बुओं में बनाते हैं। मेरे लिखने के समय पर इन लोगों में जो ज़्यादा उमर के थे वे लार्ड लेक की विजयों की और 1840-42 के काबुल युद्ध की बात करते थे, जबकि उनके जवान लड़के हार्डिंग की पंजाब की विजयों की बात करते थे। इनकी नयी पीढ़ी के लोग अपने पिताओं का पेशा अपनाते थे जैसे मोची, बावर्ची, नाई, जूता पॉलिश इत्यादि। वे कैम्पों में ही बड़े होते थे, लेकिन लड़ाकू तबीयत के नहीं होते थे। वे नियमित सेना के पीछे-पीछे रहते थे। उनमें से अधिकतर तो निचली जाति के हिन्दू होते थे और भिश्तियों के अलावा बहुत थोड़े मुसलमान भी होते थे। मैं कहना चाहूँगा कि केवल भिश्तियों व पालकी कहारों ने अवध में घुसते समय हम लोगों का साथ नहीं छोड़ा था। देसी लोगों को पूरा विश्वास था कि हम लोगों की सेना निश्चित ही मार डाली जाएगी। ऐसा विश्वास इसलिए था क्योंकि उन्हें मालूम था कि हमारे पीछे, हमारे विरुद्ध, विद्रोही सिपाहियों की एक शक्तिशाली सेना जमा हो रही है जिसमें ग्वालियर की सेना थी जो कभी हारी नहीं थी और अजेय समझी जाती थी। उसके अतिरिक्त भारत के विद्रोही थे जो नाना साहब, कुँअर सिंह, तात्या टोपे इत्यादि के नेतृत्व में कानपुर पर फिर हमला करने के लिए जमा हो रहे थे। यह सच हमको बाद में मालूम हुआ, जब कानपुर को फिर से वापस लिया गया। उसकी कहानी मैं आगे बताऊँगा। फ़िलहाल हम अपने अवध में प्रवेश करने की ओर चलें।

हर घंटे में तीन मील के हिसाब से हम लखनऊ के निकट पहुँच रहे थे। हमने अपने पहले पड़ाव पर पहुँचने के समय ही शत्रुओं की तोपों को रेजीडेंसी पर गोले दागते सुना। थके हुए होने पर भी, तोप की हर आवाज़ हमारे आदमियों को उत्साहित कर रही थी। वे सब

दिक्कतों को पार करके रेजीडेंसी के अन्दर घिरे हुए अपने आदमियों, असहाय स्त्रियों तथा बच्चों को मदद करने के लिए तुरन्त पहुँचना चाहते थे। मैं कहना चाहूँगा कि शत्रुओं के कायरतापूर्ण विश्वासघात तथा स्त्रियों व बच्चों की नृशंस हत्या के कारण, यह विद्रोह बिल्कुल निर्दयी, बिना जड़ोंवाला नरसंहार हो गया था। इसमें कोई भी, किसी प्रकार की रियायत करने को तैयार नहीं था। लखनऊ को आख़िरी रूप से आज़ाद कराना, कानपुर को दुबारा जीतना और ग्वालियर सेना की 6 दिसम्बर, 1857 की पूर्ण पराजय तक, योरुपियनों के लिए अपने कैदियों की सुरक्षा करना असम्भव था, इसलिए वे किसी कैदी को जीवित नहीं पकड़ते थे। जहाँ तक विद्रोहियों का प्रश्न है, उनको जैसे ही कोई ईसाई या गोरी चमड़ीवाला दिखायी पड़ता था, वे उसको तुरन्त बिना किसी दया या संकोच के तुरन्त मार डालते थे। यदि कोई ऐसे किसी संकटग्रस्त योरुपियन की सहायता करने की कोशिश करता या उसे छिपाने का प्रयास करता, तो उसकी ज़िन्दगी व जायदाद हमेशा ख़तरे में होती थी। इस तरह के युद्ध में भाग लेना किसी भी सेना के लिए बहुत भयानक तथा हतोत्साहित करनेवाला था।

10 नवम्बर को पूरी सेना आलमबाग के सामने 5 मील की दूरी पर लखनऊ की मुक्ति अभियान के लिए एकत्र हुई। इसमें सब टुकड़ियों को मिलाकर लगभग 5000 सैनिक थे। उनमें सम्पूर्ण रेजिमेंट केवल 93 हाईलैंडर्स की थी। इसकी 10 कम्पनियाँ वहाँ पहुँच गयी थीं जिसमें एक हज़ार के ऊपर नौजवान थे। उनमें से लगभग 700 की छातियों पर क्रीमिया मेडल लगे हुए थे।

14 तारीख की दोपहर को पूरी सेना कॉलिन कैम्पबल के मुआयने के लिए एक लाइन में खड़ी की गयी। लाइन के आखिर में बाईं तरफ हमारी 93 रेजिमेंट खड़ी थी। हम पूरे हाइलैंड परिधान में थे। कलगीदार टोपी और काले लहराते हुए पंख के साथ हम हृष्ट-पुष्ट जवान थे। मैंने उस दिन के पहले कभी इतनी अनूठी रेजिमेंट नहीं देखी थी जैसी हमारी 93 उस दिन दिख रही थी। मुझे उस दिन, और आज भी, ऐसे महान साम्राज्य की, ऐसी रेजिमेंट का हिस्सा होने का गर्व है।

सर कॉलिन कैम्पबेल दाहिनी तरफ से आये और हर टुकड़ी के सामने रुककर, एक संक्षिप्त भाषण दिया। समस्त 93 की आँखें उनकी तरफ लगी हुई थीं। वे आपस में बात कर रहे थे कि हर टुकड़ी ने

उनकी बातें तो पूरी शान्ति से सुनीं परन्तु किसी ने एक भी हर्षध्वनि से उनका स्वागत नहीं किया है। अन्त में वे हमारे पास आये और हमको 'सावधान' किया गया। हम सब लोग पास-पास आ गये ताकि उनकी बातों को ध्यान से और पूरा सुन सकें। आते समय सर कॉलिन कैम्पबेल के चेहरे पर चिन्ता व थकावट की रेखाएँ थीं। हम लोगों के स्वागत की हर्षध्वनि आलमबाग और इसके आसपास के जंगलों तक सुनाई दी। उन्होंने मुस्कराते हुए अभिवादन ग्रहण किया। उनके चेहरे की चिन्ता और थकावट की रेखाएँ मुस्कराहट में बदल गयीं। मैं उनके बिल्कुल निकट था और उनको पूरा सुन सकता था। सलामी लेते हुए उन्होंने लगभग इन शब्दों में हमें सम्बोधित किया—'93वें, जब मैंने तुम लोगों से पोर्ट्समाउथ में विदा ली थी तब कभी सोचा भी नहीं था कि मैं तुम लोगों से फिर मिलूँगा। मुझे आशा थी कि तुम लोगों के वापस देश आने से बहुत पहले मुझे बिगुल की आवाज़ के साथ, या शायद बैग पाइप की आवाज़ के साथ अन्यत्र जाना पड़ेगा। परन्तु दूसरी शक्ति ने एक अन्य निर्णय लिया और मैं एक बार फिर तुम लोगों का नेतृत्व करने के लिए आया हूँ। मेरे बच्चों, मैं तुमको बता देना चाहता हूँ कि यह कार्य कठिन व ख़तरनाक है—क्रीमिया में जो हमने झेला उससे कहीं अधिक। परन्तु मुझे विश्वास है कि तुम लोग इन संकटों का मुकाबला कर सकोगे। हमारे देशवासियों की—बल्कि यूरोप तथा पूरे ईसाई संसार की आँखें हम लोगों के ऊपर लगी हैं। हमें लखनऊ रेजीडेंसी में घिरे हुए अपने देशवासियों को, स्त्री व बच्चों को मुक्त करना है। जीवन संकट केवल उन सैनिकों का ही नहीं है, जो हर हाल में कटने या मारने के लिए तैयार रहते हैं, बल्कि हम लोगों को, उन असहाय स्त्रियों और बच्चों को मुक्ति दिलानी है जिनकी समस्या मृत्यु से भी भयंकर है। तुम जब भी शत्रु से मिलो, तो याद रखो कि उसके पास हथियार हैं ओर गोला-बारूद भी। वह भी ऐसे ही खेल सकता है जैसे तुम, विशेषकर दीवारों के पीछे छिपकर। इसलिए तुम जब आक्रमण करो, तब जितनी जल्दी हो सके आपस में मिल जाओ। साथ-साथ रहो ओर तलवार का प्रयोग करो। याद रखो कि कायर सिपाही, जो स्त्रियों व बच्चों को मारने के लिए उत्सुक रहते हैं, किसी यूरोपीय सैनिक के सामने खड़े नहीं हो सकते हैं, विशेषकर यदि वह अस्त्र से सुसज्जित हो। 93! तुम ही मेरे बेटे हो। मैं इस कार्य के लिए तुम पर भरोसा करता हूँ।'' सैनिकों की लाइन से आवाज़ आयी, ''हाँ,

हाँ, सर कॉलिन, आप हम पर भरोसा करें, हम आप पर। हम लखनऊ से अपनी स्त्रियों व बच्चों को निकालकर लाएँगे वरना आपके सामने ही इस कोशिश में जान दे देंगे।'' इसके साथ पूरी रेजिमेंट में फिर हर्षध्वनि गूँजी जो फिर पूरी लाइन से एक साथ उतने ही उत्साह और जोर-शोर से निकली।

12 नवम्बर की दोपहर तक सर कॉलिन कैम्पबल की अध्यक्षता में लखनऊ को मुक्त करानेवाली सेना के सारे अंगों को मिलाकर केवल 4550 सैनिक थे और 32 तोपें थीं। इनमें सबसे भारी 24 पाउंडर थी, और दो 8 हाउत्जर थीं।

लगातार लड़ाइयाँ लड़ते हुए हमने धीरे-धीरे उस विद्रोह को ख़त्म करना शुरू कर दिया था। हम जिनसे लड़ रहे थे वे सब भी बहुत बहादुर लोग थे। दीन-दीन चिल्लाते हुए वे हमारे ऊपर झपटते थे। उनके हाथों में दमिश्क की बनी हुई ख़ास तलवारें होती थीं। वहीं हमने पहली बार यह सुना कि इस विद्रोह में उनकी दमिश्क की तलवारों ने कहर मचा रखा है। हमारी तलवारें उनके सामने बेहद मामूली साबित हो रही थीं। मुझे यह सुनकर थोड़ी हैरानी भी हुई क्योंकि हम अपनी तलवारों से बड़ी लड़ाइयाँ जीतते थे। मैंने इस बारे में जहाज़ में ही पता किया था तो मुझे कुछ बातें पता चलीं जो लिखना ज़रूरी है। हमारी तलवारें बिल्कुल सीधी थीं जबकि उनकी तलवारें थोड़ी-सी घूमी होती थीं। हमारी धार भी उनकी धार की तरह तेज़ नहीं थी। उनके पास अपनी तलवारों में धार लगाते रहने का इन्तज़ाम साथ ही रहता था। वे जब ज़्यादा इस्तेमाल होती थीं तो वे उसे धार लगाकर फिर उतनी ही तेज़ बना लेते थे। मैंने बाद में देखा था कि किस तरह वे इनसानी हाथों, पैरों और सरों को काटते थे। बाद में पंजाब में रामनगर की लड़ाई में यह बात साफ़ हुई थी। वे अपनी तलवार की धार से एक बाल को भी काट सकते थे। सिखों से लड़ाई में हमारी तलवार इतनी कुन्द थी कि उनकी पगड़ी भी नहीं काट पाती थी। वे इसे जानते थे। अपनी पीठ पर वे भैंसे के चमड़े का पट्टा पहनकर घोड़ों की गर्दन पर लेट जाते थे। हमारी तलवारें बेकार साबित होती थीं। सर पर पगड़ी, पीठ पर मोटे चमड़े का बख़्तर। वे हमारे सिपाही को अपनी घूमी हुई, धारदार दमिश्क की तलवार से सीधे दो हिस्सों में काट देते थे। हमारे लचीले लोहे के मुकाबले उनका कास्ट आइरन बहुत कड़ा होता था। लचीला लोहा इनसान की हड्डी नहीं

काट सकता। इसे किसी पेड़ के तने पर देखा जा सकता है। उनकी तलवार चार गुना गहरी अन्दर धँसेगी। मुझे लगता है तलवार का सिद्धान्त यही होना चाहिए कि वह टूटेगी, पर मुड़ेगी नहीं। बेहतर है कि उसका वार व्यर्थ ही न जाये।

मुझे लगता है दमिश्क की तलवारें बनाने की कला अब ख़त्म हो रही है। मुझे एक बूढ़ा सिख मिला था जिसने रणजीत सिंह की फौज में लड़ाई की थी। उसने बताया था कि दमिश्क की तलवार में लोहे के साथ आर्सनिक मिलाकर ढलाई होती है। इससे उसमें बहुत मजबूती आती है। यह तलवार को ज़ंग से बचाती है और उसकी धार को बहुत तेज़ कर देती है। उसने तलवार को जाँचने का तरीका भी बताया था। उसने बताया था कि नदी से ताज़ी बड़ी मछली पकड़कर इसे एक मुलायम लचीली सतह पर रखो। इसे किसी मुलायम कपड़े से ढक दो। वह तलवार, जो मछली को सबसे मोटी जगह पर, बिल्कुल साफ़, दो हिस्सों में नहीं काट देती, वह किसी काम की नहीं है। वे लोग अपनी तलवारों से इनसान को इसी तरह काटते थे। हमारी तलवार न इनसान, और न ही मछली को इस तरह काट सकती थी। हमने कितने सिपाही देखे जिनके शरीर इस तरह और इस सफाई से अलग-अलग हिस्सों से कटे थे, जैसे वे हिस्से कभी वहाँ थे ही नहीं। तलवार का यही धर्म भी है। दमिश्क की तलवारें यही करती थीं जिन्हें वे हमारे लिए नफरत भरी आँखों के साथ पूरी कुशलता से चलाते थे। दिलकुशा, सिकन्दराबाग और नज़फ़गढ़ में वे बहुत बहादुरी से लड़े, पर सब मारे गये। इन लड़ाइयों में उनकी लाशें और कटे हुए अंग जमीन पर उसी तरह बिखरे थे, जैसे खेल ख़त्म होने के बाद ताश के पत्ते मेज पर छोड़ दिये जायें। उनके पास सिर्फ़ जज़्बा था, हथियार नहीं थे। उनके पीछे हमारी तरह कैम्पबेल जैसा कोई कमांडर इन चीफ नहीं था। पर उस जज़्बे से ही उन्होंने हमसे लम्बे समय तक लड़ाई लड़ी। उनके जज़्बे का इल्म मुझे तब हुआ जब मैं आलूबुखारा बेचनेवाले से मिला। इस पूरी लड़ाई में मेरे लिए यह सबसे यादगार घटना है जिसके लिए मैं यह सब लिख रहा हूँ। मैं चाहता हूँ मेरे बाद मेरे बच्चे इसे पढ़ें और याद रखें। वे समझें कि इनसानी जज़्बात, और इनसानी सुख-दुख एक होते हैं, चाहे वे लन्दन में हों, लखनऊ में हों या दमिश्क में हों। इनसान एक ही तरह से मुहब्बत करता है,एक ही तरह से नफ़रत करता है। एक ही तरह से लड़ता है और लाश बन

जाता है। बस फ़र्क़ इतना होता है कि उन्हें लाशों में बदलनेवाले हथियार अलग होते हैं, मुल्क अलग होते हैं, लोग अलग होते हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरे बच्चे समझें कि वे सब लोग, जो इस तरह मार दिये जाते हैं, वे भी जीवन की हर खूबसूरती के हक़दार थे। उनका यह हक़ कैसे छिन जाता है और कैसे उन्हें एक लावारिस मौत मिल जाती है, यह ईश्वर ही बेहतर जानता है। मैं वह किस्सा अब बयान करता हूँ।

2 फरवरी, 1958 को हम फतहगढ़ से कानपुर होते हुए अवध के लिए वापस फिर चले। हम लोग दूसरी बार एक दिन के लिए ही कानपुर रुके थे। 10 फरवरी को हम कानपुर से उन्नाव जा रहे थे। हमें घेरेबन्दी की गाड़ी और युद्ध-सामग्री की रक्षा करने के लिए वहाँ कई दिनों तक कैम्प करना था।

उन्नाव में ही यह विचित्र घटना घटी जिसका मैं वर्णन करना चाहता हूँ।

फरवरी 1859 के आख़िरी में लखनऊ की घेराबन्दी के लिए उस शहर के बाहर फौज इकट्ठा की जा रही थी। यह फौज कानपुर से आलमबाग के बीच के रास्ते पर अजगर की कुंडली की तरह इकट्ठा हो रही थी। एक मजबूत डिवीजन जनरल सर एडवर्ड लुगार्ड, ब्रिगेडियर एड्रियन होप के नेतृत्व में उन्नाव में इकट्ठा हो रही थी जिसमें 42 व 93 हाइलैंडर्स, पील की नैवल ब्रिगेड, 53 व 9 लांसर्स, घेरेबन्दी की गाड़ी, तोपों की टुकड़ी, 4 पंजाब इन्फैक्ट्री तथा अन्य पंजाबी टुकड़ियाँ थीं। हम लोग लगभग 10 दिनों से वहाँ कैम्प कर रहे थे। कई दिनों की एकरसता और ऊब कभी-कभी सामने से आनेवाली दूर की गोलीबारी की आवाज़ से टूट जाती थी। अचानक हमें ख़बर मिली कि आलमबाग में जनरल आउटरम की सेना पर लखनऊ से आयी विद्रोहियों की फौज ने हमला कर दिया है। वे अचानक हमला करते थे। कभी मौलवियों के नेतृत्व में और कभी स्वयं बेगम के नेतृत्व में। कभी-कभी हमारे पीछे से भी हल्की आवाज़ें आ जाती थीं। पता चलता कि वे सर राबर्ट नैपियर व उनके साथ के इंजीनियरों की आवाज़ें हैं जो कानपुर घाट पर बने शिव व काली के मन्दिरों को तोड़ने से आ रही हैं। ऐसा नहीं था कि वे मन्दिर बदले की भावना से तोड़े जा रहे थे, जैसा कि कुछ लोगों ने कहा, बल्कि वह गंगा के ऊपर बने हुए नावों के पुल की मजबूती व सुरक्षा

के लिए एक फौजी ज़रूरत थी।

इन फुर्सत व सुस्ती के दिनों के बीच एक दिन मैं अपने तम्बू में लेटा हुआ डाक से आये अपने देश के कुछ अख़बार पढ़ रहा था कि मुझको एक आवाज़ सुनायी पड़ी। एक आदमी कैम्प में चिल्लाता हुआ जा रहा था 'सुन्दर, स्वादिष्ट आलूबुखारे...पहले चखो फिर खरीदो।' अपने यकसाँ राशन के गोश्त व बिस्कुट के बीच में आलूबुखारे की आवाज़ हम सबको बहुत रसीली लगी। उसको तम्बू में बुलवाया गया। आलूबुखार बेचनेवाला हल्के गोरे रंग का, सुन्दर-सा देसी जवान आदमी था। वह बिल्कुल साफ़-सुथरे, सफेद कपड़े पहने हुए था। उसकी काली घुँघराली दाढ़ी व मूँछ जॉन कम्पनी के मुसलमान अफसरों की तरह सजी हुई थी। उसका उभरा हुआ माथा, नुकीली नाक व बुद्धिमान आँखें, सब मिलाकर उसकी शक्ल देसी लोगों से बिल्कुल अलग थी। दूसरी तरफ उसके साथ का जो कुली सर पर सामान रखे हुए था, वह एक निहायत डरावनी और शैतानी शक्ल का आदमी था। ऐसा आदमी मैंने कभी नहीं देखा था। जैसा कि दस्तूर था, मैंने कैम्प के नॉन कमीशंड अफसर की हैसियत से उससे पूछा कि क्या उसके पास कैम्प में आने का अधिकार पत्र है? उसने कहा, "जी हाँ, सारजेंट साहब, मेरे पास पक्का, लिखा हुआ अधिकार पत्र है और वह भी ब्रिगेड मेजर साहब के हस्ताक्षर वाला नहीं, बल्कि स्वयं ब्रिगेडियर माननीय एड्रियन होप साहब के हस्ताक्षर वाला है। मेरा नाम जैमी ग्रीन है और मैं रेजिमेंट का मेस खानसामा हूँ" (रेजिमेंट का नाम उसने बताया वह मैं इस समय भूल गया हूँ) उसने कहा, "मैं कानपुर के मजिस्ट्रेट व कलक्टर, शेरर साहब द्वारा लिखा हुआ जनरल होप साहब के नाम का परिचय-पत्र लेकर अभी उन्नाव आया हूँ। आप जनरल होप साहब की लिखावट तो पहचानते ही होंगे।" उसके पास जनरल होप का बाकायदा लिखा हुआ अधिकार पत्र था जिसमें उसको आलूबुखारा बेचने के लिए कैम्पों में जाने का अधिकार था। ब्रिगेडियर साहब की लिखावट की हम 93 रेजिमेंट के नान कमीशंड अफसरों को पहचान थी क्योंकि वे इस रेजिमेंट के कर्नल थे।

जैमी ग्रीन की पोशाक के अलावा जो बात मुझे सबसे अधिक प्रभावशाली लगी, वह थी उसकी शुद्ध व तरल अँग्रेज़ी भाषा। वह मेरे पास बैठ गया। उसने अँग्रेज़ी अख़बार देने की इच्छा प्रकट की, इसलिए कि वह जान सके कि अँग्रेज़ लोग इस बग़ावत के बारे में क्या

सोचते हैं। वह लखनऊ की घेराबन्दी के लिए सेना के जाने की तैयारी, उनकी संख्या तथा नयी रेजिमेंट की लखनऊ की आम हवा झेल पाने की समस्या इत्यादि पर बातें करने लगा। बातचीत के बीच जब मैंने उसकी धाराप्रवाह अँग्रेज़ी के बारे में पूछा तो उसने कहा कि उसके पिता यूरोपियन रेजिमेंट के मेस खानसामा थे और उसे बचपन से ही अँग्रेज़ी बोलने की आदत पड़ गयी है। उसने कहा कि उसने स्कूल में भी अँग्रेज़ी पढ़ने और लिखने की शिक्षा पायी है। साथ में वह मेस में क्लर्क की नौकरी भी करता था जहाँ उसको मेस का हिसाब अँग्रेज़ी में रखना होता था। इस बातचीत के बीच ही तम्बू के मेरे दूसरे साथी उसका लाया हुआ आलूबुखारा चख रहे थे। उनमें से एक सिपाही का ग्रीन के नौकर से झगड़ा हुआ जब उसने पैसे देने से मना कर दिया। जब मैंने ग्रीन से उसके शैतान से दिखते नौकर के बारे में पूछा, तो उसने कहा, ''आप उसके लिए परेशान न हों। उसका नाम मिकी है और वह आइरिश है। उसकी माँ 87 रॉयल आइरिश रेजिमेंट के बाज़ार की है और वह पूरी रेजिमेंट को, सारजेंट मेज़ के कुक समेत, अपना पिता समझता है। वह अभी पंजाब से आगरा टुकड़ी के साथ आया है परन्तु टुकड़ी के कमांडिंग अफसर ने कानपुर आकर उसको बर्खास्त कर दिया क्योंकि कमांडिंग अफसर की एक जवान बीवी है और उसको मिकी के सुन्दर चेहरे से ईर्ष्या हो रही थी।'' जैमी ग्रीन ने फिर कहा, ''ख़ैर, मज़ाक़ अपनी जगह है, परन्तु किसी आदमी का आलूबुखारा खाकर पैसा न देना शायद अँग्रेज़ी मज़ाक है।'' इस पर तम्बू के आदमियों ने ग्रीन के व्यवहार से प्रसन्न होकर उस आदमी को डाँटा जो आलूबुखारा खाकर भी पैसे नहीं दे रहा था। उसको पैसे देने पर मजबूर किया गया। इसके बाद जैमी ग्रीन व मैकी दूसरे तम्बुओं की तरफ चले गये। ग्रीन ने मुझसे कुछ ताज़े अख़बार माँग लिये। उस आलूबुखारा बेचनेवाले से यह मेरी पहली मुलाकात थी।

उससे दूसरी मुलाकात ज़्यादा दिलचस्प पर दुखान्त थी। ऊपर बताये हुए दिन की अगली शाम को, जब मैं गार्ड ड्यूटी पर था, तो कार्पोरल अर्दली मेरे पास आया। उसने बताया कि आलूबुखारा वाला जैमी ग्रीन लखनऊ के सिपाहियों का जासूस था और उसे पकड़ लिया गया है। ब्रिगेड-मेजर द्वारा उसकी जाँच चल रही है। उसने कहा कि रात हो जाने के कारण उसकी फाँसी नहीं हो पाएगी, इसलिए वह मेरे पास, मेरी निगरानी में हिफाजत के साथ, क़ैद में रखा जाएगा। इसके

लिए मुझे अतिरिक्त आदमी भी दे दिये जाएँगे। मैं नहीं जानता क्यों, पर मुझे यह ख़बर सुनकर दुख हुआ। थोड़ी हैरान तो हुई थी कि इतनी अच्छी शिक्षावाला और ऐसा सभ्य आदमी, कैसे मामूली तरीके से कैम्प के साथ चलनेवाला हो सकता है, परन्तु अब यह जानकर कि वह एक जासूस था, यह हैरानी ख़त्म हो गयी।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि इन विद्रोहियों के ख़िलाफ़ हममें से हर आदमी नाराज़ है। उस पर यदि कोई उनका जासूस निकले, तो उसके ख़िलाफ़ यह नाराज़गी और भी बढ़ जाती है। एशिया के अन्दर लड़ाइयाँ यूरोपीय लड़ाइयों से अधिक निर्दयतापूर्वक लड़ी जाती हैं। यह गदरवाली लड़ाई तो अन्य एशियाई लड़ाइयों में भी सबसे ज़्यादा क्रूर थी। किसी अँग्रेज़ फौजी के लिए ऐसी लड़ाई में शामिल होना भयानक व निर्मम था जहाँ न कोई रियायत माँगी जा सकती थी, न दी जा सकती थी। यह पूरी तरह से एक मारकाट थी, न कि कोई लड़ाई थी। कोई ईसाई या गोरा यदि बागी को मिल जाता था, तो वह मार दिया जाता था। इसी तरह यदि कोई देसी, किसी ईसाई को बचाने की कोशिश करता या छिपा लेता, तो वह बागियों द्वारा अवसर मिलते ही तुरन्त निर्दयतापूर्वक मार डाला जाता था। इसी तरह, यदि कोई बागी मिल जाये, जिसके पास हथियार हों या कोई देसी मिल जाये, जिस पर शक हो, तो उसको भी यूरोपीय, चाहे वह फौजी हो या असैनिक, अवसर मिलने पर तुरन्त मार देता था। सिर्फ़ और सिर्फ़ हत्या सबका इकलौता मकसद था। इसमें सेना के बने-बनाये नैतिकता के सारे नियम एक क्षण में दोनों तरफ से रौंद दिये जाते थे। फौजी कानून के अन्तर्गत किसी को भी दी जानेवाली सजा सख्त थी और तत्काल थी। फौजी टुकड़ियों से जुड़े हुए असैनिक अधिकारी के सामने देसी विद्रोहियों पर मुकदमा चलाया जाता था। हालाँकि वह मुकदमा वास्तव में तो केवल दिखावा मात्र और क्रूरता को लम्बा खींचना होता था। जहाँ तक मेरा अनुभव है, फौजी टुकड़ियों से संलग्न असैनिक अधिकारी ही अधिक क्रूर थे। यह सोचकर, कि वे विद्रोह को दबाने में मदद कर रहे हैं, वे अपनी क्रूरता को उचित समझते थे। उनका विश्वास था कि विद्रोहियों ने कहीं अधिक जुर्म किये हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि इन अधिकारियों को बगावत में देसी, सिपाहियों के भयानक कार्यों के बारे में, आम फौजी सिपाही के मुकाबले कहीं ज़्यादा बातें मालूम थीं। जैसे स्त्रियों और बच्चों की हत्या, उनके प्रति दुव्यर्वहार वग़ैरह।

इसकी ख़बर आम सिपाही को नहीं मिलती थी। इसके अलावा अपनी स्थिति व अनुभव के कारण, उनको यह भी बेहतर तरीके से मालूम था कि हमारे महान राज्य को इस ख़तरे से कैसे बचाया जाये। जहाँ तक सर कॉलिन कैम्पबल का प्रश्न है, वे तत्काल किसी कानूनी कार्यवाही के विरुद्ध थे और असैनिक अधिकारियों द्वारा थोक में दी गयी फाँसी को नापसन्द करते थे। सिपाही होने के नाते वे हथियारों के साथ पकड़े गये विद्रोहियों को अथवा जिनका दोष सबको पता हो, उनको छोड़ने के कतई पक्ष में नहीं थे। (मुझे पक्का पता है कि वे दिल्ली के बादशाह के लड़कों के प्रति मेजर हडसन के व्यवहार को उचित मानते थे) परन्तु मुझे याद है कि फतेहगढ़ से कानपुर जाते समय, जब उन्होंने बीच के आम के बाग में पेड़ों से लटकी, सड़ी हुई लाशों को देखा, जहाँ फौजी दस्ते से संलग्न विशेष असैनिक कमिश्नर कुछ दिन पहले गुज़रे थे, तो वह बहुत दुखी हुए थे।

परन्तु अच्छा होगा कि मैं अपनी कथा पर लौटूँ। इसे विद्वान्, इतिहासकारों, नीति निर्धारकों और बड़े सेनापतियों के लिए छोड़ दूँ कि वे इन सबके लिए किस तरह सोचते हैं और आगे क्या करना चाहते हैं। तो यह ख़बर मिलने के कुछ देर बाद ही, कि जैमी ग्रीन जासूसी में पकड़ा गया है, प्रावोस्ट मार्शल का स्टाफ आलूबुखारे वाले और उसके शैतान से दिखनेवाले साथी को लेकर मेरे पास आया। उन्होंने कहा कि मैं उनको सुबह तक अपनी निगरानी में रखूँ, जब तक बुलाया न जाये। उस शैतानी शक्लवाले पर इल्जाम था कि उसने जुलाई, 1857 में, कानपुर में औरतों और बच्चों की सामूहिक हत्या की थी। यहाँ पर मैं बता दूँ कि उसकी सूरत उस आदमी से बिल्कुल मिलती थी जिसका वर्णन फिशेट ने 8 महीने बाद जाँच करनेवाली कमेटी में उन हत्यारों के बारे में दिया था। अक्टूबर, 1858 में बयान देते समय फिशेट को पता नहीं था कि उस आदमी को फाँसी दी जा चुकी है जिसके बारे में वह बता रहा है। फिशेट यूरेशियन ड्रमर था जो 6 नेटिव इन्फैंट्री के साथ था और जो मौत के डर से इस्लाम कबूल करके कानपुर में बगावत करनेवालों की सेना में शामिल हो गया था। बाद में वह वहाँ से बच निकला और उसने अक्टूबर, 1858 में मेरठ में पुलिस में भर्ती ले ली। जब यह मालूम हुआ कि वह बगावती रेजिमेंट में था, तो उससे कानपुर नरसंहार के बारे में पूछताछ की गयी। मुझे याद है कि उसका बयान और लोगों के बयानों में सबसे अधिक

विश्वसनीय माना गया। मैं जो यह बात बता रहा हूँ, वह फरवरी, 1858 की बात है। उस समय फिशेट का कुछ अता-पता नहीं था। फिशेट ने बताया था कि 6 नेटिव इन्फैंट्री और अन्य रेजिमेंटों तथा नाना साहब के सुरक्षा कर्मियों ने बीबीघर में बन्द यूरोपीय स्त्रियों व बच्चों को मारने से मना कर दिया। उसके बाद नाना पर असर रखनेवाली एक औरत ने दूसरे पाँच आदमी बुलवाये। उन पाँच में दो कसाई थे, दो देहाती थे और पाँचवाँ आदमी एक 'विलायती' था जिसके हाथ पर बड़े-बड़े बाल थे। फिशेट ने दो कसाइयों में से एक का वर्णन इस तरह दिया कि वह लम्बा, बदसूरत, काला और चेचक भरे दागवाला आदमी था। यह सारा वर्णन इसी 'कुली' की शक्ल से मिलता था। मुझे यकीन है कि फिशेट जब यह बयान दे रहा था तो उसको पता नहीं था कि वह जिसका वर्णन कर रहा है, वह आदमी आठ महीने पहले फाँसी पर चढ़ा दिया गया है। मैं बात इसलिए दावे से कह रहा हूँ क्योंकि जो बातें मैं बता रहा हूँ वे किसी अख़बार में नहीं छपी थीं।

तो मैं फिर अपनी कहानी पर लौटूँ। जैसे ही मेरे कैदी मुझे सौंपे गये, कुछ रक्षकों ने उन दिनों की परम्परा के अनुसार सुझाव दिया, कि बाज़ार से सुअर का गोश्त लाया जाए ताकि फाँसी के पहले इन क़ैदियों का धर्मभ्रष्ट कर दिया जाए। मैंने फ़ौरन इस प्रस्ताव को ख़ारिज कर दिया। मैंने कहा कि यदि किसी ने भी, किसी तरह से क़ैदियों के धर्म को भ्रष्ट करने की या उन्हें परेशान करने की कोशिश की, तो जब तक मैं ड्यूटी पर हूँ, उसकी बेल्ट उतारकर उसे हुक्मउदूली तथा अँग्रेज़ सिपाही की मर्यादा के विरुद्ध काम करने के जुर्म में क़ैद कर लूँगा। सुरक्षा में तैनात लोगों के अच्छे वर्ग ने मेरी बात की प्रशंसा की। मैं कभी नहीं भुला सकता कि मेरे आदेश सुनने के बाद जैमी ग्रीन के चेहरे पर किस कदर एहसानमन्दी के भाव आये। उसने फ़ौरन कहा कि इस मेहरबानी की वह आशा भी नहीं कर सकता था और इसके लिए मेरा वह बहुत एहसानमन्द है। उसने यह भी कहा कि उसे पूरा यकीन है कि अल्लाह व पैगम्बर मेरी इस दया के बदले, इस पूरी लड़ाई में मेरी रक्षा करेंगे। मैंने क़ैदी को उसकी शुभकामनाओं तथा दुआओं के लिए धन्यवाद दिया। उसकी इस दुआ के बदले में, सुरक्षा के घेरे और नियमों के अन्दर, मैं उसकी जो भी मदद कर सकता था, मैंने की। मैंने उसके हाथ खोल दिये ताकि वह अपनी शाम की इबादत पूरी कर सके। उसके बदसूरत शैतान साथी ने मेरी मेहरबानी के बदले

केवल घृणा की भावना व्यक्त की। जब उसके मालिक ने उसको डाँटा, तो उसने केवल यह कहा कि वह किसी विधर्मी कुत्ते से कोई दया नहीं चाहता, लेकिन उसने यह ज़रूर माना कि सारजेंट साहब एक मुसलमान पर एहसान करने के नेक काम के हकदार हैं कि उन्होंने उसको सुअर का मांस खाने से बचा लिया।

अपने क़ैदियों को इबादत करने की, तथा अन्य वे सुविधाएँ, जो मैं दे सकता था, देने के बाद मैंने तय किया कि मैं रात भर जागूँगा। वे भाग जाते तो मेरे लिए बहुत बड़ी मुश्किल हो सकती थी। मैं यह भी जानता था, कि यदि मैं पहरे पर रहूँगा तो उन्हें दी जा सकने लायक सुविधाएँ भी दे सकूँगा। मुझे पूरा विश्वास था कि उनके लिए इस पृथ्वी पर यह उनकी आख़िरी रात है। यह निश्चित था कि किसी भी सूरत में उनको सुबह की रोशनी नसीब नहीं होगी। यह सोचकर मैंने रेजिमेंट बाज़ार से एक दुकानदार को बुलाया और उससे कहा कि मेरे खर्चे पर तुम इन क़ैदियों के लिए उनका मनपसन्द खाना बनवा लाओ। इस पर उस दुकानदार ने कहा कि ईसाई होकर आप मुसलमान के प्रति इतने दयालु हैं, तो दुकानदार भी यह कभी मंजूर नहीं करेंगे कि आप इन पर अपनी जेब से एक भी पैसा खर्च करें।

मनपसन्द खाना खाकर और उसके बाद खुशबूवाला हुक्का पीने के बाद, जैमी ग्रीन आराम से बिस्तर पर बैठ गया। उसने कहा, ''खुदा का शुक्र है कि उसने मेरी ज़िन्दगी की आख़िरी रात मुझे एक दयालु साहब के हवाले कर दिया। यह मेरी किस्मत है। मुझे पूरा विश्वास है कि किसी सही समय में, अपने इस मुसीबतज़दा गुलाम की मदद करने के बदले में अल्लाह आपको उसका इनाम ज़रूर देगा। आपने मुझसे मेरी ज़िन्दगी के बारे में पूछा, और यह भी, कि क्या मैं सचमुच एक जासूस हूँ? जहाँ तक जासूस होने का सवाल है, तो आम शब्दों के लिहाज से मैं जासूस कतई नहीं हूँ। मैं बेगम हजतरमहल की सेना का अफसर हूँ। लखनऊ से आया था ताकि पक्की ख़बर ले सकूँ कि अँग्रेज़ों की कितनी फौज व घेराबन्दी, कितनी गाड़ियाँ हमारे ख़िलाफ़ आ रही हैं। मैं लखनऊ की सेना का चीफ इंजीनियर हूँ और ख़बर लेने के मकसद से ही आया था। परन्तु खुदा को मेरा यह इरादा शायद मंज़ूर नहीं था। मैं आज शाम को ही लखनऊ वापस जानेवाला था। यदि भाग्य मेरा साथ देता, तो कल सुबह होने से पहले लखनऊ अपनी माहरुख के पास पहुँच गया होता। मुझे वह सारी ख़बर मिल

चुकी थी जो मैं चाहता था। परन्तु मेरी बदकिस्मती कि मुझको एक बार उन्नाव आने का लालच हुआ कि मैं देख सकूँ कि घेराबन्दी की गाड़ी व लड़ाई के सामान के दस्ते चल पड़े हैं या नहीं। वह रास्ते में ही पड़ता था। यह मेरा दुर्भाग्य था कि उसी समय वह बदबख्त आदमी मिल गया, जिसने मुझको जासूस बताकर पकड़वा दिया। वह बदबख्त आदमी फाँसी से अपनी जान बचाने के लिए अपने देश, अपने धर्म के आदमियों को पहचानकर, अँग्रेज़ी दस्तों को पकड़वा रहा है। पहले वही आदमी अँग्रेज़ों को पकड़वा रहा था। अब वह अपनी उस शैतानियत से बचना चाहता है। परन्तु अल्लाह बहुत इन्साफ़ करनेवाला है। वह उसकी चालबाज़ी की सजा उसको जहन्नुम की आग में डालकर अवश्य देगा।'' (जिस आदमी ने जैमी ग्रीन को पकड़वाया उसको बाद में मई में बरेली में फाँसी पर चढ़ाया गया। उस पर आरोप था कि उसने बग़ावत होने के समय अपने मालिक को मार डाला था।)

जैमी ग्रीन ने आगे कहा, ''आप मुझसे जानना चाहते हैं कि मेरा नाम क्या है और यह भी कह रहे हैं कि आप मेरे दुर्भाग्य की कथा अपने स्कॉटलैंड के मित्रों को लिखकर भेजना चाहते हैं। मुझे इसमें कोई दिक्कत नहीं है। इंग्लैंड के लोग—इंग्लैंड से मेरा मतलब स्कॉटलैंड मिलाकर है—न्यायप्रिय हैं और उनमें से कुछ को तो अल्लाह के इस गुलाम की किस्मत पर रहम भी आएगा। मेरे दोस्त लन्दन व एडिनबरा दोनों जगह हैं, क्योंकि मैं उन दोनों जगहों पर दो बार जा चुका हूँ। मेरा नाम मोहम्मद अली खाँ है। मैं रूहेलखंड के बहुत ऊँचे घराने से हूँ। मैं बरेली कॉलेज में पढ़ा हूँ। वहाँ अँग्रेज़ी के सारे विषयों में मैंने ऊँचे नम्बर पाये थे। बरेली कॉलेज के बाद मैंने सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेज, रुड़की में इंजीनियरिंग पढ़ी। मैंने कम्पनी की नौकरी करने के लिए ही इंजीनियरिंग पढ़ी और सारे यूरोपीय लड़कों के मुकाबले चाहे वे सैनिक हों या नागरिक, ज़्यादा अच्छे नम्बरों से पास की। परन्तु नतीज़ा क्या हुआ? मुझे कम्पनी के इंजीनियरों के 'जमादार' पद पर रखा गया और पहाड़ी सड़क पर एक टुकड़ी के साथ भेज दिया गया। मुझे देशी कमीशंड अफसर बनाया गया परन्तु वास्तव में एक यूरोपीय सारजेंट के नीचे रखा गया। वह कुछ पढ़ा-लिखा नहीं था और शायद अपने बदन की ताकत के अलावा हर हाल में मुझसे गया-गुजरा था। इंग्लैंड में ऐसा आदमी बेलदार के पद के

ऊपर कभी नहीं पहुँच पाता। बिना पढ़े-लिखे हुए आदमी को ज़्यादा अधिकार मिल जाने पर जैसा होता है, उस बुराई के साथ उसमें यूरोपीय लोगों की दूसरी सारी बुराइयाँ भी थीं। बदसलूकी, स्वार्थी, घमंडी होना, और भी बहुत कुछ, जिससे हम लोग बहुत घृणा करते हैं। आपकी मुश्किल यही है कि जब तक आप हम लोगों की भाषा सीखकर, हमारे पढ़े-लिखे लोगों के सम्पर्क में नहीं आएँगे, आप समझ ही नहीं पाएँगे, कि आपका एक आदमी ही, आपके देश की इज़्ज़त को किस तरह ख़त्म कर सकता है। यही एक वज़ह काफ़ी है जिसके कारण आपके दुश्मन आप लोगों को स्वार्थी व घमंडी समझते हैं। आपकी किसी भी सहानुभूति व उदारता को थोथी बहानेबाजी मानते हैं। मैंने कम्पनी की नौकरी पैसों के लालच से नहीं की थी। मैं चाहता था कि इज़्ज़त से नौकरी करूँ। लेकिन शुरुआत से ही मुझे बेइज़्ज़ती और बदतमीज़ी झेलनी पड़ी, वह भी ऐसे आदमी के नीचे काम करके, जिसे मैं नापसन्द ही नहीं करता था, बल्कि जिससे घृणा करता था। मैंने अपने पिता को यह सब लिखा और इस नौकरी से इस्तीफ़ा देने के लिए इजाज़त माँगी। उन्होंने भी कहा कि एक शाही खानदान का वंशज होने के नाते, इन हालात में कम्पनी की नौकरी करने की मेरी कोई वज़ह नहीं है। मैंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और घर चला गया। मैंने सोचा था कि मैं अवध के नवाब मरहूम नसीरुद्दीन के यहाँ काम करूँगा। जैसे ही मैं लखनऊ पहुँचा, मुझे पता चला कि नेपाल के राणा जंगबहादुर (जो इस समय गोरखपुर में गोरखा फौज के साथ लखनऊ को लूटने के लिए मौजूद हैं) इंग्लैंड जानेवाले हैं और उनको अँग्रेज़ी जाननेवाले एक सेक्रेटरी की ज़रूरत है। मैंने उसके लिए अर्जी दे दी। देशी रजवाड़े और अँग्रेज़ी अफ़सरों की सिफारिश के चलते मैं उस जगह के लिए चुन लिया गया। पहली बार महाराजा के काफिले के साथ ही इंग्लैंड गया। वहाँ दूसरी जगहों के अलावा मैं एडिनबरा भी गया जहाँ आपकी 93 हाइलैंडर्स ने महाराजा के इस्तक़बाल में हिस्सा लिया। जब मैंने पहली बार आपकी सजी हुई रेजिमेंट को देखा, तो मैं सोच भी नहीं सकता था कि एक दिन हिन्दुस्तान में मुझे, उसी रेजिमेंट के तम्बू में क़ैद होकर रहना पड़ेगा। पर किस्मत पर किसी का जोर नहीं है।

'मैं हिन्दुस्तान वापस आया और 1854 तक कई राजदरबारों में नौकरी करता रहा। 1854 में मुझको फिर इंग्लैंड जाने को कहा गया।

इस बार अजीमुल्ला खाँ के साथ। अजीमुल्ला खाँ का नाम आपने इस गदर के सिलसिले में कई जगह सुना होगा। पेशवा की मृत्यु के बाद नाना साहब ने अजीमुल्ला खाँ को अपना एलची बनाया था। मेरी तरह उनको भी अँग्रेज़ी बहुत अच्छी तरह से आती थी। उन्होंने कानपुर के सरकारी स्कूल के बड़े मास्टर गंगादीन से अँग्रेज़ी पढ़ी थी। अजीमुल्ला खाँ को पूरा यकीन था कि अगर वह इंग्लैंड चले गये तो वह नाना साहब के ख़िलाफ़ लार्ड डलहौजी के हुक्म को ख़ारिज करवा सकते हैं। जब मैं उनसे मिला, तब वह बहुत-सा रुपया लेकर इंग्लैंड जाने के लिए तैयार थे जिससे कि वह वहाँ एक अच्छा वकील कर सकें और ज़रूरत पड़ने पर इंग्लैंड के अफसरों को रिश्वत भी दे सकें। मैं आपको उस सफर के बारे में बताना नहीं चाहता। आपको मालूम ही होगा। हमारा इंग्लैंड का समय वहाँ के ऊँचे तबके के पढ़े-लिखे लोगों में तो खूब अच्छा रहा, लेकिन सियासी तौर पर बेकार ही रहा। हम लोग 1855 में पचास हज़ार पौंड खर्च करके, इंग्लैंड से कुस्तुनतुनिया होते हुए हिन्दुस्तान वापस आ गये। कुस्तुनतुनिया से हम लोग क्रीमिया गये थे जहाँ इंग्लैंड की फौजें 18 जून को बुरी तरह हारीं। वहाँ से हम लोग कुस्तुनतुनिया वापस आये जहाँ हमको रूस के कुछ एलची, असली या बनावट पता नहीं, मिले जिन्होंने हमको मदद देने का वायदा किया, अगर अजीमुल्ला खाँ हिन्दुस्तान में अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बग़ावत करवा सकें तो। उसी समय मैंने और अजीमुल्ला ने तय किया कि हम कम्पनी की सरकार का तख्ता पलटने की पूरी कोशिश करेंगे। खुदा का शुक्र है कि हम अपने इस मकसद में कामयाब हुए। आपके ही दिये हुए अख़बारों से पता चलता है कि कम्पनी का राज अब समाप्त हो चुका है। उनका जायदाद छीनने का तथा डकैती का मुख्तारनामा, अँग्रेज़ी सरकार द्वारा फिर से जारी नहीं किया जाएगा। हम सारे अँग्रेज़ों को तो निकाल बाहर नहीं कर सके, फिर भी, हमने कुछ तो नेक काम किया ही और हमारी ज़िन्दगी बेकार में बर्बाद नहीं हुई। मेरा विश्वास है कि इंग्लैंड की पार्लियामेंट की हुकूमत में कम्पनी की हुकूमत के मुकाबले अधिक इन्साफ़ होगा। इस हुकूमत में हमारे पिछड़े व कुचले लोगों के लिए मौके मिलेंगे, हालाँकि यह सब देखने के लिए मैं अब ज़िन्दा नहीं रहूँगा।

"साहब, मैं यह सब आपकी खुशामद करने या फिर किसी दूसरी उम्मीद से नहीं कर रहा हूँ, मुझको आपसे पहले ही काफ़ी

मदद मिल चुकी है। मैं समझ रहा हूँ कि इससे अधिक आप अपनी ड्यूटी में कुछ कर भी नहीं सकते। मैं जानता हूँ कि मुझे मरना है, पर आपने अपने दायरे और फ़र्ज़ से बाहर जाकर, मेरी जो मदद आपने की है, उसी की वजह से मैं अपने मन की बात आपसे कह रहा हूँ। मैं जब यहाँ, इस कैम्प में आया, तो मेरे दिल में यहाँ के लिए घृणा भरी हुई थी और ज़बान पर बद्दुआएँ थीं। पर आपने मेरे लिए जो दया दिखायी है, उसकी वजह से लखनऊ छोड़ने के बाद दूसरी बार, मुझे बग़ावत के दौरान अपने लोगों द्वारा की गयी क्रूरताओं पर शर्म आ रही है। पहली बार ऐसा कानपुर में कुछ दिन पहले लगा था जब इंजीनियर्स के कर्नल नैपियर, कानपुर घाट पर बने मन्दिर गिरवा रहे थे। उस समय हिन्दू पुजारियों में से कुछ लोग उनके पास आये और कहा कि मन्दिर न तुड़वाए जायें। कर्नल नैपियर ने तब कहा कि आप सब लोग यहाँ पर थे जब हमारी औरतें व बच्चे मारे गये थे। और आप यह भी जानते हैं कि यह मन्दिर बदले की भावना से नहीं तोड़े जा रहे हैं बल्कि नावों के पुल की सुरक्षा के लिए तोड़े जा रहे हैं। फिर भी, यदि आप लोगों में से कोई भी यह बता सके, कि उसने ईसाई आदमी, स्त्री या बच्चे के प्रति कभी कोई दया दिखायी हो या उनकी ज़िन्दगी को बचाने के लिए, कहीं कोई आवाज़ ही उठायी हो, तो मैं वायदा करता हूँ कि उसकी पूजा का मन्दिर छोड़ दूँगा। मैं उस समय कर्नल नैपियर के पास ही खड़ा था। मुझे लगा कि उसके शब्द बहुत सुन्दर, तर्कपूर्ण व शरीफ़ाना हैं। उन पुजारियों में से एक ने भी कोई जवाब नहीं दिया। वे सब ब्राह्मण चुपचाप चले गये। नैपियर ने इशारा किया और मन्दिर हवा में उछल गये।'

इस पर मैंने पूछा कि 'क्या तुम कानपुर में थे जब बग़ावत शुरू हुई थी?' उसने कहा 'अल्लाह का शुक्र है, मैं वहाँ नहीं था। मैं रूहेलखंड में था। मेरे हाथ किसी के ख़ून से रँगे हुए नहीं थे, सिवाय उनके, जो लड़ाई में मारे गये। मुझे मालूम था कि उपद्रव होनेवाला है। मैं अपनी माहरुख को किसी सुरक्षित स्थान में ले जाने के लिए चला गया था। मैंने जब मेरठ और बरेली में विद्रोह की ख़बर सुनी, उस समय मैं अपने गाँव में था। मैं तुरन्त बरेली टुकड़ी में शामिल हुआ और उनके साथ दिल्ली चला गया। वहाँ पर मैं इजीनियर्स का मुखिया बनाया गया। कम्पनी के इंजीनियरों की एक टुकड़ी के साथ, जिसने रुड़की से मेरठ जाने के रास्ते में बग़ावत कर दी थी, मैं दिल्ली की

सुरक्षा पंक्तियों को मजबूत करने लगा। मैं दिल्ली में सितम्बर तक रहा जब तक कि अँग्रेज़ों ने दिल्ली पर कब्ज़ा नहीं कर लिया। बिखरी हुई फौज के जितने आदमी मैं इकट्ठा कर सकता था उनको लेकर मैं लखनऊ की तरफ चल दिया। पहले हम मथुरा पहुँचे जहाँ हमको रुकना पड़ा। मैंने जमुना के ऊपर नावों का पुल बनाया ताकि हमारी फौज उस पर चलकर नदी पार कर सके। उस समय तक शहजादा फ़ीरोजशाह और जनरल बख़्त खाँ की कमान में हमारे पास लगभग 30,000 सिपाहियों से ऊपर फौज थी। जैसे ही मैं लखनऊ पहुँचा, वहाँ भी मुझे चीफ इंजीनियर बना दिया गया। मैं नवम्बर में लखनऊ में था जब आपकी रेजिमेंट रेजीडेंसी की घेराबन्दी को तोड़ने के लिए लड़ रही थी। मैंने सिकन्दराबाग का निर्मम नरसंहार देखा। मैंने उसके पहले की रात को ही वहाँ की सुरक्षा का इन्तज़ाम किया था और मैं शाहनज़फ़ से देख रहा था जब आपने सिकन्दराबाग पर हमला किया। मैंने वहाँ तीन हज़ार से अधिक चुनिन्दा सिपाही तैनात किये हुए थे क्योंकि वह जगह बहुत महत्त्वपूर्ण थी। लेकिन एक भी सिपाही नहीं बच सका। मैं लगभग बेहोश हो गया। मेरा जिगर पानी बन गया, जब मैंने देखा कि हमारा हरा झंडा उतर गया है और जिस खंभे को मैंने रात में खड़ा किया था उस पर आपका झंडा लगा है। मैं समझ गया कि अब सब ख़त्म हो गया है। तब मैंने शाहनज़फ की बन्दूकों को सिकन्दराबाग पर गोली चलाने का हुक्म दे दिया। उसके बाद से मैंने लखनऊ के अन्दर और आसपास हिफ़ाजत के सुरक्षा व्यूह बनाने का काम शुरू कर दिया। आप जब वहाँ जाएँगे तो उनको देखेंगे। यदि हमारे सिपाही और बन्दूकची उन स्थानों के पीछे ठीक से खड़े रहे, तो लखनऊ पर आप लोगों का क़ब्ज़ा होने से पहले आपकी कई रेजिमेंटों के नम्बर समाप्त हो जाएँगे।'

फिर मैंने उससे पूछा कि क्या यह सच है कि जिस आदमी को उसने मिक्की बताया था, उसने जुलाई महीने में कानपुर में नाना के कहने पर औरतों व बच्चों को मार डाला था? उस पर उसने उत्तर दिया, ''मुझे विश्वास है कि यह सच है। हालाँकि जब मैंने उसको नौकरी दी थी तब मुझे यह नहीं मालूम था। मुझको केवल यह बताया गया था कि वह एक भरोसेमन्द आदमी है। मुझे उस समय अगर यह मालूम होता कि उसने ही औरतों व बच्चों की हत्या की है, तो मैं उसे बिल्कुल अपने साथ नहीं रखता, क्योंकि मुझे केवल उसके कारण ही

यह बुरा वक़्त झेलना पड़ रहा है। आपकी एक अँग्रेज़ी कहावत है, यदि आप कीचड़ उछालेंगे तो गन्दा लगेगा ही, इसलिए मुझे अब यह भुगतना ही पड़ेगा। खुदा बहत इंसाफ़परस्त है और ऐसे लोगों के कारण ही हमारे मकसद ओर कामों से शायद उसकी नाराज़गी है।'

इस पर मैंने उससे पूछा कि क्या तुमको कुछ पता है कि यह ख़बर सच्ची है या झूठी कि यूरोपीय स्त्रियों की हत्या के पहले उनका शील भंग किया गया था? उसने उत्तर दिया, 'साहब, आप इस देश के लिए अनजान हैं, वर्ना आप यह सवाल नहीं पूछते। यदि कोई भी इस देश के रीति-रिवाज़ व जाति-व्यवस्था के बारे में जानता है, तो वह कह सकता है कि ये सब कहानियाँ झूठी हैं। यह हम लोगों के बीच नफ़रत फैलाने की साजिश है मानों जैसे अभी की, आपसी घृणा ही काफ़ी नहीं है। मैं मानता हूँ कि औरतें, बच्चे क्रूरता से मार डाले गये थे, परन्तु उनमें से किसी की इज़्ज़त पर हाथ नहीं डाला गया था। दीवारों पर लिखे हुए वाक्य, जैसे हम वहशियों की मेहरबानी पर हैं और हम जवानों व बूढ़ों का शील भंग कर दिया गया है या ऐसा ही और कुछ, जो हिन्दुस्तानी अख़बारों में छपा और वहाँ से अँग्रेज़ी अख़बारों में आया, सब शैतानी है, जालसाजी है। यह जनरल आउटरम व हैवलॉक की सेनाओं द्वारा कानपुर पर दुबारा कब्ज़ा होने के बाद दीवारों पर लिखा गया है। हालाँकि मैं वहाँ नहीं था, लेकिन मैंने कई ऐसे लोगों से बात की जो वहाँ पर थे और मैं जानता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा वह सही है।'

फिर मैंने पूछा कि क्या तुम कुछ बता सकते हो कि नाना ने ऐसा क्रूर व कायरतापूर्वक व्यवहार क्यों किया? उसने कहा कि 'एशिया के लोग कमज़ोर होते हैं ओर उनके वायदों पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि वे शुरू से ही धोखा देना चाहते हैं परन्तु वे वायदों की गम्भीरता के प्रति उदासीन होते हैं। जिस समय वे वायदा करते हैं उनका इरादा उसको निभाने का होता है, परन्तु जैसे ही उनको वायदा निभाने में कुछ परेशानी आती है, वे उसे भुला देते हैं। मैं समझता हूँ कि नाना साहब के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ था। उनका पूरा इरादा था कि वे औरतों व बच्चों को छोड़ देंगे, परन्तु उनके 'जनाना' में एक डायन औरत थी जो पहले दासी रह चुकी थी। नाना साहब के आसपास के कुछ लोग, शायद अजीमुल्ला खाँ भी चाहते थे, कि नाना साहब के साथ ऐसा कुछ हो जाये जिससे वे बग़ावत से

बाहर न निकल सकें। उस औरत ने दूसरे लोगों के साथ मिलकर नाना साहब से अँग्रेज़ स्त्रियों को मार डालने का हुक्म हासिल कर लिया। फिर जब देसी इन्फैंट्री और नाना साहब के अपने सिपाहियों ने हत्या करने से मना कर दिया, तो उस औरत ने कुछ बाहरी आदमियों को बुलवाकर यह काम करवाया। मुझे यह ख़बर जनरल तात्या टोपे से प्राप्त हुई जिनका नाना साहब से इस बात पर झगड़ा भी हुआ। मैं जो कह रहा हूँ वह सच है। कानपुर में यूरोपीय औरतों व बच्चों की हत्या सिर्फ़ उस एक औरत का कारनामा था। उस औरत को उन अभागी स्त्रियों से क्या शिकायत थी मुझे नहीं मालूम और न मैंने जानने की कोशिश की थी।'

मैंने मोहम्मद अली खाँ से फिर पूछा कि क्या यह सच है कि जनरल व्हीलर की बेटी ने रिवाल्वर से चार या पाँच लोगों की हत्या करके कानपुर के एक कुएँ में छलाँग मारकर आत्महत्या कर ली थी? उसने उत्तर दिया, 'ये सब कहानियाँ पूरी तौर पर फ़र्ज़ी हैं। इनमें कुछ सच्चाई नहीं है। जनरल व्हीलर की लड़की अब भी जीवित है और इस समय लखनऊ में है। वह एक मुसलमान बन गयी है। जिस आदमी ने उसकी रक्षा की थी, उसी से मुस्लिम कानून के अनुसार उसने शादी कर ली है। वह फिर वापस अपने लोगों में जाएगी या नहीं यह मुझे नहीं मालूम।'

इस पूरी बातचीत में मैंने अपने क़ैदी के साथ रात गुजारी। सुबह होने पर मैंने उसको नित्यकर्म करने के अलावा इबादत करने की सुविधा दे दी। उसने फिर मेरा शुक्रिया अदा किया और प्रार्थना की कि खुदा अपने इस बेबस ओर मुसीबतज़दा गुलाम की सहायता करने के लिए आपकी हिफाज़त करें। एक बार, केवल एक ही बार, उसने अपनी कमज़ोरी दिखायी जब उसने किसी माहरुख का ज़िक्र किया। उसने कहा कि उसे कभी नहीं मालूम पड़ेगा कि उसके अभागे मुहम्मद अली का क्या हुआ? फिर तुरन्त उसने अपने को रोक लिया और कहा, 'मैंने फ्रांस का और इंग्लैंड का इतिहास पढ़ा है। मुझे दांते को याद रखना चाहिए और कोई कमज़ोरी नहीं दिखानी चाहिए।' फिर उसने एक सोने की अँगूठी निकाली जो उसके बालों में छिपी हुई थी। उसने मुझसे पूछा कि 'क्या मैं उसको कृतज्ञता के रूप में लेना और उसकी याद के रूप में इसे रखना मंजूर करूँगा?' उसने कहा कि उसके पास देने के लिए केवल यही बचा है, क्योंकि बाकी सब चीज़ें

पकड़े जाने के समय छीनी जा चुकी हैं। उसने कहा कि यह अँगूठी वैसे एक मामूली चीज़ ही है, मुश्किल से दस रुपये की होगी, परन्तु वह एक ख़ास अँगूठी है।

उसने बताया कि यह अँगूठी वास्तव में माहरुख के कान के बुन्दे की बनी है। उसने कहा कि वह चाहे तो माहरुख का किस्सा पूरी रात सुना सकता है, पर मुख़्तसर यह कि गर्मियों की एक दोपहर, जब उसके और माहरुख के घरवाले, लू से सिंकती हुई दीवारों पर छिड़काव करने के बाद ऊँघ रहे थे, तब माहरुख उसके घर की अँधेरी दुछत्ती में उससे मिलने आयी थी। उस दुछत्ती में उसने माहरुख का हाथ पकड़ा ही था कि नीचे गली में घोड़ों की टापें सुनायी दीं। माहरुख हड़बड़ाकर भागने लगी तो उसके बाल पकड़ने में उसके हाथ में माहरुख का यह बुन्दा आ गया। माहरुख उसे छीनकर भाग गयी। बाद में माहरूख ने यह बुन्दा अँगूठी बनाकर एक बच्चे के हाथ उसे भिजवाया जिसमें उसने यह लिखवाया था। उसने मुझे अँगूठी के छल्ले का एक कोना दिखया उस पर फारसी में कुछ लिखा था। उसने बताया कि जो लिखा है उसका अर्थ है 'पाँव की धूल-माहरुख'। उसके बाद माहरुख ने अपने उस कान में कभी बुन्दा नहीं पहना। मुझे वह दूसरी बार कभी नहीं मिली पर उसने फिर उसी बच्चे से कहलवाया था कि वह मेरा इन्तज़ार करेगी कि कब मैं उससे निकाह करूँगा। उसके बाद मैं लड़ने चला आया और इस बीच माहरुख की मुझे ख़बर नहीं मिली। उसी बच्चे ने मुझे बाद में यह ज़रूर बताया कि माहरुख उससे कह गयी थी कि वह जहाँ भी रहेगी, रोज़ रात को एक आकाशदीया ज़रूर जलाया करेगी। मैं कभी, कहीं से गुजरते हुए, किसी छत पर कोई आकाशदीया देखूँ, तो वहाँ रुकूँ। वहाँ माहरुख मेरा इन्तज़ार करती होगी। मैंने सुना कि शायद वह लखनऊ या कानपुर आ गयी थी। मुहम्मद अली ने उदास आँखों से मुझे देखा। उसमें मौत की उदासी नहीं थी, आपको कभी हरम की बेगमों में, बाँदियों में, बाज़ार में, या कहीं भी कोई ऐसी लड़की दिखे, जिसके कान में सिर्फ़ एक बुन्दा हो, तो आप समझ लें वह मेरी माहरुख है। फौज के साथ गुजरते हुए, कभी किसी घर, आँगन, छत या मुँडेर पर किसी आकाशदीये को जलता देखें, तो समझ लें वहाँ माहरुख मेरा इन्तज़ार कर रही होगी। आप वहाँ रुकें और उसे इस बदनसीब की यह दास्ताँ सुनाएँ। यह भी, कि मेरे पास आख़िरी समय तक उसकी अँगूठी थी। आप

उसे यह अँगूठी दिखाएँगे तो वह सब समझ लेगी। यह अँगूठी किसी भी पीर, बाबा, सूफी के मन्त्र, तिलिस्म जादू और किसी भी प्रार्थना से ज़्यादा पवित्र है। यह गहरी तासीर वाली है। आप इसे अपने पास ज़रूर रखें।

मैंने वह अँगूठी लेना मंजूर कर लिया। अँगूठी पर लाल मछली थी। उसके सोने के छल्ले के एक कोने पर बहुत बारीक-सा कुछ लिखा था। उसने उसको मेरी उँगली में मुहब्बत के वरदान की तरह किसी प्रार्थना के साथ पहना दिया। उसने कहा कि लखनऊ की घेराबन्दी के मुकाबले में चलती गोलियों के बीच पहुँचकर भी, मैं अगर उस अँगूठी पर नज़र डालूँगा, तो मेरा कुछ भी बुरा नहीं हो सकता। उसने यह कहकर अपनी बात ख़त्म ही की थी कि मार्शल का सिपाही उसको ले जाने का हुक्म लेकर आ गया। मैंने उसकी किस्मत पर दुखी होते हुए उसको सिपाही को सौंप दिया।

उसके तुरन्त बाद मुझे आदेश मिला कि सुबह ही सारी सेना लखनऊ के लिए रवाना होगी। मुझे घेराबन्दी की गाड़ी व युद्ध सामग्री चले जाने के बाद पीछे से सुरक्षा गार्ड में रहना था। सूरज काफ़ी ऊपर निकल आया था जब हम लोग निकले। कानपुर-लखनऊ मार्ग में एक पेड़ के नीचे निकलते समय मैंने देखा कि ऊपर पेड़ पर मोहम्मद खाँ और उसके साथी की नंगी व अकड़ी लाशें टँगी हुई हैं। वहाँ से निकलते समय मैं अपने आँसू मुश्किल से रोक पाया। 11 मार्च को बेग़म कोठी पर हमला करते समय मुझे मोहम्मद अली खाँ की याद आयी। मैंने अँगूठी की तरफ देखा। मैं अपनी धर्म पुस्तक को छूकर कहना चाहता हूँ, कि वह पूरी लम्बी लड़ाई, मैंने बिना किसी चोट या खरोंच के पूरी की। ऐसा भी नहीं है कि, इस अँगूठी के कारण मैंने ख़तरे से परहेज़ किया। यह अँगूठी अभी भी मेरे पास है—हिन्दुस्तान में रहनेवाले दो सालों में लगातार लड़ाइयों और बगावत की एकमात्र लूट के रूप में। इसको मैं अपने बच्चों को देकर जाऊँगा।

डायरी पढ़ने के बाद विवान रात भर खिड़की की सलाखों से चिपका तेज़ हवाओं में टूटती पत्तियों की आवाज़ें सुनता रहा। इन आवाज़ों में माहरुख की, दमिश्क की तलवारों की, मुहम्मद अली की, विलमौट डगलस की आवाज़ें भी थीं। इन आवाज़ों में कोई फ़र्क़ नहीं था। ऊपर जाकर ये सब एक महाशून्य में मिल जाती थीं। इन

आवाज़ों में कोई फ़र्क़ इसलिए भी नहीं था क्योंकि इनको पैदा करनेवाले इनसानों में भी कोई फ़र्क़ नहीं था। उनके रक्त में, स्वप्नों में, विलाप में, आवेगों में फ़र्क़ नहीं था। उनकी मुहब्बतों में, नफ़रतों में कोई फ़र्क़ नहीं था। उनकी अँगूठियों में, तलवारों की धार में, उनके आकाशदीयों में, नाभि के साँवले तालाबों में, प्रार्थनाओं में, फ़र्क़ नहीं था। जिसमें फ़र्क़ था वह उनका बैक ड्राप था। उनकी बनायी संरचनाएँ थीं। उनके तन्त्र थे। इन संरचनाओं की रक्षा करने में, या फिर इनका विरोध करने में गिरी हुई लावारिस लाशों के नाम, जाति, धर्म, राष्ट्रों में फ़र्क़ था। उनके ईश्वर, उनकी पोशाकों, उनकी रोटियों और ज़ुबानों में फ़र्क़ था। इनमें ही कहीं विवान डगलस भी था। विवान ने पूरी रात अपने को वहाँ ढूँढ़ा था। उसे अपना पता मिल जाता तो वह सुबह विन्सेंट को बता देता कि उसने अपने लिए कौन-सा जीवन चुना है। बाबू ने भी कहा था कि पूरी बात सिर्फ़ इतनी ही है कि तुमने ज़िन्दगी को कहाँ से खड़े होकर देखा और अपने लिए उसे कहाँ से उठाया। पर क्या कोई ऐसा कर पाता है? विवान ने टूटती पत्तियों से पूछा था, चाँदनी के नुकीले नश्तरों से पूछा था, हवाओं पर गुजरती रात से पूछा था। कोई अपना जीवन खुद चुन पाता है? जन्म से ही ज़िन्दगी का वह हिस्सा मनुष्य को पकड़ा दिया जाता है जो उसे जीना है। पानी की पहली बूँद के साथ, बोले हुए पहले शब्द के साथ, पहले दृश्य के, पहली प्रार्थना के, पहले ईश्वर के साथ दिया गया यह जीवन उसका इतना बड़ा सच होता है कि वह कभी इस पर सोचना भी नहीं चाहता। उसे बदलना नहीं चाहता, छोड़ना नहीं चाहता। वह एक ही ईश्वर को पूजता रहता है, जबकि उसके चारों ओर बहुत ईश्वर होते हैं। वह एक ही देश की गुंजलक में फँसा रहता है, जबकि उसके चारों ओर बहुत-से देश होते हैं। वह एक ही अतीत पर गर्व करता है, जबकि उसके आसपास दूसरों के अतीत भी होते हैं। उसका जीवन इतना सुनिश्चित तरीके से निर्मित किया जाता है कि उसे हमेशा पता होता है कि उसे किस तरफ होना है, कहाँ जाना है, कौन-सा पथ चुनना है। विवान को नहीं पता था। रात भर खिड़की की सलाख़ों से चिपके विवान को पत्तियों ने, हवाओं ने, चाँदनी ने भी कुछ नहीं बताया था। विन्सेंट ने कहा था कि तुम तय करो तुम्हें कहाँ होना है? बाबू ने कहा था तुम तय करो तुम्हें कहाँ होना है?

विवान ने और गहरी साँस लेने के लिए चेहरे को सलाख़ों से चिपका दिया। इतना कि उसका ठंडा लोहा विवान की खाल में धँसने लगा। सामने आकाश नीम के फूल झर रहे थे। नीम के नीचे की मिट्टी उसके नन्हे पीले फूलों से भरी थी। विवान को कहाँ होना है? विवान सबसे पूछ रहा था। निपट अकेला। विवान इन्हें अगर छू सकता, अगर इनसे बात कर सकता, तो विवान को एक गहरी शान्ति मिलती। क्या कोई अपने अकेलेपन को छू सकता है? देख सकता है? साकार कर

सकता है? उसी तरह जिस तरह न दिखायी देनेवाले अपने ईश्वर को साकार कर लेता है। अज्ञात मृत्यु का स्पर्श कर लेता है। बनैले स्वप्न को हथेलियों में पकड़ लेता है। ईश्वर, मृत्यु, स्वप्न, सब नितान्त अकेलेपन के चरम में जन्म लेते हैं। उसी में विस्तार पाते हैं। विवान के पास अकेलापन था, पर ये नहीं थे। इन तीनों का बोध भी नहीं था, वांछा भी नहीं थी। उसका अकेलापन उन लोगों के अकेलेपन से बड़ा था जिनके पास ये तीनों होते हैं या कोई भी एक। क्या इस अकेलेपन से मुक्ति के लिए विवान को ईश्वर चाहिए? क्या मृत्यु चाहिए? क्या स्वप्न चाहिए? क्या उसके चाहने से उसे ये मिल जाएँगे? कैसे जिएगा वह? जिजीविषा के सूत्र कहाँ होंगे? बाबू ने कहा था संघर्ष में कैसे भी संघर्ष में, जिजीविषा के सूत्र होते हैं। क्या आत्मसंघर्ष में भी होते हैं? क्या विवान के किसी भी कठोर आत्मसंघर्ष में, उसकी स्मृतियाँ, उदासी, एकान्त, उसके इस अकेलेपन को नष्ट कर देंगे? विवान के साथी बनेंगे? कितनी ही फ्रीज़ की हुई स्मृतियों के टुकड़े उसके अवचेतन में दीवारों पर पेंटिंग की तरह टँगे हैं। कितनी ही नन्ही उदासियाँ, दुख, उसके अन्त:मन के तहखाने में आँखें खोलकर जुगनुओं की तरह चमकते हैं। पर विवान जानता था कि ये बहुत दूर तक विवान का साथ नहीं देंगे। इनके पास अपनी जिजीविषा के सूत्र नहीं हैं। ये सब बहुत जल्दी दम तोड़ेंगे। ये विवान की जिजीविषा का आधार नहीं हो सकते। विवान को जीवन कहीं और से चुनना होगा। बाबू ने बुलाया है। क्या विवान एक अन्धी गुफा में उतर जाये जहाँ इस अकेलेपन को समूल नष्ट करनेवाला हरहराता आक्रोश है, गन्धाती घृणा है, रक्तिम उत्तेजना है। वहाँ यह सब नष्ट हो जाएगा। ईश्वर, मृत्यु, स्वप्न की वांछा नष्ट हो जाएगी। स्मृतियाँ, दुख, तिरोहित हो जाएँगे। हर पल केवल हिंसक जानवर की तरह झपटने की हत्यारी उत्तेजना होगी, जो हर छलाँग में महान और पवित्र होने का दम्भ देगी, आश्वस्ति देगी।

हवाओं के साथ कुछ पत्तियाँ खिड़की की चौखट पर गिरीं। विवान ने पोर्च तक आनेवाले कच्चे रास्ते के दोनों ओर लगे बल्ब की रोशनी में उन्हें देखा। उनकी फूली नसों को देखा। वे चिटक गयी थीं। विवान ने सलाख़ों से हाथ बाहर निकालकर उन्हें उठाया। छूते ही नीम के फूलों की तरह वे बिखर गयीं। विवान ने अपनी हथेली वापस खींचकर उसे सूँघा। वहाँ गन्ध नहीं थी। वह पूरी तरह नष्ट हो गयी थी। पीछे कुछ भी नहीं था। विवान के अन्दर का वह साँवला जंगल भी क्या ऐसे ही ख़त्म होना चाहिए जिससे वह अब तक जीवन पाता रहा है? क्या स्मृतियाँ नष्ट हो जानी चाहिए जिनके आलोक में उसने अपनी चेतना को ग्रहण किया है, विकसित किया है? क्या माँ, परित्यक्त ईश्वर, ग़ालिब नष्ट हो जाने चाहिए? विवान के अन्दर का जगत फिर लहूलुहान होने लगा। विवान को साँस लेने में कठिनाई हुई। वह खिड़की की सलाखों से छटपटाकर अलग हो गया। वह कमरे से

बाहर निकल आया। वह उसी खुली जगह में नीम के नीचे आ गया। उसने कुछ गहरी साँसें लीं। मिट्टी पर बिखरे पीले फूलों को, नीम की शाखाओं की छायाओं के जाल को देखा। उसने सर उठाकर सुबह होने से पहले के धूमिल चाँद को देखा। उसकी छोड़ी हुई रोशनी के जादू में ऊँघते पेड़ों को, दीवारों को, मकानों को देखा। सुबह होने में अभी कुछ समय था। विवान को लगा कि इस समय में वह सो सकता है। नीम के नीचे बिखरे फूलों पर वह लेट गया। विवान कुछ देर में सो गया।

दूसरे दिन विवान के पास करने के लिए कुछ नहीं था।

माँ सामान्य रूप से अपने रोज़ के कामों में लग गयी थी। विन्सेंट दोपहर में खाने पर मिलने की बात कहकर जल्दी में ही चला गया था। मौसी अपने दोनों बड़े सन्दूक खोलकर बैठ गयी थी।

समय काटने के लिए विवान खाली कमरों में घूमा, गलियारों की धूप, छाँह में घूमा, बाहर बगीचे में, पीछे पेड़ों के बीच में घूमा। धूल भरी, खाली दोपहरों में, चट्टानी पहाड़ियों से टकराकर आती गर्म हवाओं और रंगीन मकानों की तपती हुई दीवारों के बीच सँकरी गलियों में घूमते हुए, विवान डगलस के साथ बेचैनियाँ, वीरानी और उदासी थीं। ये फ़सल के पके दानों की तरह चमकदार, गर्व से सर उठाये हुए, फ़र्श पर बिखरने को तैयार थीं। ये सब विवान के अन्दर धीरे-धीरे बननेवाले एक ऐसे नये जगत से जन्म ले रही थीं जिसके बनने पर, विस्तार पर और उस जगत की रात और दिन की रहस्यमय दीवारों की खूँटियों पर लटकी इन बेचैनियों पर, विवान का कोई नियन्त्रण नहीं था। वह इस जगत का असहाय, मूक दर्शक था। इस जगत ने कभी, किसी से जुड़कर रहने का, सम्पृक्त होने का, किसी जमीन पर मजबूती से फैलनेवाली जड़ों का बोध, उसे नहीं दिया था। सबमें होता हुआ भी विवान कहीं नहीं होता था। विवान अपने चारों ओर होनेवाली घटनाओं के अन्दर, दूसरों के सुनिर्मित, गतिशील जीवन के अन्दर, उसी असहाय तरीके से प्रवेश करता था, जैसे धूल के बगूले के अन्दर अदृश्य शक्तियों द्वारा फेंके गये सूखे पत्ते करते थे। वह घटनाओं से उसी तरह चुपचाप, निर्लिप्त, बाहर निकल आता था, जैसे किसी ट्रेन से उतरकर लोग उसे छोड़ देते हैं। विवान के पास कुछ भी ऐसा नहीं था जो उसे उसके अस्तित्व, उसकी अर्थवत्ता, स्वप्न, स्मृतियों के साथ अपने अन्दर रोक सके। विवान ने कई बार सोचा था कि ऐसा शायद इसलिए है कि उसके पास परिवार, धर्म, परम्पराओं, इतिहास, जाति या राष्ट्र के आस्थावान, अविचलित रहनेवाले उस तरह के मजबूत टीले नहीं थे जैसे दूसरों को, उनके जन्म के साथ, उनकी पीठ पर बाँधकर दे दिये जाते थे और जिन्हें ढोते हुए, वे आसानी से अपने

जीवन में उद्देश्य, सन्तुष्टि और अर्थ भरते रहते थे। विवान को जो मिला था, वह इसके विपरीत था। संशय, दुविधा, सन्धि रेखाओं के साथ दो नस्लों का मिला-जुला इतिहास, परम्पराएँ, रक्त, व्यक्ति और देश थे। यही कारण था कि विवान के पाँवों के नीचे कोई ठोस जमीन नहीं थी। या फिर, यह सब, विवान की किसी अलक्षित, अनजान, लम्बी यात्रा पर निहत्थे जाने की शुरुआत थी। अपने इस निहत्थेपन के सत्य को विवान जानता था। इसीलिए उसने अपनी उँगलियों में कुछ भी पकड़कर रखने की कोशिश छोड़ दी थी। कस्बे की उन दोपहरों में, दार्शनिकों की प्रिय स्थितप्रज्ञता, निर्लिप्तता या फिर साक्षीभाव विवान के इस अन्तर्जगत का स्थायी व मूल भाव बन रहा था। लाइब्रेरी की सफेद, चिकने पत्थरों की घूमती गोल सीढ़ियों से ऊपर हॉल में जाकर किताबें पढ़ने से थकने के बाद विवान जब उसके नक्काशीदार, लम्बे छज्जे पर आता, तब वहाँ से उस मध्ययुगीन लगते कस्बे का पूरा बाज़ार दिखता था। इस बाज़ार में सैलून, बन्दूक की दुकान, लांड्री, दर्जी, दालमोठ बनानेवाला, इत्रफरोश, छोटे मन्दिर, उसके झंडे दिखते थे। गुब्बारे, काग़ज़ के धनुष-तीर, धनुष, मीठी गोली, लइया पट्टी बेचनेवाले, सँपेरे, जादुई सुरमा, राम का कन्दमूल बेचते, कठपुतली का नाच दिखानेवाले दिखते थे। बाज़ार में बिखरा जीवन, बाज़ार के लोग, बाज़ार के रंग, बाज़ार की गन्ध, लाइब्रेरी की किताबों की मटमैली धूल, अलमारियों के चटके शीशे, लम्बी पेंडुलम घड़ी और ऊँघते लाइब्रेरियन को छोड़कर विवान जब नीचे आता, तो उसी क्षण उसका यह निकटतम अतीत, उसके जीवन से लुप्त हो जाता था। वह सब विवान से उसी तरह छूट जाता था जिस तरह काया के पुराने वस्त्रों को त्यागने के बारे में उसने पढ़ा था। यह छूटना विवान की किसी कोशिश से नहीं छूटता था। यह अनायास था। बहुत दिन बाद के दिनों में, लावारिस मय्यत कमेटी के दफ्तर के ऊपर कमरे के अँधेरे में, खिड़की पर बैठकर, अपनी एक चुटकी में दूसरी हथेली की उभरी नसों से भरी खाल की झुर्री को दबाकर, विवान डगलस ने जब कभी इस पर सोचा था, तब उसे लगा था कि बच्चों के खिलौने के घर जिस तरह अलग-अलग रंग, आकृतियों और आकार के खाँचों से जोड़कर बनते हैं और जिस तरह उनमें बँटकर अलग हो सकते हैं, वैसे ही विवान डगलस भी, जब चाहे, अपने जीवन को इस तरह अलग-अलग खाँचों में बाँट सकता था। कस्बे का जीवन, घर का जीवन, हॉस्टल का जीवन, रिमाडी के जंगलों का, जेल का, लावारिस लाशों का जीवन। खिड़की पर बैठा हुआ विवान डगलस केंचुए की तरह रेंगता हुआ आसानी से एक खाँचे से दूसरे खाँचे में,एक जीवन से दूसरे जीवन में, एक स्मृति से दूसरी स्मृति, एक अन्तराल से दूसरे अन्तराल, एक कालखंड से दूसरे कालखंड में सरक सकता था। उसके जीवन के इन खाँचों में, एक सिरे से गुँथा दूसरा सिरा नहीं था जो इन सबको एक सूत्र में, तारतम्य में बाँधकर

उसके जीवन को तार्किकता के साथ कोई अर्थपूर्ण सार्थकता दे सके। कई ऋतुओं की कई रातों में, अपनी आयु, अपने अतीत में वापस लौटते हुए, विवान डगलस ने अपने इस खंडित, निहत्थे विशृंखलित जीवन की उत्पत्ति का गर्भ, गर्भ का भी सूक्ष्मतम बिन्दु ढूँढ़ लिया था। उसका यह जीवन वास्तव में छुट्टियों में घर वापस आने पर उन धूल भरी खाली दोपहरों में बनना शुरू हो गया था जब उसकी बेचैनियों, उदासी और वीरानी के साथ कोई नहीं, सिर्फ़ बल्लीमारान का ग़ालिब रहता था। 'कोई वीरानी-सी वीरानी है—दश्त को देख के घर याद आया।'

उस दोपहर कस्बे के बाज़ार में जाने की, अँगूठी में घर को, माँ को देखने की, अन्दर तक छीलनेवाली शदीद ख्वाहिश विवान के अन्दर पैदा हुई। वह बाज़ार चला गया।

बाज़ार बड़ा हो गया था। दुकानें बढ़ गयी थीं। लोग बढ़ गये थे। सामान बढ़ गया था। बारह सालों में उस कस्बे के और आसपास के लोगों का बदला हआ जीवन बाज़ार में दिखता था। कच्ची सड़क की जगह ईंटों की रोड़ी पड़ गयी थी। जमीन पर कुछ तख़्त भी पड़ गये थे। दुकानों पर फल थे, सब्जियाँ थीं, रस्सी के सामान थे, लकड़ी के छोटे-छोटे जानवर थे, मछली थी, चाकू थे, ताला-चाबी थे। मिट्टी के बर्तन थे, प्लास्टिक के बर्तन थे। रंगीन चमकदार सस्ते कपड़े थे, दवाएँ थीं। बाज़ार में साधू थे, भिखारी थे, जादूगर थे, मदारी थे, नट थे, सरों पर बँधी रंगीन पगड़ियों के अलग-अलग चटख रंग थे, गहरे रंग के कपड़े पहनकर घूमती औरतें थीं। बहुत-सी आवाज़ें थीं, बहुत-से रंग थे, बहुत-सी गन्ध थीं, बहुत-सी देह थीं।

बाज़ार में अँगूठीवाला भी था। वह अपनी दुकान पर उसी जगह, उसी तरह बैठा था जैसा बारह साल पहले, पहली बार विवान ने देखा था। उसके पास अँगूठी रखने की पेटियाँ कुछ बढ़ गयी थीं। उसका एक दाँत और टूट गया था। उसकी बाँह पर बँधे ताबीज़ की संख्या बढ़ गयी थी। माथे के तिलक के रंग भी बढ़ गये थे। उसकी मूँछें कुछ झुक गयी थीं। कानों पर बाल दिखने लगे थे।

विवान उसके पास जाकर बैठ गया। उसने विवान को देखा। वह मुस्कराया शायद उसने विवान को पहचाना, शायद नहीं।

"घर दिखेगा?" विवान ने धीरे-से पूछा।

वह हँसा।

"अब नहीं दिखेगा।"

"क्यों?"

"अब बड़े हो गये हो। बच्चों को दिखता है।"

"क्यों?"

''उनके मन में पहले से कुछ नहीं होता। जो चाहो उसमें डाल दो। बड़ों के अन्दर बहुत कुछ पहले से होता है। उसे हटाकर कुछ नया डालना मुश्किल होता है।''

''शायद कुछ दिखे?''

''क्या देखना है?'' उसने विवान की आँखों में देखा।

''एक जंगल।'' विवान धीरे-से बोला।

''कहाँ है?''

''एक घर में।''

''ठीक से बैठ जाओ।'' उसने विवान से कहा। विवान पैर मोड़कर बिछे हुए कपड़े पर आराम से बैठ गया।

अँगूठीवाले ने अपने पीछे रखे बक्सों में से एक बक्से का ताला खोलकर एक डिब्बा निकाला। उस डिब्बे से एक बड़ी अँगूठी निकाली। अँगूठी में बड़ा काला पत्थर लगा था। अँगूठी को अपनी हथेलियों में बन्द करके वह कुछ देर बुदबुदाया फिर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। अँगूठी को माथे से छुआया, फिर आँखें खोलीं। उसने अँगूठी का पत्थर विवान की आँखों के सामने कर दिया।

''जो देखना है एक बार उसके बारे में आँख बन्द करके सोचो।''

विवान ने आँखें बन्द कर लीं। गुल्लू के घर के बारे में सोचा फिर आँख खोलकर अँगूठी देखने लगा। अँगूठी में अब गुल्लू का घर दिख रहा था।

''दिखा?'' विवान ने उसकी आवाज़ सुनी।

''हाँ।''

''अब अन्दर जाओ, चलते चले जाओ।''

विवान घर के अन्दर चला गया। सीढ़ियाँ दिखीं, पहली मंज़िल दिखी, सीढ़ियाँ दिखीं, दूसरी मंज़िल दिखी, चेन से बँधा कुत्ता दिखा, गलियारे का झूला दिखा। ऊपर छत दिखी, गुल्लू का कमरा दिखा। घर में घूमते कुछ अपरिचित चेहरे दिखे। विवान पूरे घर में घूमता रहा। फिर नीचे आया। फिर रसोई में आया, फिर बाहर की बालकनी में आया। वह बालकनी में थी। उसके बाल खुले थे। बालकनी की रेलिंग पर कुहनियाँ टिकाए झुकी खड़ी थी। उसका चेहरा हथेली पर था। बाहर की गर्म हवा और धूप से उसके चेहरे पर थोड़ी लाली थी जिसमें उसकी पतली खाल के नीचे की नसें तनी हुई थीं। उसके बालों के बीच उससे भी ज़्यादा कत्थई आँखों में उछलता हुआ पानी था।

''जंगल दिखा?'' विवान ने अँगूठीवाले की आवाज़ सुनी।

''हाँ।''

''क्या कर रहा है?''

''रो रहा है।''

अँगूठीवाला एक क्षण चुप रहा।

''देखोगे?''

''क्या?''

''उसके आँसुओं में कौन है?''

''हाँ।'' विवान की आँखें अँगूठी पर थीं।

अँगूठीवाला कुछ बुदबुदाया फिर बोला, ''देखो।''

अँगूठी में लड़की का चेहरा पास आया, फिर उसकी आँखें आयीं, फिर आँखों का पानी, पानी में तैरती कुछ आकृतियाँ। इन आकृतियों में वही रात थी, वही बालकनी थी। फिर कुर्सी पर बैठा विवान आया। विवान की गोद में बैठी वह आयी। उसके पेट के तालाब में उतरता हुआ विवान का चेहरा आया।

अँगूठी से फिर सब अचानक गायब हो गया। विवान ने काले पत्थर से नज़र हटा ली। उसकी आँखें दर्द कर रही थीं। अँगूठीवाले ने अँगूठी अपनी मुट्ठी में दबा ली। उसने कुछ देर विवान की सूजी हुई आँखें देखी फिर धीरे-से बोला, ''जंगल तुम्हारी ज़िन्दगी में बहुत दूर तक हैं, हर तरह के जंगल।''

विवान ने उसकी बात सुनी।

''यह अँगूठी में देखा है?''

''मुझे अँगूठी में देखने की ज़रूरत नहीं है।'' उसने अँगूठी वापस डिब्बे में रख दी। विवान उठ गया। उसने अँगूठीवाले को दस रुपये दिये।

उस क्षण, बिल्कुल उसी क्षण विवान ने तय कर लिया कि वापस लौटकर वह बाबू के पास, रिमाडी के जंगलों में चला जाएगा।

दोपहर को विन्सेंट खाना खाने घर आया। विवान उसके साथ खाने की मेज पर बैठा। माँ उसकी कुर्सी के पास खड़ी होकर दोनों का खाना लगाने लगी। मौसी रसोई में थी।

''तुम्हारी गाड़ी रात की है?'' विन्सेंट ने पूछा।

''हाँ।'' विवान ने कहा।

''तुम चाहो तो खाने के बाद मेरे साथ चल सकते हो, कारखाना देखो।''

विवान कुछ नहीं बोला। सर झुकाए हुए हल्दीवाले मीठे चावल खाता रहा।

''चाहो तो आराम करो।''

''मैं थोड़ा सो लूँगा।''

विन्सेंट फिर कुछ नहीं बोला।

''वह अँगूठी कहाँ है?'' विवान ने पूछा।

''कौन-सी?'' विन्सेंट ने हैरानी से विवान को देखा।

''विलमौट डगलस की।''

विन्सेंट फिर सर झुकाकर खाने लगा।

''वह अफगानिस्तान की लड़ाई में मारा गया था। तब उसकी उँगली में थी। वहाँ किसी ने उस उँगली को काट लिया था।''

''और आकाशदीया? विलमौट को मिला कहीं?''

''शायद नहीं।''

मेज पर फिर चुप्पी छा गयी।

''मैंने रास्ते के लिए भी और तुम्हारे हॉस्टल के लिए भी खाने का सामान बना दिया है।'' माँ इस खामोशी से घबराकर बोली, ''कुछ खुद भी खा लेना, दोस्तों में ही सब मत बाँट देना।''

विवान कुछ नहीं बोला। रसोई में उसके ले जाने का सामान ही बन रहा था। विवान अभी घर से गया नहीं था पर उसका जाना घर की हर चीज़ पर दिख रहा था। जाने से पहले ही विवान एक तरह से घर से जा चुका था।

खाना खाकर विन्सेंट चला गया। उसने विवान से कोई बात नहीं की। बीती रात हुई बातों का भी कोई ज़िक्र नहीं किया। विवान ने क्या चुना, यह भी नहीं पूछा। क़ब्रों के नीचे की ज़िन्दगी की खामोशियों का, फिर न सुनाई देनेवाली सरगोशियों की भाषा समझने का उसे अनुभव था।

माँ विवान के लिए सामान तैयार करने और रखने के लिए मौसी के साथ ही रसोई में लग गयी थी। खाली दोपहरी में विवान यूँ ही गलियारों में घूमता रहा फिर पलँग पर लेट गया।

रात की गाड़ी से विवान चला गया। मौसी खम्भे के पीछे खड़ी थी। विन्सेंट नहीं आया था। माँ उसे बाहर तक छोड़ने आयी। जाते समय विवान ने आख़िरी बार माँ को देखा।

वह छोटी चहारदीवारी के पीछे खड़ी झाँक रही थी। दीवार ऊँची थी। वह एड़ी हवा में लटकाए पंजों की उँगलियों के सहारे खड़ी थी। उँगलियों पर खड़े होने से वह थोड़ी-थोड़ी देर में हिल रही थी। इस तरह खड़े होने से उसका छोटा-सा चेहरा दीवार की मुँडेर तक आ गया था। उसने उसे दीवार पर टिका दिया था। वह दीवार पर रखे हुए एक कटे सर की तरह लग रहा था। उस चेहरे पर बेपनाह उदासी थी, दुख था। चेहरे की आँखों में गहरी करुणा थी, ममता थी, शान्ति थी, अथाह प्रेम था। जिस तरह वह पंजों के बल खड़ी होकर दीवार के बाहर झाँक रही थी, उसी तरह उसके अन्दर की यह उदासी, करुणा, प्रेम भी पंजों के बल खड़े थे और उसकी

आँखों के बाहर झाँक रहे थे। वे भी काँप रहे थे।

दो दिन बाद हॉस्टल में विवान बाबू के बताए हुए सूत्र से मिला। दो महीने की लम्बी छुट्टियाँ थीं। विवान उसके साथ रिमाडी के जंगलों में चला गया। विवान फिर कभी हॉस्टल नहीं लौटा। विवान फिर कभी घर भी नहीं आया। कभी माँ से, मौसी से, विन्सेंट से नहीं मिला। रिमाडी के जंगलों में कोई अँगूठीवाला भी नहीं था, जिसकी अँगूठी में विवान घर को और घर के अन्दर इन्हें देख सकता।

1956 से 1973 तक विवान रिमाडी के जंगलों में, जंगलों के आसपास की बस्तियों में, सीमापार के देशों में रहा।

बाबू को विवान के आने की सूचना मिल चुकी थी। विवान को देखकर वह ख़ुश हुआ। विवान को वह अपने खेमे के अन्दर ले गया। गर्म आलू, चावल और कच्ची मूली खिलाने के बाद उसने विवान को सुला दिया था। विवान की आँख जब खुली तब रात शुरू हो रही थी। नींद ग़लत समय पर आयी थी, ग़लत समय पर खुली थी। वे सब बाहर खुले में रात का खाना खा रहे थे। विवान उनके बीच में जाकर बैठ गया।

वे करीब पैंतीस लोग थे। वे सब विवान की आसपास की उमर के ही थे। उनके कपड़े साधारण थे, भाषा साधारण थी, चेहरों के नाक-नक्श साधारण थे। वे सब भीड़ में फ़ौरन गुम हो जानेवाले, अलग से न दिखनेवाले थे। वे बिल्कुल वैसे ही थे जैसे देश की सड़कों पर, खेतों में, कारखानों में होते थे। उनमें कुछ चुपचाप खा रहे थे, कुछ बहुत धीरे-धीरे फुसफुसाते हुए बोल रहे थे। हल्के अँधेरे में सबके सर झुके हुए थे। वे कहीं अलग थे, कहीं दो-तीन के झुंड में पर उनके चेहरों की भुजाएँ, रेखाएँ, रंग अलग नहीं थे। उनमें कोई फ़र्क़ भी नहीं दिखता था।

वह घना जंगल था। हल्की भूरी और लाल मिट्टी से आसपास के पेड़ सने हुए थे। दिन की तेज़ हवाओं में वह मिट्टी बहुत ऊपर तक जाती थी और पेड़ों को ढक लेती थी। पेड़ भी अपने अलग-अलग रंग, पहचान खो चुके थे। वे सब भी एक ही रंग के, आकृति के दिख रहे थे। ऊपर बहुत साफ़, बहुत चमकदार आसमान था। विवान ने उसे हैरानी से देखा। विवान ने इतने बड़े और चमकते हुए तारे पहले कभी नहीं देखे थे। ऐसा सुन्दर आसमान नहीं देखा था। यह जंगल के गहरे अँधेरे का असर था, या फिर उसके ऊपर की खुली साफ़ हवाओं का या फिर वहाँ आसमान कुछ ज़्यादा पास था।

खाने के बाद बाबू ने विवान से सबका परिचय कराया। उस समूह में दो लड़कियाँ भी थीं। सोनिया नाम की एक लड़की बाबू की ख़ास मित्र थी। वह बाबू

के साथ ही पढ़ती थी। बाबू के बाद वह भी उसके साथ आ गयी थी। बाबू ने विवान का कोई ख़ास परिचय नहीं दिया। किसी ने कुछ पूछा भी नहीं। बस अपना परिचय आने पर वे सब विवान को देखकर मुस्कराए थे। कुछ ने हाथ भी मिलाया था। परिचय के इस छोटे-से वक्फे में या कि जंगल में आने के बाद से, विवान ने जो पहली बात महसूस की, वह यही थी कि बाबू का सब पर निर्विवाद नियन्त्रण था और उन सबके अन्दर भी बाबू के प्रति प्रश्नविहीन समर्पण था।

खाना ख़त्म होने के बाद वे सब अपने तम्बूनुमा ढाँचे में चले गए थे। तीन लड़के पहरे पर जंगल में फैल गये। बाबू विवान को टहलाते हुए, वहाँ से थोड़ी-सी दूर पर अलग एक छोटी-सी पहाड़ी पर ले गया।

''चलो बातें करते हैं।'' बाबू ने कहा, ''तुम्हारी थकान भी अब तो दूर हो गयी होगी, तुम जब आये थे तब बिल्कुल निढाल थे।''

एक उभरी चट्टान पर बाबू बैठ गया। विवान भी। बाबू ने सिगरेट जला ली। उसकी दोनों हथेलियाँ इस तरह सिगरेट को ढके थीं कि सिगरेट की चिंगारी उसमें छुप गयी थी।

उसने सिगरेट की डिब्बी विवान की तरफ बढ़ायी। विवान ने सर हिला दिया। बाबू देर तक चुपचाप सिगरेट पीता रहा। उन दोनों के चारों ओर ऊँचे पेड़, हल्की ठंडी हवा, दूर तक पसरा सन्नाटा, पहाड़ी से नीचे दिखता उनका छोटा-सा कैम्प था, गहरी होती हुई रात थी।

''मुझे विश्वास था कि तुम आओगे।'' बाबू कुछ देर बाद धीरे-से बोला, ''हम आदमी का चुनाव करने में अक्सर ग़लती नहीं करते हैं। तुम अब कुछ दिन हमारे साथ रहो...देखो। तुम्हें अगर लगता है कि जो हम सोचते हैं, जो कहते हैं और उसे जिस तरह करते हैं, उन सबको जीवन का एक उद्देश्य, एक लक्ष्य बनाया जा सकता है, तो हमारे साथ इस संघर्ष में शामिल हो जाओ। हमें हथियार उठानेवाले किसान या बेरोजगार लड़के आसानी से मिल जाते हैं पर ऐसे लोग नहीं मिलते जिनके दिमाग़ में सारी बातें बिल्कुल साफ़ हों। जो इस पूरी लड़ाई का उद्देश्य समझते हों। क्या पाना है, कैसे पाना है, इसमें उन्हें कोई भ्रम न हो। वे इस संघर्ष को ग़लत दिशा में जाने से हमेशा रोकें। सबसे बड़ी बात है कि ऐसे लोग ही नये लड़कों को समझाकर, मजबूत बनाकर हमारे लिए तैयार कर सकते हैं। हमें तुम्हारी ज़रूरत इसीलिए ज़्यादा है क्योंकि तुम यह कर सकते हो। हमें तुमसे सबसे पहला काम यही लेना है कि तुम हमारे छोटे-छोटे केन्द्रों में जाकर, लोगों के दिमाग़ों के अन्दर इस संघर्ष को शुरू करो। हमारे पास तो वे फिर आ ही जाएँगे। अभी तुमने जो लड़के देखे, ये सब अनुशासित सिपाही की तरह हैं, बस। ये मर सकते हैं, मार सकते हैं। इनके अन्दर घृणा है, क्रोध है, पर गहरी विचारधारा नहीं हैं। अगर है भी, तो

धुँधलायी-सी, विकलांग-सी है, जो बहुत दूर तक नहीं जाती। यह बहुत जल्दी ग़लत दिशा में मुड़कर हत्याओं में गुम हो सकती है।'' बाबू फिर चुप हो गया। उसने सिगरेट के कुछ कश लिये फिर धीरे-धीरे बोलने लगा।

''पिछली बार तुम्हारे अन्दर चीज़ें साफ़ नहीं थीं। स्थितियों का अस्वीकार था पर उनके लिए घृणा नहीं थी। उन्हें बदलने का संघर्ष करने की इच्छा नहीं थी। तुम कविता कर रहे थे। शायद प्रेम में भी होगे। तुम्हारे पास कुछ स्मृतियाँ थीं...मजबूत और तुम्हें नियन्त्रित करनेवाला अतीत था। कविता और प्रेम तो तुम्हारे साथ हमेशा, बहुत दूर तक, तुम्हारी शक्ति की तरह साथ जा सकते हैं, पर तुम्हारी स्मृतियाँ, तुम्हारा अतीत नहीं। तुम्हारे अवचेतन में रहने पर भी नहीं। मुझे विश्वास है कि तुम यहाँ आये हो तो अपने अतीत से, स्मृतियों से मुक्त होकर आये होगे। पूरी तरह नहीं भी, तो यह सोचकर कि तुम्हें इनसे मुक्त होना है।''

''मैं इनसे मुक्ति नहीं चाहता।'' विवान ने एक सूखी टहनी का टुकड़ा उठाकर तोड़ते हुए कहा, ''मैं यह सोचकर ही आया हूँ। बल्कि हो सकता है कि ये मुझे बेहतर योद्धा बना सकती हों, निर्मम और पूरी तरह प्रतिबद्ध। मैं साफ़ बता दूँ कि मैं अपनी स्मृतियों को छोड़कर नहीं, साथ लेकर आया हूँ।''

बाबू कुछ नहीं बोला। चुपचाप आँखें सिकोड़कर सिगरेट पीता रहा।

''मैंने तुम्हें बताया था कि मुझे वह सब अस्वीकार है जो मेरे चारों तरफ है। उसमें मेरा परिवार भी है, मेरी मिश्रित नस्ल है, मेरी जाति, मेरा संघर्ष, मेरी शिक्षा, यह समाज, देश भी है। तुम्हें मेरे इस अस्वीकार से सरोकार होना चाहिए। अगर इस अस्वीकार को जीवित रखने में, इसे धारदार हथियार बनाने में मेरी स्मृतियाँ मदद करती हैं, तो तुम्हें केवल इस बात से सरोकार होना चाहिए। वे क्यों हैं, किस रूप में हैं, होनी चाहिए या नहीं, इससे नहीं। हो सकता है धीरे-धीरे घृणा, रक्त, संघर्ष के बीच रहने और पलनेवाली मेरी जिजीविषा, मेरी स्मृतियों को धूमिल कर दे, और तब मैं स्मृतिविहीन होकर, अतीतविहीन होकर वैसा बन जाऊँ जैसा तुम चाहते हो। जैसे तुम स्वयं हो। पर अभी मेरे अन्दर यह नहीं है। तुम इसे अच्छी तरह समझ लो। मैं इसे छुपाना नहीं चाहता, बल्कि हो सकता है अपनी इस गुफा से हमेशा के लिए कभी बाहर ही न निकलूँ और मेरे निर्णयों, मेरी युयुत्सा, मेरे संघर्ष, मेरे चिन्तन पर इनकी परछाईं पड़ती रहे।''

''यही भय है,'' बाबू बोला, ''यही होता है। मैंने देखा है इसलिए मैं शंकित हूँ। उत्तेजना में, अनिर्णय की स्थिति में, जोश में लोग इस रास्ते पर आ जाते हैं। पर पहली हत्या देखते ही, पुलिस से पहली मुठभेड़ में या फिर इस कठोर ज़िन्दगी में कुछ दिन बिताने पर वापस लौटना चाहते हैं। पर वह रास्ता बन्द हो चुका होता है। हम इसकी अनुमति नहीं देते। हमारे अपने संविधान में गद्दारी की और हमें

छोड़कर जाने की सजा बराबर है। इसमें मौत निश्चित है। हम उस व्यक्ति को बकायदा मुकदमा चलाकर, आरोप तय करके, सबको दिखाकर, सबके सामने गोली मारते हैं। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि हमारे अन्तरंग जीवन में, उसके ढाँचे में, हमारे संघर्ष और सम्पर्क सूत्रों में, हमारे इस जीवन में तुम प्रवेश करो, इसके पहले स्वयं को अच्छी तरह टटोल लो। अगर तुम्हारे अन्दर संशय है, दुविधाएँ हैं, भय है तो तुम अभी यहीं से लौट सकते हो।'' बाबू की सिगरेट ख़त्म हो गयी। उसने दूसरी जला ली। विवान कुछ नहीं बोला।

''क्या तुम्हारे अन्दर भय है?'' बाबू ने पूछा।

''किसका?''

''किसी का भी?''

विवान ने कुछ क्षण सोचा।

''हाँ...वे सब मनुष्य विरोधी संरचनाएँ, जिन्हें मैं अस्वीकार करना चाहता हूँ, कहीं, किसी दिन मैं स्वयं उनका हिस्सा न बन जाऊँ। मनुष्य से ऊपर ऐसी किसी भी संरचना पर विश्वास करके उसको सुरक्षित और मजबूत बनाने न लगूँ। मनुष्य से अलग, उससे ऊपर किसी सत्ता को कहीं मानने न लगूँ। तुम्हारे साथ, तुम्हारी संरचना में इसलिए आ रहा हूँ कि यह मनुष्य के निकटतम है। उसको वह सब पूरी ईमानदारी से देना चाहती है जो उसका अधिकार है।''

बाबू ने विवान के कन्धे पर हाथ रखा।

''हमारी लड़ाई बहुत लम्बी है, या यूँ कहो कि कभी न ख़त्म होनेवाली है। इसमें थकना या बैठना या इसे बीच में छोड़ना संभव नहीं है। हमें इसीलिए बहुत कम लोग, बहुत धीरे-धीरे मिलते हैं। इसीलिए हर व्यक्ति हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। मैंने तुम्हें कई बार बातें करते सुना है, जब तुम्हें पता नहीं होता था, तब भी। हमें यह सब बदलना है'', बाबू धीरे-धीरे बोल रहा था, ''पूरी दुनिया में इस समय ऐसी लड़ाइयाँ चल रही हैं। इसी तरह कभी किसी जंगल में, कहीं किसी पहाड़ी पर या फिर किसी के दिमाग़ में। वे सब कामयाब भी होते हैं। हम भी होंगे। हो रहे हैं। हमारे इस तरह के पाँच समूह हैं और बहुत बड़े क्षेत्र में हम सक्रिय हैं, प्रभावी हैं। हमारा आपस में सम्पर्क हैं, सीमा पार भी हैं। हम अपने क्षेत्रों में धीरे-धीरे एक समानान्तर सत्ता, व्यवस्था बनाते चलते हैं जो हर तरह से मनुष्य के समर्थन में है। हम न्याय करते हैं, हम विरोधियों को मारते हैं, हम सुरक्षा देते हैं। लोगों का मौजूदा सरकारी तन्त्र पर भरोसा ख़त्म करते हैं। धीरे-धीरे लोग हम पर और हमारी ताकत पर विश्वास करने लगते हैं। हमें अपने घरों में छुपाते हैं, सूचनाएँ देते हैं, अनाज, हथियार पहुँचाते हैं। हम अपना दायरा बड़ा करते चल रहे हैं। यह बड़ा होता जाएगा और ऐसा समय आएगा जब इस सत्ता को, तन्त्र को चलानेवाले भी हमारे साथ जुड़ने

लगेंगे। उनकी पुलिस, उनके अधिकारी, उनकी प्रजा, उनकी सेना हमारे विरुद्ध लड़ने से मना कर देगी। वही हमारी जीत होगी। हमारे अपने लोगों के हाथ में सब होगा'', बाबू की आँखें चमक रही थीं। उत्तेजना से, स्वप्न से। वह कुछ देर चुप रहा फिर बोला, ''हम यह किसी तरह स्वीकार नहीं करेंगे कि कोई हमारी इस लड़ाई को बीच में रोके या हमें धोखा दे जिससे हमें पीछे हटना पड़े। कोई भी। इसीलिए हम किसी भी नये व्यक्ति का चुनाव बहुत सतर्क होकर करते हैं। अगर कभी हमारा यह चुनाव ग़लत हो गया, तो मैं खुद अपने हाथ से उस व्यक्ति को गोली मारता हूँ।'' बाबू ने सीधा विवान की आँखों में देखा। उसकी आँखें अभी तक चमक रही थीं। विवान को पहली बार लगा कि वह जंगल में है और झाड़ी के पीछे छुपे तेंदुए की आँखें भी ऐसी ही चमकती होंगी। उनमें अब रक्त था, उसका स्वाद और आनन्द भी था।

विवान चुप था। उसके अन्दर एक गहरी नीरवता थी। कोई स्फुरण, कोई स्पन्दन, कोई आवेग नहीं था। शान्ति से, निर्लिप्तता से वह बाबू की बातें सुन रहा था।

''एक बार मुझे एक गुफा में चार दिन छिपकर रहना पड़ा। वहाँ मैंने एक तिलचट्टे और एक मकड़ी से कुछ बातें सीखीं जो किसी भी गुरिल्ले के लिए बेहद ज़रूरी हैं। मैंने वहाँ मरते हुए तिलचट्टे की जिजीविषा देखी। जीवन के लिए उसकी तड़प, उसका संघर्ष देखा। वह उल्टा होकर पैर हवा में फड़फड़ा रहा था। उसके एंटीना चारों ओर घूम रहे थे। मैंने उसे इस हालत में रात में देखा था। चाँदनी के छोटे से टुकड़े पर फड़फड़ाते हुए। मैं उसे सीधा कर सकता था पर मैंने नहीं किया। सुबह मैंने देखा वह थक गया था, पर थोड़ी-थोड़ी देर में फिर हिलता था, पैर हवा में नचाता था,पलटने की कोशिश कर रहा था। उसके अन्दर मृत्यु से संघर्ष की, जिजीविषा की, जीवन की तड़प की अदम्य चाह थी। मैंने मकड़ी को भी देखा। वह चट्टान के एक कोने पर बैठी थी। तीन दिनों तक वह मुझे उसी तरह बैठी दिखी। निष्चेष्ट, गतिविहीन। उसकी एकजुटता, उसका स्वयं पर नियन्त्रण और दृढ़ निश्चय अद्भुत था। उन दोनों को देखने के बाद मैंने पाँच सूत्र पाये थे। मृत्यु से अन्त तक संघर्ष, संघर्ष में ही जिजीविषा के सूत्र, एकाग्रता, आत्म नियंत्रण और दृढ़ निश्चय। जिसके पास ये सब हों वह कभी नहीं हारेगा। कभी कमज़ोर नहीं होगा। तुम भी जितनी जल्दी अपने अन्दर तिलचट्टे और मकड़ी की ये शक्तियाँ विकसित कर लोगे, उतनी ही जल्दी तुम अपने लक्ष्य के नज़दीक पहुँच जाओगे।'' बाबू ने विवान के कन्धे से हाथ हटा लिया।

पीछे आहट हुई। बाबू ने सर घुमाकर देखा। सोनिया ऊपर आ रही थी। पास आकर वह भी चट्टान के दूसरे पेड़ की उभरी जड़ पर बैठ गयी। विवान को

देखकर वह मुस्करायी।

''तुम्हारा नाम बहुत बड़ा है,'' उसने विवान से कहा, ''सबसे पहले इसे थोड़ा छोटा करते हैं। विवान डगलस...विवान...वीवा। यह ठीक है—क्वाइट इम्प्रेसिव...वीवा। तुम्हें अब हम वीवा बुलाएँगे।'' विवान मुस्कराया। उसे लगा कि उसके बारे में ये दोनों पहले ही बहुत बातें कर चुके हैं। शायद ऊपर तक भी बहुत कुछ तय हो चुका है। वे सब शायद यह भी जानते थे कि विवान आएगा। वे उसका इन्तज़ार कर रहे थे।

''तुम्हें पता है कि विवान कविताएँ लिखता है,'' बाबू ने सोनिया से कहा, ''ग़ज़लें गाता है पर सिर्फ़ ग़ालिब की।''

''क्यों? सिर्फ़ ग़ालिब क्यों?'' सोनिया ने विवान से पूछा। विवान चुप हो गया। उसने इस छोटी पहाड़ी से नीचे देखा। दूर कहीं पानी बहने की आवाज़ थी, पत्तों की खुशबू थी, ठंडी हवा थी, एकान्त था, नामालूम-सा वीतराग था। विवान ने सोचा कि अब जब भी माँ से मिलेगा तो यही सवाल पूछेगा।

''तुम्हें विवान का...नहीं वीवा का स्वागत अलग से करना चाहिए। पूरी गर्मजोशी और पूरी बुलन्दी के साथ।'' बाबू ने सोनिया से कहा।

सोनिया ने अपना हाथ आगे बढ़ाया। विवान ने उसकी हथेली अपनी हथेली में दबा ली।

''तुम्हारी एक नयी शुरुआत और हमारी नयी दोस्ती के लिए।'' सोनिया मुस्करायी। विवान भी। उसने सोनिया का हाथ छोड़ दिया।

''कल सुबह हम निकलेंगे'', सोनिया ने बाबू से कहा, ''मेरे पास अगले कैम्प की सूचनाएँ आ गयी हैं। वहाँ सिर्फ़ दो बन्दूकें हैं। एक रिटायर्ड फौजी के पास और एक गाँव के ठाकुर के पास। हम वहाँ तीन दिन रुकेंगे। आगे हमें बड़ा हमला करना है। पुलिसवालों से भरी एक गाड़ी निकलेगी।''

बाबू चुपचाप सुन रहा था। विवान भी।

''हम सबको सोना चाहिए।'' सोनिया उठ गयी। ''सुबह जल्दी निकलना है।''

''तुम हमारे साथ ही सो।'' बाबू ने विवान के कन्धे पर हाथ रखा फिर उठ गया। विवान भी।

''कल तुम्हें सबसे पहले रिवाल्वर चलाना सिखाएँगे।'' बाबू आगे चलते हुए घूमकर बोला। उसका हाथ सोनिया के कन्धे पर था। उनके पीछे विवान था।

विवान ने चाँद की हल्की रोशनी में अपनी परछाईं देखी। वीवा की परछाईं विवान से बड़ी थी।

पाँच दिन बाद विवान ने एक गाँव में बीस लोगों के सामने अपना पहला भाषण दिया। उसके साथ बाबू और सोनिया भी थे। विवान धीरे-धीरे, बदलती मुद्राओं के साथ बोला था।

''अगर ध्यान से देखो, तो इस महान लोकतन्त्र के नाम पर तुम कुछ अय्याश, जर्जर देहोंवाले, क्रूर सामन्तों के घुटनों के नीचे दबे हुए जी रहे हो। तुम्हें गुलाम बनाए रखने के लिए इनके पास अब बदले हुए, नयी तरह के चाबुक हैं। ये चाबुक आवाज़ नहीं करते, दिखते भी नहीं। ये सुन्दर नक्काशी किए हुए, रंगीन परों से बने हैं। इन चाबुकों के नाम, कानून, संविधान, जेल, न्याय हैं। इन्हें फटकारते हुए, धीरे-धीरे संगठित रूप से जीवन की आवश्यकताओं पर नियन्त्रण करते हुए ये तुम्हें इनसे वंचित करते जाते हैं। तुम इन आधारभूत आवश्यकताओं के लिए तड़पना शुरू करते हो। उनको पाने के लिए आपस में लड़ते हो। उनकी गहरी इच्छा करते हो और इनकी गुलामी से मुक्ति का स्वप्न देखना, इनसे संघर्ष करना छोड़ देते हो। ये आवश्यकताएँ पानी, अन्न, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, न्याय, गरिमा जैसी मामूली होती हैं जो वास्तव में तुम्हारा अपना अधिकार है। तुम्हें ये सब देने का वायदा करके ही वे तुमसे गुलामी के उस पट्टे पर तुम्हारी खुशी और सहमति से करार करवाते हैं, जिसे तुम्हारा 'वोट' कहा जाता है। तुम विश्व के महानतम लोकतन्त्र की रक्षा के नाम पर, अपने लोकतान्त्रिक अधिकर के नाम पर, खुशी से पाँच साल के लिए, अलग-अलग चेहरोंवाले इन हत्यारे सामन्तों की गुलामी करने के लिए तैयार हो जाते हो। इन पाँच सालों में तुम्हें पता नहीं चलता, पर इन भूखे भेड़ियों के सामने तुम उस नन्हे हिरन की तरह खुले घूमते हो, जो झुंड में, आपसी तालमेल से तुम्हें फाड़ने के लिए अपनी अँधेरी, बदबूदार माँदों से बाहर निकलते रहते हैं। कभी उस हिरन को देखो। उसकी आनन्दरत मैथुन की आवाज़ें, उसकी किलकारियाँ, उसकी तृप्ति, उसका सुख भेड़ियों को परेशान करता है। उसका यह सुख ही इन्हें हत्या का निमन्त्रण देता है। गिरोहों में संगठित होकर, हत्याएँ करते हुए, पाँच साल तक ये तुम्हारे घुटने झुकाते चले जाते हैं। पूरी बर्बरता,पाखंड, बेशर्मी और तुम्हारे लिए गहरी घृणा के साथ। दुर्भाग्यपूर्ण है कि तुम स्वयं इन्हें अपने ऊपर शासन करने के लिए बुलाते हो। आँखों पर पट्टी बँधे गुलाम से बुरा, बहुत बुरा वह है, जो खुली आँखों के साथ गुलामी कर रहा है। ध्यान रखो, इनसे मुक्ति पाने के लिए तुम्हारे पास दूसरा कोई मार्ग नहीं है सिवाय एक चमकती रोशनीवाले मार्ग के। तुम्हें कुछ नहीं करना है, सिवाय इसके कि तुम अपनी ओर उठी उनकी भूखी आँखों, पैने नाखूनों और नुकीले दाँतों को इनके पेट में ही भोंक दो। ये धरती के सबसे बड़े कायर होते हैं। ये चीखते हुए अपनी पीले चेहरों और फटी आँखों के

साथ भागेंगे। पर तुम इन्हें भागने मत देना। इनके लार से भरे जबड़े को फाड़ देना, इनके नथुनों में उँगली डालकर उन्हें चीर देना। मत भूलना, कि उन्होंने तुम्हारे निरीह सपनों को, तुम्हारे निष्कलुष जीवन को, तुम्हारी पवित्र सन्तानों की हत्या की है। तुम्हें अपने पाँवों से रौंदा है। इन्हें छोड़ना मत। अगर इन्हें छोड़ दिया तो ये बहुत शीघ्र अपने घिनौने वंशज पैदा करेंगे जो इनसे भी अधिक निकृष्ट और क्रूर होंगे। तुम सब असंख्य हो, ये मुट्ठी भर। तुम इन्हें एक बार इनकी सुरक्षित माँदों से बाहर निकालकर इन्हें फाड़ दो, तुम अपने कन्धे पर लटके इनके चाबुक से मुक्ति पा लोगे। पर ध्यान रखना, हमेशा के लिए मुक्ति नहीं मिलेगी। इनकी जगह तत्काल दूसरे आएँगे, दूसरे मुखौटे में, दूसरी जबानों में बोलते हुए। तुम फिर उन्हें पहचानो, फिर उन्हें चीर दो। यह सिलसिला तब तक चलने दो जब तक ये पागल कुत्तों की तरह, अनन्त बियाबानों में अपनी दहशत के साथ बिलबिलाते हुए मर नहीं जाते। इसमें बहुत समय नहीं लगेगा। तुम इनसे मुक्त होते चलोगे और एक समय ऐसा आएगा जब तुम नहीं, तो तुम्हारी सन्तानें किसी की गुलाम नहीं होंगी। मनुष्य को मिलनेवले हर सुख, हर अधिकार में हिस्सेदार होंगी। उसकी नियन्त्रक होंगी। ध्यान रखो, यह सब सिर्फ़ और सिर्फ़ तब होगा, जब तुम अपने इन भाग्यविधाताओं के सर अपने-अपने शहरों, कस्बों में, चौराहों पर उतारोगे। इस काम में हम लोग तुम्हारे साथ हैं। हम तुम्हें धारदार हथियार देंगे, बहादुर साथी देंगे, शक्ति देंगे, सुरक्षित शरण देंगे और इसी के साथ तुम्हें और तुम्हारी सन्तानों को कभी न बुझनेवाली रोशनी देंगे। एक खुशहाल चमकदार जीवन देंगे।''

विवान ने जब ख़त्म किया तब बाबू उठकर उसके पास आया। उसकी आँखों में प्रशंसा और हैरत थी। विवान को चिपकाकर वह उसके कान में फुसफुसाया, ''मैं बिल्कुल भी ग़लत नहीं था।''

विवान डगलस ने एक कराह सुनी।

कराह कड़े से नहीं आयी थी। पलँग के उस हिस्से से भी नहीं आयी थी जहाँ सर रखकर वह लेटा था। विवान के घुटनों की चिड़िया भी नहीं बोली थीं। ओस की आवाज़ भी नहीं थी, पत्तियों के गिरने की आवाज़ भी नहीं थी। तलाकशुदा बेगमों और बूढ़ी औरतों की प्रेतात्माएँ सिर्फ़ नीचे के गलियारों में घूमती थीं। उनकी कराहें ऊपर तक नहीं आ पाती थीं। कोई लावारिस मय्यत छोड़ गया है और वह जीवित हो गयी हो, यह उसकी कराह भी नहीं थी। आवाज़ फिर आयी। इस बार कोई जोर से कराहा था। विवान डगलस उठ गया। कोई था कमरे में।

रसोई के बल्ब की रोशनी पलँग तक आ रही थी। उसके बाद बाहर की

खिड़की से आती रोशनी थी। यह बल्ब की रोशनी से कमज़ोर थी। यह अँधेरे को भेद नहीं पाती थी। उसके ऊपर गिर पड़ती थी बस। उसके साथ गुँथी बुनी-सी। इस रोशनी के पार दीवार के साथ एक बिल्ली बैठी थी। उसका सर एक छोटे-से जार में फँसा था। विवान डगलस को देखकर अपनी देह का पिछला हिस्सा ज़मीन से चिपकाते हुए वह पीछे हटी और दीवार से बिल्कुल सट गयी। विवान डगलस ने उसे पहचान लिया। यह मुंशी की बिल्ली थी। उसके घर में घूमती थी। मय्यत कमेटी के दफ्तर में घूमती थी। वही धीरे-धीरे कराह रही थी। उसकी गर्दन और जार के मुँह के बीच में ज़रा-सी फाँक थी जिससे उसे हवा मिल रही थी। उसकी आँखें जार के अन्दर से भी चमक रही थीं। वे बिल्कुल रसोई के बल्ब की तरह हो गयी थीं। पलँग पर बैठा हुआ विवान कुछ देर उसे देखता रहा फिर पलँग से उतरकर धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ा। उसे अपनी ओर आते देखकर बिल्ली दुम हिलाकर गुर्रायी। उसने अपनी देह को तानना शुरू किया। विवान ने सोचा था कि बिल्ली उसे भी पहचानती होगी जैसे वह बिल्ली को पहचानता था। विवान को विश्वास था कि वह अगर बिल्ली को पकड़ लेगा तो जार से उसका सर बाहर निकाल देगा।

तभी सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ मुंशी चढ़ा। कमरे में घुसते ही उसने पहले विवान को देखा फिर कोने में दुबकी बिल्ली को।

''हे भगवान!'' वह वहीं फ़र्श पर धम्म से बैठ गया। लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा वह। सीढ़ियाँ दौड़कर चढ़ने से वह बुरी तरह हाँफ रहा था। विवान डगलस ने बिल्ली को पकड़ने का इरादा छोड़ दिया। बिल्ली भी शायद यह समझ गयी। उसने तनी हुई देह ढीली की फिर जार से मुंशी को देखने लगी। कुछ देर बाद मुंशी की साँसें थमीं।

''तीन दिन से भागी हुई है'', मुंशी ने विवान को बताया, ''पता नहीं साली कहाँ से जार में घुस गयी। सर नहीं निकाल पायी तो जार के साथ भागी। सब जगह ढूँढ़ा। अभी नीचे एक लड़के ने बताया कि उसने ऊपर छत से आपके कमरे में इसे आते देखा था।'' मुंशी ने फिर गहरी साँस ली। ''न खा-पी रही होगी, न पानी पी रही होगी। साँसें भी कम जा रही होंगी। पर कम्बख़्त रुकती ही नहीं। पकड़ में आए तो जार तो निकल ही जाएगा।''

''मैं कोशिश कर रहा था।'' विवान ने कहा फिर पूछा, ''तुम करोगे?''

''क्या?'' मुंशी ने विवान को देखा।

''इसे पकड़ने की कोशिश?''

''कोशिश क्या, अब तो पकड़ना ही पड़ेगा। बिल्ली मरने का पाप जानते हैं?'' साली अगर इस जार की वजह से मरी तो ऊपर के रोज़नामचे में मेरे जिम्मे ही

इसकी हत्या चढ़ेगी।''

''क्या मैं कमरे की रोशनी जला दूँ?'' विवान ने पूछा।

''क्यों?''

''पकड़ने में आसानी होगी।''

''नहीं कुछ भी मत करिए। बल्कि आप हिलिए भी मत। कहीं बिदक गयी तो फिर खिड़की से कूदकर भाग लेगी।'' मुंशी ने बैठे-बैठे ही हथेलियाँ फ़र्श पर टिकायीं। मुँह खोलकर साँस लीं उसने फिर विचित्र आवाज़ निकालता हुआ घुटनों के बल धीरे-धीरे आगे सरकने लगा।

''अगर कोई कपड़ा फेंककर पकड़ो तो?'' विवान ने पूछा।

मुंशी कुछ नहीं बोला। वह नीचे अँधेरे में धीरे-धीरे रेंग रहा था। वह समझ रहा था कि बिल्ली अँधेरे में उसका रेंगना नहीं देख पाएगी। बिल्ली उसे ज़्यादा अच्छी तरह से देख रही थी। उसके मुँह से गुर्राहट या कराह-सा फिर कुछ निकला। उसने फिर देह तान ली।

''उसे पुचकारो। उसके प्यार के नाम से उसे बुलाओ'', विवान मुंशी के पास झुककर फुसफुसाया, ''क्या नाम है इसका?''

मुंशी ने आगे खिसकना रोक दिया। उसे विवान की बात समझ में आयी। वह अपनी आवाज़ बदलकर बिल्ली को पुचकारने लगा। इस पुचकार में शायद बिल्ली का नाम भी था जिसे विवान समझ नहीं पाया। पर उसे विश्वास था कि बिल्ली समझ रही होगी। विवान को लगा कि हो सकता है जो विवान की समझ में नहीं आ रहा है वह बिल्ली का नाम न होकर उसकी ही भाषा हो जिसे मुंशी जानता हो। मुंशी उसी तरह बिल्ली से बात करते, उसे पुचकारते हुए आगे बढ़ने लगा। बिल्ली शायद इस ज़बान को समझ गयी। उसने अपनी देह ढीली छोड़ दी। उसने गर्दन तेज़ी से इधर-उधर पटकी। उसकी गर्दन के साथ फँसा प्लास्टिक का जार फ़र्श से टकराया। तभी मुंशी ने हवा में उड़ते हुए एक छलाँग मारी। इधर मुंशी ने छलाँग मारी उधर बिल्ली ने भी। पर मुंशी ने उसे हवा में पकड़ लिया। मुंशी की पकड़ में बिल्ली कुछ देर गुर्राई फिर उसकी बाँहों में चुपचाप लेट गयी।

मुंशी बिल्ली को बाँहों में दबाए फ़र्श पर ही बैठा रहा। वह फिर गहरी साँसें लेने लगा। इस बार छलाँग मारने में वह थक गया था।

''पानी पिओगे?'' विवान भी मुंशी के पास आ गया। मुंशी ने इन्कार में सर हिलाया। विवान भी धीरे-धीरे घुटने मोड़कर मुंशी के पास ही फ़र्श पर बैठ गया।

''तुम इसे पकड़ो। मैं जार देखता हूँ।'' विवान ने कहा।

मुंशी ने बिल्ली को कसकर दबा लिया। वह शायद समझ गयी थी कि ये उसका जार निकालना चाहते हैं। वह आँख बन्द करके चुपचाप मुंशी की गोद में

लेट गयी।

विवान ने जार को थोड़ा हिलाया। बिल्ली की गर्दन अन्दर जाकर फूली हुई थी। जहाँ खाली जगह थी वहाँ विवान ने बिल्ली की गर्दन हल्के से दबायी। बिल्ली आँखें खोलकर छटपटाई। ''जार काट दें?'' विवान ने पूछा।

मुंशी ने एक बार जार को देखा। उसके अन्दर मछली के अचार की खुशबू थी।

''कोई और रास्ता नहीं है?'' मुंशी ने पूछा।

विवान पलँग का सहारा लेकर उठा। रसोई में जाकर वह चाकू ले आया। पलँग का ही सहारा लेकर वह फिर बैठ गया। उसने चाकू से जार की तलीवाला हिस्सा धीरे-धीरे काटना शुरू किया। पतली दीवार का सस्ता जार था। कटता चला गया। पूरी तली काटकर विवान ने उसे फिर सीधा काटा। पूरा जार खुल गया। बिल्ली की गर्दन आज़ाद हो गयी।

''जा।'' मुंशी ने उसे गोद से उतार दिया। बिल्ली भागती हुई सीढ़ियों से नीचे उतर गयी।

दोनों फ़र्श पर बैठे थे। मुंशी ने फिर एक गहरी साँस ली। वह जल्दी-जल्दी गहरी साँसें ले रहा था। इस बार वह थकान की नहीं, दुख की थी।

''क्या-क्या देखूँ? लड़की, वह बिल्ली, कुर्बानी के जानवरों की खालें, नाव की कील, लावारिस मय्यतें। एक अकेला आदमी क्या-क्या करेगा?''

''मैंने मज़मून लिख दिया है। तुम कल इसे साफ़-साफ़ उतारकर फोटो कॉपी करवा लेना। दे देना, जहाँ-जहाँ ठीक समझो, बात भी कर लेना।''

''आप भी चलेंगे?''

''मैं क्या करूँगा? तुमको कोई भी इन्कार नहीं करेगा। सच तो यह है कि हमने कभी इस तरह सोचा ही नहीं वर्ना काम चलता रहता। नेक काम समझकर सब खालें दे देंगे। सुनोगे, देख लो ठीक लिखा है कि नहीं।''

''अब सुबह ही जब लूँगा तब पढ़ लूँगा। वैसे भी, आपका लिखा क्या ग़लत होगा? अभी कब चलना है?''

विवान ने फ़र्श पर पैर फैला लिये। उसे आराम मिल रहा था। पलँग से उसने अपनी पीठ टिका दी। मुंशी थोड़ा पीछे लुढ़ककर दीवार से टिक गया।

''देर रात में चलना ठीक होगा। चोरी का सबसे अच्छा वक़्त सुबह दो बजे से तीन बजे के बीच का होता है। हर इनसान तब मुर्दा हो जाता है। मैंने एक किताब पढ़ी थी। उसमें चोरी करने के बारे में बहुत-सी बातें लिखी थीं। उसमें सेंध काटने के तरीके लिखे थे। औज़ारों के बारे में लिखा था। उन जानवरों की आवाज़ों के बारे में लिखा था जिन्हें चोर के लिए जानना बहुत ज़रूरी है। चोरी करने के पहले के सारे

विधि-विधान, मन्त्र और तैयारियों के बारे में लिखा था। उसमें लिखा था कि उस घर में चोरी करने कभी मत जाओ जहाँ बूढ़ा हो, कुत्ता हो या बीमार हो। उसमें यहाँ तक लिखा था कि जिस नयी नवेली दुल्हन का पति परदेस गया हो उसके बदन से चिपककर कैसे गहने उतारो।''

''आप तो चोरी के बारे में बहुत जानते हैं।'' मुंशी की आँखें फैल गयीं।

''नाव की कील चुराना आपके लिए एक बड़ा काम है? वैसे भी नदी में बूढ़ा, बीमार और कुत्ते नहीं होते।''

''नाव के लिए कहाँ चलोगे?'' विवान ने पूछा।

''इधर तो रेती हो गयी है अब। उसी नाव की कील चाहिए जो हमेशा पानी में डूबी रहती हो। रेत पार दूसरी धारा में पानी है। वहाँ नावें भी हैं। वहाँ चलना होगा। इसके लिए बीच की रेती पार करनी होगी। इस रेती के घरों में तो बीमार, बूढ़े, कुत्ते सभी हैं। पर हमें क्या, हमें तो आगे जाना है।''

''कुछ औज़ार भी लेने होंगे। पानी में डूबी रहनेवली कील ज़ंग पकड़ लेती है। कहाँ से लोगे?''

''मैं बढ़ई से ले लूँगा।''

''देगा?''

''पिछले हफ्ते ही एक लाश जलायी थी, याद है न? अपने दूर के रिश्तेदार को उसने लावारिस बता दिया था। मुझे मालूम भी था,पर मैं चुप रहा था। मैं आपका खाना लेकर रात में आऊँगा'', मुंशी ने उठते हुए कहा, ''आप कुछ मत बनाइएगा।'' मुंशी जाते-जाते रुका। ''कमरे में रोशनी कर लीजिए। अँधेरा कमरा अच्छा नहीं लगता।''

विवान भी उठ गया। आगे बढ़कर उसने कमरे का बल्ब जला दिया।

रसोई की आती रोशनी कमरे की रोशनी से मिलकर एक बड़ी रोशनी हो गयी। इस रोशनी में अँधेरा कहीं नहीं था।

''मैं चलता हूँ'', मुंशी सीढ़ी तक आया, ''हाँ, वह रस्सी दे दीजिए। बाँध दूँ। आपको रात को उतरना होगा। हम उसे अभी बाँध लेते हैं। अब उसके कटने का खतरा नहीं है। लड़की तो बँधी है।''

विवान ने दो पल्लोंवाली अलमारी खोलकर प्लास्टिक की बुनी हुई मोटी रस्सी का गोला निकालकर मुंशी को दिया। मुंशी ने ऊपर के कड़े पर एक रस्सी का एक सिरा फँसाया फिर गोला लेकर धीरे-धीरे सीढ़ी उतरने लगा। उसके साथ-साथ रस्सी का गोला भी खुलता गया। विवान ऊपर से देखता रहा। नीचे जाकर मुंशी ने नीचे के कड़े में रस्सी की गाँठ बाँध दी। गाँठ बाँधकर उसने ऊपर खड़े विवान को देखा फिर बोला।

''मैं रात को आऊँगा, तब तक गोला यहीं छोड़ देता हूँ। बिल्ली को भी कुछ खिला दूँ।''

विवान वापस कमरे के अन्दर आ गया।

विवान ने घड़ी देखी। अभी देर रात होने में दो घंटे बाकी थे। मुकुन्दी के आने का समय हो रहा था। अज़ान का, बिरयानीवाले का, बिजली जाने का, साँस नली फूलने का और घुटनों की चिड़िया बोलने का समय भी हो रहा था। आनेवाले समय में ये सब धीरे-धीरे आ जाते थे। कभी एक निश्चित क्रम में, कभी क्रम बदलकर। कुछ खिड़की से आते थे, कुछ सीढ़ी से और कुछ विवान के अन्दर से। ये सब जब कभी एक साथ आ जाते थे तो कमरा भर जाता था। विवान डगलस के खाली रहनेवाले कमरे में इन सबकी अलग-अलग आवाज़ें, आवाज़ों की अलग सान्द्रता और धारदार उपस्थितियाँ,बहुअर्थी और विकृत आकृतियोंवाली लगती थीं। विवान डगलस का कमरा मातीज या वानगॉग के कमरे की पेंटिंग की तरह हो जाता। रस्कोलनिकोव या 'मिस्टर के' के कमरे की तरह हो जाता। उनकी पेंटिंग के कमरे के जार, शीशियाँ, पुरानी खिड़की, कुर्सी, मेज, पलँग, खूँटी पर लटके कपड़े, तौलिया, तस्वीर। विवान के कमरे में भी ये सब बेडौल आकृतियों में ही थे। इनके अलावा साँस नली की सूजन, आवाज़ें और प्रतीक्षाएँ भी थीं जो अपनी उपस्थिति और रूपों में उतनी ही बेडौल और कमरे को भरनेवाली थीं। विवान अगर चित्र बनाता तो मातीज या वानगॉग के कमरे में इन्हें भी डालता। रस्कोलनिकोव या 'के' के कमरे के बारे में लिखता तो, उनकी ऊब, भय और हत्या या आत्महत्या करने की गहरी इच्छा के साथ इनके बारे में भी लिखता।

बिजली जाने से पहले मोमबत्तियों का इन्तज़ाम ज़रूरी था। विवान डगलस पहले रसोई फिर गुस्लखाने में आया। दोनों ही जगह चौड़े मुँहवाली दवा की खाली शीशियों के अन्दर मोमबत्ती रखी थी। जलतीं हुई मोमबत्ती या मोम गलकर उसी के अन्दर जमा होता रहता था। शीशी जब पिघली हुई मोम से भर जाती थी तब विवान उसे फिर जला लेता था। उसके अन्दर रुई की लम्बी बत्ती या मोटा धागा पहले ही छोड़ देता था जिसके सहारे वह मोम जलता रहता था। पिघले हुए मोम से शीशियाँ अभी आधी भरी थीं। दोनों मोमबत्तियों के पास माचिस रखी थी। पलँग के एक कोने में टॉर्च लटकी थी। मोमबत्ती की तीसरी शीशी दीवार में बने हुए छोटे आले में थी जो पुराने जमाने के कमरों की दीवारों में जगह-जगह होते थे। ये दीये या लालटेन रखने के काम आते थे। विवान ने हमेशा इन आलों में दवाएँ, सिक्के, थर्मामीटर या फिर बचा हुआ खाना रखा था। हो सकता था वह आदमी जिसे घड़ियाल घसीट ले

गया था इसमें कुछ और रखता हो या फिर उसके पहले इस कमरे में रहनेवाली बूढ़ी रंडी की लौंडिया उसमें बालों के टूटे गुच्छे, चूड़ियाँ या रुपये रखती हों। माहरुख इसमें कुछ और रखती होगी। विवान को इन आलों से कभी अजीब-सी गन्ध आती महसूस होती थी, जैसे दीवार के पीछे कुछ दबा हो और किसी ख़ास मौसम या लम्हे में जागता हो। विवान ने शुरू के दिनों में सोचा था कि इसे खुरचकर देखेगा, पर फिर वह इस अकस्मात उठनेवाली गन्ध का आदी हो गया था, उसी तरह जिस तरह अकस्मात होनेवाली बहुत-सी चीज़ों का वह आदी हो गया था और जिन्हें उसने कभी खुरचकर नहीं देखा था।

नदी की मुख्य धारा शहर से दूर चली गयी थी। वहाँ तक पहुँचने के लिए रेती को पार करना पड़ता था। उसके लिए जूते ज़रूरी थे। विवान के पास जूते थे।

विवान ने जब नौकरी शुरू की, उसके तीसरे साल की बात थी, उसे सदर ने घर पर बुलाया था। उसने विवान का बताया कि मय्यत कमेटी के पैसों के लिए उसने मन्त्री को दफ्तर में मुआयना करने के लिए बुलाया है जिससे कि वह एक बार कमेटी का पूरा काम देखकर, उसकी ज़रूरतें समझकर सरकार से पैसों की सिफारिश कर सके। विवान उसे कमेटी के इतिहास के बारे में, काम के बारे में, ज़रूरतों के बारे में और लावारिस लाशों के बारे में कुछ बताये। ख़ासतौर से यह कि वे कैसे मिलती हैं, क्यों मिलती हैं और हमेशा मिलती रहेंगी। विवान उससे पूछे कि अगर यह कमेटी न बनी होती या ख़त्म हो जाये तो लावारिस लाशों का क्या होगा? उसने विवान से यह भी कहा कि विवान अलमारियों में बन्द रोज़नामचों की तमाम जिल्दों को भी साफ़ कर ले, जिससे कि मन्त्री चाहे तो देख सके कि अब तक इस कमेटी ने कितनी लाशों को उनके आख़िरी मरहले तक पहुँचाया है। वह देख सके कि हमारे पास सब कुछ पुख़्ता रूप में मौजूद है और हम पूरी तरह से अपनी जिम्मेदारी को अन्जाम देते हैं। उसने आख़िरी में विवान को बताया कि कुछ साल पहले तक यह मन्त्री चमकीले कपड़े पहनकर एक कव्वाल के पीछे बैठा ताली बजाता था। चुनावों में रिजर्व कोटा आ जाने के कारण उसकी किस्मत से और उसकी ताली की बुलन्दी से खुश एक हिजड़े की वजह से, जिसे उसने ताली बजाने के गुर सिखाये थे, उसे टिकट मिल गया और वह मन्त्री बन गया। ताली बजाने की उसकी आदत अभी तक ख़त्म नहीं हुई है। वक़्त-बेवक़्त वह कभी भी ताली बजाने लगता है। जो बात उसे इतनी मुतासिर करे कि वह ताली बजाने लगे, उस बात से वह बहुत ख़ुश हो जाता है। सदर ने कहा कि विवान अगर उससे ऐसी कुछ बातें करें जिन्हें सुनकर उसे तालियाँ बजाने की इच्छा करने लगे तो पूरी उम्मीद है कि वह हमेशा के लिए इस दफ्तर के पैसों का कोई पक्का बन्दोबस्त कर देगा। विवान जब जाने लगा तब सदर ने उसे फिर रोका।

''तुम्हारे पास जूते हैं?''

विवान दरवाज़े तक आ गया था। उसने सर झुकाकर अपने पैरों को देखा। रबर की चप्पल में उसकी उँगलियों की पोरें सूजी हुई थीं। नाखून उसमें धँस गये थे और धूल से भरे थे। रिमाडी के जंगलों की एक मुठभेड़ में, नदी पार करते समय मारे गये एक पुलिस अफसर के जूते विवान ने उतार लिये थे। वह बिल्कुल नये जंगलबूट थे जो नौ इंच ऊँचे थे और काफ लेदर पर बूटी की प्लेट से बने थे। विवान को जंगल में उन जूतों की सख्त ज़रूरत थी। मच्छरों से, कीचड़ से, पानी से, वे विवान को बचाते थे। विवान ने उन्हें आख़िरी दिनों तक पहना था। जब वह पकड़ा गया और जेल में उसका सामान जमा किया गया, तो उसमें वे जूते भी थे। जेल से छूटने पर विवान को जूते वापस नहीं मिले थे।

''जूते पहनना ज़रूरी है'', सदर ने कहा, ''जूतों के साथ कपड़ों का एक अलग मिजाज़ दिखता है, आदमी का भी। हमारे लिए ज़रूरी है कि वह हमसे खुश हो क्योंकि यह इमदाद हमारे लिए ज़रूरी है।''

''जूते नहीं हैं,'' विवान ने कहा, ''आप कहें तो मैं पुराने सामानों के कबाड़ी बाज़ार में देख लूँ। वहाँ सेना के जूते चोरी से बिकते हैं।''

''रुको तुम'', सदर ने विवान को रोका। वह घर के अन्दर चला गया। लौटा तो उसके हाथ में दफ्ती का जूतोंवाला डिब्बा था।

''तुम इसे देख लो, मेरे भतीजे के हैं। जब वह नदी पर नहाने गया था तो इन्हें किनारे उतार गया था। घड़ियाल उसी को खींच ले गया है यह उसके जूते से ही पता लगा था। तुम्हारे पास उसकी हर चीज़ है। जूते भी देख लो। उसके पैर तुम्हारे पैर जैसे ही थे। हो सकता है तुम्हारे पैरों में आ जाये।''

विवान ने दफ्ती का डिब्बा ले लिया। कुर्सी पर बैठकर उसने डिब्बा खोला। कत्थई रंग के ऑक्सफोर्ड शू थे। वे ज़्यादा इस्तेमाल नहीं हुए थे। उसके रबर के सोल के खाँचों के बीच में मिट्टी नहीं थी। विवान ने एक जूते में पैर डाला। जूते उसके पंजे पर बिल्कुल ठीक बैठ गये। विवान ने पैर निकाल लिया। सदर देख रहा था। ''तुम इसे पहनना, और दूसरी तैयारियाँ भी कर लो।'' विवान के पैरों में जूते आ जाने से सदर सन्तुष्ट हो गया था। विवान कुर्सी से उठ गया। दफ्ती का डिब्बा उसके हाथ में था। विवान बाहर निकल गया, फिर लौटकर आया।

''क्या कुछ खाने का या चाय का इन्तज़ाम करना होगा?''

''नहीं, वह पहले मेरे घर आएगा। यहीं से हम सब आएँगे। वहाँ कुछ नहीं करना है।'' विवान चला गया।

तीन दिन बाद जब मन्त्री दफ़्तर में आया तब विवान ने जूते पहने थे। उन पर पॉलिश भी करवायी थी। दफ़्तर भी साफ़ किया था। कुछ कुर्सियाँ डाल दी गयी

थीं। अलमारियों के शीशे अख़बारी काग़ज़ से साफ़ करके चमका दिये गये थे। रोज़नामचों की जिल्दों की धूल साफ़ कर दी गयी थी। दवा छिड़की गयी थी जिससे कि मच्छर, तिलचिट्टे और चूहे भाग जायें।

मन्त्री के साथ दो आदमी थे। कमेटी के कुछ और लोग भी थे जिन्हें विवान ने पहले कभी नहीं देखा था। सदर मन्त्री को अन्दर लाया था। दफ़्तर में घुसकर मन्त्री ने चारों ओर देखा और देखते ही ताली बजायी। उसकी ताली में बहुत गूँज थी। वह कई पर्तोंवाली, गहरी आवाज़ की ताली थी जो दफ़्तर के बाहर बहुत दूर तक पहुँची। विवान ने खिड़की से कई परिन्दों को उड़ते देखा, कई कुत्तों को गली में दुबकते देखा, कई औरतों को छज्जे से कपड़े उतारते देखा।

विवान ने मन्त्री को पूरा गलियारा घुमाया। गलियारे में रखी अलमारियाँ खोलकर रोज़नामचे दिखाये। गलियारा देखते हुए मन्त्री ने दो बार ताली बजायी। गलियारा देखने के बाद, ऊपर की रेलिंग देखने के बाद, वे सब कुर्सियों पर बैठ गये। विवान खड़ा था। सदर ने उसके चमकते हुए जूते देखकर सन्तोष से सर हिलाया। उसने इशारा किया। विवान ने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया। मन्त्री अपनी दोनों हथेलियाँ आपस में चिपकाये विवान को देख रहा था। वह कहीं भी, किसी भी वक़्त ताली बजाने के लिए तैयार बैठा था।

''यह कमेटी 1858 में बनी थी'', विवान की आवाज़ आने लगी, ''वे लावारिस लाशों के दिन थे। शायद इसीलिए कमेटी की ज़रूरत महसूस हुई होगी। ऐसा नहीं था कि ये लाशें पहले नहीं होती थीं। ऐसा भी नहीं था कि ऐसी कोई कमेटी पहले नहीं रही होगी,पर हमें उसके बारे में नहीं पता। हाँ, हमें लावारिस लाशों के बारे में ज़रूर पता है। वे हमेशा थीं। जब से इनसान दो पैरों पर सीधा खड़ा हुआ है, गुफाओं से बाहर निकला है, तब से लावारिस लाशों के मिलने का सिलसिला जारी है। उन्हें तब शायद गिद्ध और दूसरे जानवर, या फिर ज़मीन की मिट्टी या फिर कोई भी जलजला, कुछ भी, उनका निशान मिटा देता था। उसके बाद भी हम जानते हैं घोड़ों के खुरों के नीचे, दमिश्क की तलवारों की धार पर, तोपों के मुहाने पर, ईश्वरों की वेदी पर, अखाड़ों में, गुलामों के बाज़ारों में, सब जगह ये लाशें रही हैं। उन सबको या तो एक ढेर बनाकर फूँक दिया जाता था या उनके सरों की मीनार बन जाती थी, या ऊँचाई से बड़े गड्ढों में, या घाटियों में फेंक दिया जाता था। ये लोग कौन होते थे, कहाँ से आते थे, कौन-सी ज़बान बोलते थे, उनका क्या धर्म था, कुछ पता नहीं होता था। उनका कोई रोज़नामचा तैयार नहीं होता था, जैसा हमने किया है। समय बदला पर इन लाशों का सिलसिला नहीं बदला। जब भी बदला तो वह इनका बैक ड्राप था, इनके पीछे का पर्दा बदला।'' विवान ने एक साँस ली फिर मन्त्री को देखा, ''मन्त्रीजी जानते हैं कि कव्वाली में क्या होता है। कभी

पीछे के पर्दे पर ताजमहल होता है, कभी रेगिस्तान, कभी भारतमाता तो कभी मक्का-मदीना। तमाशा वही होता है, कव्वाली वही होती है। वही साजिन्दे होते हैं, वही ताली बजानेवाले, और तालियाँ भी वही होती हैं।''

मन्त्री एकदम से खड़ा हो गया। उत्तेजना से फूलती नसों को सँभालकर उसने हथेलियों को पीटते हुए ज़ोरदार ताली बजायी। वह बहुत देर से अपनी इस बेचैनी को, इस ख़्वाहिश को रोके था। उसकी इस ताली में किसी पुरानी धुन की बन्दिशें थीं। इस ताली में उसकी दोनों हथेलियाँ इस तरह मिल रही थीं कि उनके बीच के गड्ढे में कुँए से निकलनेवाली आवाज़ की गहरायी और गूँज थी। उसकी आँखें बन्द थीं। वह धीरे-धीरे आगे-पीछे ताली बजाता हुआ हिल रहा था। उसके होंठ कुछ बुदबुदा रहे थे। वे आनन्द से फैले थे। वह अपनी कल्पनाओं में किसी मंच पर कव्वाल के साथ किसी धुन पर झूम रहा था। जब तक वह ताली बजाता रहा, विवान चुप रहा। सब चुपचाप उसे देख रहे थे। सदर खुश था कि मन्त्री ताली बजा रहा है।

ताली बजाने के बाद उसने आँखें खोलीं। वह फिर कुर्सी पर बैठ गया। उसके होंठों का आनन्द थूक बनकर बह रहा था जिसका उसे इल्म नहीं था। उसने दोनों हथेलियों को फिर से आपस में चिपका लिया। वह फिर ताली बजाने के लिए तैयार था। विवान फिर बोलने लगा।

''लावारिस लाशों को आप लोगों ने नहीं देखा होगा। ये लाशें उनसे अलग होती हैं जो सामान्य मौतें मरते हैं, अपनों के बीच मरते हैं। इन लावारिसों के चेहरों पर बहुत लम्बी भूख, बहुत लम्बी यातना खुदी होती है। इनकी आँखें बदल चुकी होती हैं। इनके चेहरों के गड्ढे बहुत गहरे हो चुके होते हैं, इनकी नसें नीली होकर सूजन से फटनेवाली होती हैं। इनकी पूरी देह सूखी हुई फली की तरह हो जाती है। बल्लीमारान के ग़ालिब की ग़ज़ल मन्त्री जी ने सुनी होगी। हो सकता है कभी गायी भी हो, हालाँकि वह कव्वाली नहीं थी। इन इनसानों के लिए ही उसने लिखा था 'तू कहाँ थी ऐ अज़ल, ऐ नामुरादों की मुराद, मरनेवाले राह तेरी उम्र भर देखा किए।' विवान ने धीरे-धीरे गुनगुनाया। विवान के अन्दर रहनेवाले ग़ालिब ने करवट ली। विवान गुनगुनाता रहा। मन्त्री अचानक फिर खड़ा हो गया। वह फिर ताली बजाने लगा। इस बार वह झूम रहा था। वह अपनी ताली में वही धुन निकालने की कोशिश कर रहा था जो विवान गुनगुना रहा था। उसका बदन झूम रहा था, उसका सर झूम रहा था। इस बार उसने ज़्यादा देर तक ताली नहीं बजायी। वह थक गया था या उसकी हथेलियों पर पसीना आ गया था। उसकी ताली की आवाज़ बदल गयी थी। उसमें गूँज और गहरायी की जगह, गीले कपड़े पटकने जैसी भदभद हो रही थी। वह होशियार ताली बजानेवाला था। उसके दोस्तों में कव्वाल के बाद उसी की

इज़्ज़त थी। हिजड़े ने उसी को गुरु बनाकर ताली बजाना सीखा था। उसने अपनी ताली को कमज़ोर होते पहचान लिया इसलिए वह बैठ गया।

विवान फिर बोलने लगा।

''ये नामुराद पूरी ज़िन्दगी अपनी मौत की मुराद माँगते रहते हैं पर वह इन्हें नसीब नहीं होती। यह उनकी बहुत गहरी, दिल से निकली मुराद होती है क्योंकि इसका पूरा होना ही इनको मुक्ति देता है। इन्हें इस दुनिया से आज़ाद करता है। हम लोग जब उन्हें उठाते हैं तो ये सूखे फूल की तरह हल्के हो चुके होते हैं। हमारे हाथों में आसानी से आ जाते हैं। रिक्शों पर, खड़खड़े पर, भैंसा गाड़ी पर, साइकिल पर भी आसानी से आ जाते हैं। चुपचाप एक कोने में लटक जाते हैं। हम इन्हें लकड़ियों पर रखते हैं, क़ब्र में रखते हैं तो ये बिना किसी शोर-शराबे के, उसी तरह चुपचाप, नामालूम तरीके से वहाँ भी रहने लगते हैं जैसे ज़िन्दा होते हुए रहते थे। ये हम इनसानों की दुनिया की, इसके ढाँचे की कमियों को बतानेवाले, दिखानेवाले सबसे बड़े नुमाइन्दे होते हैं। किसी भी लावारिस लाश के मिलने का मतलब है हमारी बुनियादों में दीमक होना। हमारे सारे ढाँचों का झूठा, बेमानी, बेमकसद होना।

''हम जो काम करते हैं, अगर वह न हो तो सोचिए कि क्या होगा? क्या आप अपने घर के पास किसी सड़ती हुई लाश की बदबू बर्दाश्त कर पाएँगे? क्या आप यह बर्दाश्त कर पाएँगे कि आपकी छतों पर इनसानी लाशों के टुकड़े, गिद्ध नोचते रहें, गलियों में कुत्ते उन्हें लिये नाचते रहें? आप एक लम्हे के लिए भी बर्दाश्त नहीं करेंगे। आप इससे सिर्फ़ इसलिए बच जाते हैं क्योंकि यह काम हमारी कमेटी करती है, हम करते हैं। उन लावारिस लाशों के निशान आपकी दुनिया से जल्दी-से-जल्दी मिटा देते हैं। आप अगर चाहते हैं कि हम यह काम करते रहें, तो हमें इसके इन्तज़ाम के लिए रुपये चाहिए। अगर आप हमारी इसमें मदद नहीं करते, तो फिर आप सब इन लाशों के साथ रहने के लिए तैयार हो जाइए या फिर ऐसा कुछ करिए कि कोई लावारिस न मर सके। यह आप नहीं कर पाएँगे, कभी नहीं कर पाएँगे। आप सिर्फ़ तालियाँ बजा सकते हैं। आप यही करते आये हैं और इसी पर आपको विश्वास भी है, क्योंकि यही आपकी आदत है और यही ताकत भी। आपने सुना होगा कि खंडहरों में तालियों की फड़फड़ाहट बहुत देर तक घूमती है। एक ही ताली के जवाब में बहुत-सी तालियाँ सुनाई देती हैं। उन सीलन लगी, पुरानी और दरारोंवाली दीवारों के पीछे न जाने वे कौन लोग होते हैं जो एक ताली को बहुत-सी तालियों में बदलते रहते हैं। इन आवाज़ों को सुनकर ताली बजानेवाले को बहुत सुख मिलता है। उसे अपनी ताली का जवाब बहुत-सी तालियों से मिलता है। उसे लगता है कि ये सब वही हैं जो वह खुद है। वह अकेला और कमजोर नहीं है। वह ताली फिर बजाता है, फिर देर तक उसके बाद तालियों की आवाज़ें फड़फड़ाती हैं।

वह ताली बजाता चला जाता है, आवाज़ें जवाब देती रहती हैं। कुछ देर बाद उस खंडहर में कुछ नहीं रह जाता सिवाय तालियों के शोर के। इस शोर में बहुत कुछ दब जाता है, दिखना बन्द हो जाता है। सबसे पहले जो दबता है, जो दिखना बन्द होता है, वे लावारिस लाशें होती हैं।

''ये तालियाँ छोड़े जा चुके, ढहती दीवारोंवाले बदबूदार खंडहरों में सुनायी देती हैं। वहाँ नहीं, जहाँ चलते-फिरते, जीवित मनुष्य होते हैं। जहाँ ज़िन्दगी की रोशनियाँ होती हैं, सामान होते हैं। मुर्दा हो चुकी वीरान बस्तियों से, मुर्दा हो चुकी दीवारों से, मुर्दा हो चुके इतिहास से ही ताली पूरी बुलन्दी के साथ लौटती हैं। सदर साहब ने बताया है कि कव्वालों के बीच आप बड़े नामी ताली बजानेवाले रहे हैं। आपको शहर के हिजड़ों ने अपना गुरु बनाकर आपसे ताली बजाना सीखा था। उन्होंने बताया है कि आपकी ताली में कव्वालों के गले की सारी हरकतें हुआ करती हैं। सारे घुमाव, सारी उठान, सारी लय। आप मेरी बातें ज़रूर समझ गये होंगे। इन लावारिस लाशों की ज़रूरतों को, इनके पिचके गाल, बेनूर आँखों, बदबूदार सूखे अकड़े बदन और घुन लगी भुरभुरी हड्डियों को, उनकी दुनिया को भी ज़रूर समझ गये होंगे। आप हमारी मदद करें जिससे कि हम इन्हें आपकी बस्तियों से, दुनिया से, तालियों से दूर जलाते रहें, दफनाते रहें। आपसे दूर रखते रहें।'' विवान ने गहरी साँस लेकर मन्त्री को देखा। वह ताली बजाने को बेचैन हो रहा था। अपनी कुर्सी पर पेट भरे अज़गर की तरह फूल रहा था। वह इस कदर फूल रहा था कि विवान को लगा कि वह शायद अभी कोई कव्वाली गा सकता है। उसे फ़ौरन ही अगर ताली बजाने का या ठुमकने का, या कव्वाली गाने का मौका नहीं दिया गया तो वह फेना बहाता हुआ फट जाएगा।

मन्त्री की हथेली का पसीना सूख गया था। वह खड़ा हुआ और ताली बजाने लगा। वह ताली बजाते-बजाते नाचने लगा और उसी तरह फिर ताली बजाते हुए बाहर चला गया। उसके पीछे दूसरे सब लोग भी चले गये।

दूसरे दिन विवान उन जूतों को दफ्ती के डिब्बे में रखकर सदर के पास ले गया। सदर खुश था। उसने बताया कि मन्त्री ने वायदा किया है कि वह हमें एकमुश्त लम्बी रकम दिलवाएगा जिससे कि हम उसे बैंक में डालकर उसके सूद से कमेटी का खर्च चलाते रहेंगे। सदर ने विवान को बताया कि बाहर आने पर मन्त्री ने विवान के बारे में पूछा था और इस बात से बहुत मुतासिर हुआ था कि अपनी तकरीर में विवान ने तालियों का, कव्वालों का ज़िक्र किया था। उसे अपने पुराने दिन याद आ गये थे। वह बहुत भावुक हो गया था। इसी भावुकता में उसने कमेटी को रुपये देने का वायदा किया है।

सदर ने विवान से जूते वापस नहीं लिये थे। उसने विवान को वह बतौर इनाम

खुश होकर दे दिये। विवान ने डिब्बा कमरे में पलँग के नीचे रख दिया था। उसके बाद फिर कभी उसने उस डिब्बे को नहीं खोला था।

विवान धीरे-से घुटने मोड़कर झुका। पलँग के नीचे झाँका उसने। पलँग के ठीक बीच में डिब्बा रखा था। विवान ने पलँग के तीनों तरफ से हाथ डालकर देखा। डिब्बा उसकी पहुँच से दूर था। फिर विवान रसोईवाली तरफ से फ़र्श पर बिल्कुल लेट गया। छाती उसने फर्श से चिपका दी। धीरे-से हाथ बिल्कुल आख़िरी तक तानकर खींचा उसने। इस बार डिब्बा उसकी पकड़ में आ गया। उसने डिब्बा पलँग से बाहर खींच लिया। डिब्बा खींचने के बाद वह पलँग के सहारे से ही बैठ गया। डिब्बा उसने गोद में रख लिया। डिब्बे पर मोटी धूल जमा थी। कुछ मरे हुए कीड़े उस पर चिपके थे। उसकी दफ्ती गल चुकी थी। उसमें से गन्ध आ रही थी, वैसी ही जैसी दीवार के पीछे से विवान को आती थी। शायद सारी पुरानी चीज़ों की गन्ध धीरे-धीरे एक-सी हो जाती है। क्षरण की गन्ध, पतन की गन्ध। विवान ने धूल-भरे ढक्कन को हटाकर डिब्बा खोला। अन्दर वही जूते थे। चमड़े पर फफूँद जम गया था। चमड़ा सूखकर कड़ा हो गया था। फीते के बट खुल गये थे। जूते के दो आइलेट उखड़े थे। एक ठोकर की सीमेंट टूट गयी थी। वह वहाँ से पोली हो गयी थी। एक पैतावा गायब था। विवान ने सोचने की कोशिश की कि जब जूते उसने डिब्बे में रखे थे क्या तब भी ऐसे ही थे? उसे याद था कि उसने इन्हें पहना था तब ठीक थे। फिर ये डिब्बे के अन्दर ऐसे क्यों हो गये? क्या बाद में उसके अलावा भी कोई इसे पहनता रहा है? या फिर विवान ने ही जब रखे हों तब ऐसे हों? विवान को याद नहीं था। विवान ने अपने कुर्ते के कोने से चमड़े की फफूँद को पोछा। चमड़े पर लगी मोटी फफूँद उसके कुर्ते पर चिपक गयी।

चमगादड़ों की बीट की तरह सफेदी के कुछ बदशक्ल धब्बे चमड़े पर रह गये। ये जूते नदी की रेत के लिए ठीक थे। थोड़ा कीचड़ और पानी होने पर भी ठीक थे। विवान ने जूतों को एक बार फिर पोंछकर पलँग के नीचे रख दिया। जैसे ही उसने जूते रखे, बिजली चली गयी।

अब कोई भी पहले आ सकता था। अज़ान, बिरयानीवाला, मुकुन्दी या फिर साँस नली की सूजन। विवान ने सोचा कि इसी तरह बैठकर वह इन्तज़ार करे कि पहले कौन आता है। पर हो सकता था अँधेरे में विवान उनको पहचानने में ग़लती कर जाए। हो सकता था अज़ान को साँस नली की सूजन समझ ले या फिर मुकुन्दी को बिरयानीवाला। विवान पलँग का सहारा लेकर उठ गया। खिड़की से आती रोशनियों के सहारे ही वह खिड़की पर आया। कोहनियाँ खिड़की की चौखट पर

टिकाकर वह झुक गया।

धीरे-धीरे दुकानों की, घरों की, छतों की रोशनियाँ जलने लगी थीं। बिजली जाने के बाद जनरेट के शोर, गहरे काले धुँए के भभके ऊपर की तरफ भागे। कुछ देर के लिए चारों ओर काला धुँआ फैल गया। जलते हुए तेल, कार्बन के टुकड़े और झरती हुई कालिख से भरा हुआ। पहाड़ों पर पत्थर लुढ़कने जैसी तेज़ हरहराती आवाज़ उस धुँए को मथ रही थी। फटते हुए ज्वालामुखी के ऊपर जैसी राख, धुँआ, गर्म लावा और कालिख होती है, सब कुछ वैसा ही था। इन सबके बीच विवान डगलस साँस ले रहा था। जैसा उसने सोचा था और जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा था, साँस नली में सूजन आ गयी। उसकी साँस फूलने लगी। खाँसी शुरू हो गयी। अज़ान की आवाज़ भी आयी। उस धुँए के ऊपर तैरती हुई। वह सामने की हरे रंग की मीनारों से ऊपर उड़ रही थी, दूर तक जाती हुई। विवान की खाँसी तेज़ हो गयी। वह खिड़की से हट गया। खिड़की का दरवाज़ा उसने बन्द कर दिया। अब खिड़की के काँच से बाहर देखा उसने। जेल के सामनेवाले चबूतरे पर हैनीमैन की मूर्ति के नीचे, जिस पर सुबह तस्बीह के दानों पर उँगलियाँ फेरती औरत के साथ दो लड़कियाँ रस्सी कूद चुकी थीं, जिस पर हड्डियाँ जोड़नेवाला, वज़न तौलनेवाला, मालिशवाला अपनी दुकान लगा चुके थे, अब उस पर बिरयानीवाले की दुकान लग रही थी। उसकी गाड़ी आ गयी थी। गाड़ी से उतारकर उसने लोहे की दो अँगीठियों को चबूतरे पर रखा। बिरयानी की दो बड़ी देगची उतारीं। गाड़ी से दस फोल्डिंग कुर्सियाँ और दो छोटी मेज़ उतारीं। कुछ ही देर में उसने चबूतरे पर बिरयानी की दुकान खड़ी करके अँगीठियों में आग जला दी। उस पर देगची चढ़ा दीं। जेल के ठीक सामने वह दुकान इसलिए लग पाती थी क्योंकि इस दुकान में जेलर के बहनोई और जेल में उमरकैद काटनेवाले दो कैदियों की भी हिस्सेदारी थी। इस दुकान पर रात-भर गाड़ियाँ आती रहतीं। वे गाड़ियाँ चबूतरे के पासवाली सड़क पर खड़ी रहती। उनमें शराब होती थी। बिरयानी और शराब की जुगलबन्दी तब तक चलती जब तक बिरयानी ख़त्म नहीं हो जाती।

वे सब आ चुके थे जिनकी विवान ने प्रतीक्षा की थी। अब सिर्फ़ मुकुन्दी को आना था। उसे सीढ़ी से ही ऊपर आना था। विवान खिड़की से हट गया। उसने कमरे की मोमबत्ती जला दी। उसकी रोशनी में बिस्तर को देखा फिर उसने रसोई की मोमबत्ती भी जला दी। अब उसने दोनों रोशनियों के विस्तार को देखा। इसमें पूरा कमरा आ गया था। विवान आकर कुर्सी पर बैठ गया।

खाँसते हुए वह मुकुन्दी का इन्तज़ार करने लगा।

मुकुन्दी देवकी गुरु का लड़का था।

विवान ने जब मय्यत कमेटी के दफ्तर में नौकरी शुरू की और ऊपर के कमरे के बदले बकरमंडी से नाचघर तक की सड़क के दोनों ओर के लैम्पपोस्ट जलाने शुरू किये तब कमेटी के सदर के घर अक्सर दावतें हुआ करती थीं। इन दावतों के इन्तज़ाम में मदद करने के लिए विवान भी रहता था। दावतें करना सदर का शौक था। कभी-कभी किसी दावत की तैयारी के पहले जब वह अपने दोस्तों या मुलाजिमों के बीच बैठकर उसकी योजना बनाता और उसकी भव्यता और मर्मज्ञता की कल्पनाएँ करता, तो वह अपने खानदान के इस शौक और हुनर को बहुत पीछे तक खींच ले जाता। इतना पीछे कि अपने पहले पुरखे तैमूर लंग की समरकन्द में होनेवाली दावतों का जिक्र करने लगता। इस क्रम में उत्तेजित होकर तैमूर के खानदान से अपने खानदान के सिलसिले जोड़ते हुए समरकन्द की दावतों में खिलायी जानेवाली चीज़ों की फेहरिस्त को भी दावतों में शामिल करना चाहता। शहर के घने इलाके में बने उसके पिता के बनाये हुए तिमंजिला मकान में, जो दारूल मौला के नाम से मशहूर था और जिसके चौड़े रोशनदानों को ढकनेवाले पत्थरों पर कबूतर की सफेद बीट या कटी पतंगें पड़ी रहती थीं, उसकी इस हसरत को देवकी गुरु पूरा करते थे।

सदर के पिता बूढ़े थे। अपने जमाने में वह चश्मे के बहुत बड़े पर शौकिया कारीगर थे। जब मुल्क़ के हिन्दू और मुसलमान नेता,नेहरू कमेटी की रिपोर्ट के ज़ेरेबहस, मिलजुलकर देश का संविधान बनाने और उसी के साथ आज़ादी की लड़ाई लड़ने का कोई फार्मूला खोज रहे थे, तब वह प्रोग्रेसिव लेंस ऐसी किसी चीज़ पर काम कर रहे थे जिसमें चश्में के लेंस को दो या तीन हिस्सों में बाँटकर अलग-अलग फ़ोकस के क्षेत्र न बनाये जायें बल्कि उसमें अलग-अलग दूरियों के हिसाब से, एक ही लेंस में अलग-अलग फोकस बने हों। बाद के दिनों में, जब वह बूढ़े हो गये और उनकी खुद की नज़र कमज़ोर हो गयी और वह खुद तीन फ़ोकसवाला चश्मा लगाने लगे, तब भी वह उन लोगों का ज़िक्र करते जिनके चश्में उन्होंने बनाये थे या चश्मों के मुताल्लिक़ उन्हें कोई बहुत कारगार सलाह दी थी। ऐसे लोग और ऐसे लोगों के चश्मों में जिन्ना का एक लेंस का चश्मा, गाँधी का गोल चश्मा, राजगोपालाचारी और मौलाना आज़ाद का मशहूर काला चश्मा भी था। अपने आख़िरी दिनों में वह घर के अन्दर जानेवाले बड़े दरवाज़े में घुसते ही बायें हाथ के पहले कमरे में पड़े रहते थे। वहाँ लेटे-लेटे वह आने-जानेवालों को हसरत से देखा करते कि कोई उनके पास कुछ देर बैठे। उनमें चश्मों की बातें करे, उनसे चश्मे का हुनर सीखे।

विवान डगलस जब भी सदर के घर जाता उनके पास कुछ देर ज़रूर बैठता

था। उसे पता था कि जैसे उसके पास बहुत-सी स्मृतियाँ हैं, उसी तरह सदर के पिता के पास भी हैं। स्मृतियों के आलोक से ही वह अपने उस छोटे कमरे को भरा रखते थे, जैसे विवान रखता था। स्मृतियाँ ही उनके लिए जिजीविषा का काम करती थीं। विवान स्मृतियों के इस पूरे जगत के बारे में, उसकी व्याप्ति और उसकी सान्द्रता के बारे में जानता था इसलिए उनके पास बैठकर वह उनको अपनी स्मृतियों के छोटे-छोटे चिराग़ जलाने का पूरा अवसर देता था।

विवान को वह शायद इसीलिए दूर से पहचान लेते थे। विवान जब उनके कमरे में जाता तब वह करवट लेकर धीरे-से उठते। दीवार का सहारा लेकर, लकड़ी के खूबसूरत पाँवोंवाले दीवान पर बैठकर विवान को भी पास में बैठा लेते। कुछ देर में सहज ओर संयत होकर वह अपनी स्मृतियों में पीछे लौटना शुरू करते। उनकी वापस लौटने की इस यात्रा का अक्सर छोटे-छोटे स्टेशनों की तरह एक निश्चित क्रम होता था जिन पर वह रुकते हुए चलते थे। इस क्रम में देश का विभाजन, फिर रज्जोबाई, फिर लालकिले की दीवारों में क़ैद सलातिन और फिर समरकन्द का तैमूर लंग होता।

उन्होंने विवान को बताया था कि जब देश के बँटने की बात तय हो गयी और उनके घर के बहुत-से लोग पाकिस्तान जाने को तैयार हो गये, तब उनके एक चाचा ने जाते हुए उन्हें तीन नसीहतें दी थीं। पहली यह कि घर में जितने सेर चाँदी के बर्तन इस्तेमाल में लाओ उतना सेर सोना हमेशा तिजोरी में बन्द रखो, दूसरी यह कि अपने से नीचे किसी ग़रीब के घर हमेशा अकेले जाओ और तीसरी यह कि हफ़्ते में दो बार बिना घोड़ा-गाड़ी के पैदल सड़क पर निकलो। वह विवान का हाथ पकड़कर उसे इन तीनों नसीहतों का मर्म समझाते कि यह इसलिए था क्योंकि वह ख़त्म होते हुए ज़मींदारों की अपने ख़िलाफ़ आनेवाले समय की तैयारियाँ थीं। जल्दी ही वैसा समय आ भी गया। फिर वह थोड़ा और पीछे लौटकर मूली का किस्सा सुनाते जो गाँधी के देश की राजनीति में उतरने के समय का था। वह बताते कि उनके वही चाचा रोज़ शाम को शराब पीते समय मूली ज़रूर खाते थे। उनका मानना था कि मूली खानेवाले का जिगर शराब से कभी कमज़ोर नहीं हो सकता। यह बताते कि उनके घर के बगीचे में हमेशा मूली होती थी। बाज़दफा ऐसा हुआ कि मूली नहीं हुई तो उनका घुड़सवार दोपहर को ही तीस मील घोड़ा दौड़ाकर ठाकुर साहब की हवेली जाता। वहाँ जाकर मुख्तार से कहता कि ठाकुर साहब को बड़े मियाँ ने सलाम बोला है। ठाकुर साहब समझ जाते कि वह क्यों आया है। ठाकुर साहब ने अपनी निगरानी में एक छोटा खेत सिर्फ़ मूली के लिए रख छोड़ा था कि कोई ऐसा वक़्त न आ जाये कि मियाँ का आदमी मूली माँगने आये और उन्हें नज़र झुकानी पड़ जाये और वह फिर ज़िन्दगी भर मियाँ को मुँह न दिखा पायें। वह आदमी फिर घोड़ा

दौड़ाकर तीस मील वापस मूली लेकर लौटता। यह बात दूसरी है कि पाकिस्तान जाने के बाद उनके चाचा को शराब के साथ हर समय मूली नहीं मिल पायी क्योंकि बँटवारे में ठाकुर साहब हिन्दुस्तान में रह गये और वह पाकिस्तान से घोड़ा दौड़ाकर मूली नहीं मँगवा सकते थे और उस नये बने हुए मुल्क़ की तहज़ीब और रवायत ऐसी नहीं थी कि कोई उनके लिए मूली का अलग खेत रख छोड़ता। चुनांचे वह जिगर की ख़राबी से मर गये। मरते समय भी आख़िरी वक़्त तक वह मूली और ठाकुर साहब को याद करते रहे और उन्हें छोड़कर पाकिस्तान आने का अफ़सोस करते रहे।

यह सब सुनते हुए विवान अपने हाथों में उनकी हथेलियों की जुम्बिश महसूस करता। विवान देखता कि उनके सूजते हुए चेहरे की सूखी आँखों में चमक आ गयी है। उनके कमरे की सारी चीज़ें उस चमक से भर गयी हैं। सब पर स्मृतियों का आलोक गिर रहा था। विवान के अन्दर भी वह चमक उतरने लगती।

वह फिर और पीछे लौटते। कमरे की चौखट के बाहर से गुजरती बुरका पहने घर की लड़कियों को, काम करनेवाले कहारों को, गाँव से आती अनाज की गाड़ियों को देखते हुए विवान का हाथ पकड़े हुए रज्जोबाई का किस्सा सुनाते जिसकी आवाज़ एक दिन अचानक आलाप लेते हुए बैठ गयी। गाना छूट गया। तीन साल तक कोई भी डॉक्टर, वैद्य, हक़ीम उसे ठीक नहीं कर सका। एक दिन स्वामी हरिदास शहर में आये। रज्जो के मामा और भाई उनके दर्शन के लिए गये। स्वामीजी ने कहा कि केवल इस शर्त पर रज्जो की आवाज़ वापस लाएँगे अगर रज्जो महफिलों में गाना छोड़कर, सिर्फ़ भजन गाये। वे दोनों मान गये। उन्होंने लौंग, मिश्री और एक भभूत पान के पत्ते पर डालकर दिया। रज्जोबाई सारी उम्मीदें छोड़ चुकी थीं। उसे इस पर भी कोई विश्वास नहीं था। फिर भी, स्नान करके, पूजा करके रज्जो ने वह पान खाया, और लो कुछ ही पलों में उसकी वही पुरानी आवाज़ लौट आयी। उतनी ही ठसक और गमक के साथ। वह सब जादू की तरह हुआ। रज्जो ने उसके बाद जीवन-भर मुल्क़ के सारे तीर्थों में जाकर भजन गाये। स्वामीजी के आख़िरी समय में वह उनसे मिलने गयी। तब उसने स्वामीजी से इजाज़त माँगी कि एक बार वह उसे अपनी आवाज़ के मुरीदों की महफ़िल में गा लेने दें। उन्होंने इजाज़त दे दी। उस दिन फिर पूरे मुल्क़ से उसके चाहनेवाले आये। बड़े-बड़े नवाब, रईस, कलाकार। रज्जोबाई ने अपना आख़िरी मुजरा किया। उस रात रज्जोबाई ने जो गाया वह गाना नहीं, सीधे खुदा तक पहुँचने का रास्ता था। पूरी रात आँसू बहाते हुए रज्जोबाई गाती रही, पूरी रात आँसू बहाते हुए सब सुनते रहे। संगीत, उसका जादू, उसकी पवित्रता, उसके ईश्वर के दर्शन करते रहे। ज़िन्दगी में ऐसी रात फिर कभी नहीं आयी। ज़िन्दगी इतनी मेहरबान फिर कभी नहीं हुई। अगली दोपहर तक रज्जो ने प्राण छोड़

दिये। वह थोड़ी देर के लिए चुप हो जाते। दोनों हथेलियों को हवा में घुमाते जैसे उनसे कुछ उड़ा रहे हैं। वह उनकी हताशा का चरम होता। तब वह एक भी शब्द नहीं बोलते। बस हथेलियों को हिलाते हुए जैसे पूछते थे यह सब क्या हो गया? क्यों हो गया? उनकी घूमती हुई हथेलियों से जो उड़ता हुआ बाहर आता था, वह अपने होने का गहरा व्यर्थता बोध होता था। जीवन से, इस काया से मुक्त होने की गहरी छटपटाहट होती थी। आनेवाले क्षणों का पूरा अस्वीकार होता था। पर उनकी हथेलियों में इतनी शक्ति नहीं बची थी, कि वे उसे फैलाकर किसी को आने से या जाने से रोकने के लिए, मुटठी बन्द कर सकें। वे जब इस तरह हथेलियाँ घुमाते, तब उनकी घूमती हथेलियों और आँखों के बीच एक तरल, चमकीला पारदर्शी पुल खिंचा होता, जो उन हथेलियों के हिलते ही, आँखों के पानी को भी हिलाने लगता। जीवन से मुक्ति, मृत्यु की अनवरत कामना, स्मृतियों का बोझ, असहनीय भविष्य, जर्जर देह, आश्रित होने की ग्लानि, छुपी भर्त्सनाएँ, सब इस पुल पर कन्धे सिकोड़े, झुके हुए खड़े रहते। उस समय उनका साथ कोई नहीं देता। न तैमूर लंग, न रज्जोबाई, न चश्मे का हुनर, और न राग। खुली हथेलियों से, खुली आँखों के बीच ये सब उड़ चुके होते थे। बहुत देर बाद वह वापस लौटते और फिर बोलते।

"इनसान से पहले उसके घरों की दीवारें आनेवाले समय को पहचान लेती हैं। साँप की तरह ज़मीन से सटी खाल, हर जुम्बिश को, बहुत दूर से, बहुत पहले पकड़ लेती हैं। इनसान से पहले वे दीवारें काँपती हैं, सिकुड़ती हैं, ढहने लगती हैं। मुग़लों के आख़िरी दिनों में लालकिला भी ऐसा हो गया था। ज़फ़र की ही तरह बदनसीब, बेनूर, बूढ़ा। सबसे पहले वह समझ गया था कि आनेवाला वक़्त कैसा है। उसके अन्दर चिराग़ों की रोशनी कम होने लगी थी। परिन्दों ने उसके कंगूरों पर बैठना बन्द कर दिया था। दीवारों की दरारों में तिनके उगने लगे थे। उसकी चहारदीवारी के अन्दर पागलों की तरह घूमते, दाढ़ी के बाल नोचते हुए सलातिन ज़िन्दा प्रेत लगते थे। वे सब भी तैमूरी खानदान के ही थे। इनमें से कोई भी, कभी बादशाह हो सकता था। पर वक़्त उनका नहीं था। ये सब किसी-न-किसी बादशाह के भाई-बन्धु थे जिन्हें बादशाह हमेशा क़ैद में रखता था कि कहीं वे गद्दी के दावेदार न बन जाएँ। ज़फ़र की दिल्ली में ही दो हज़ार सलातीन थे जिनको बेहद मामूली रक़म ज़िन्दा रहने भर के लिए मिलती थी। रक़म मिलनेवाले दिन वे सब लाइन बनाकर, यतीमों की तरह हाथ फैलाकर खड़े रहते थे। इनके रहने की जगह की दीवारें इतनी ऊँची होती थीं कि कोई भी उनके अन्दर देख नहीं सकता था। उनके अन्दर मिट्टी की छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ थीं जिनमें वे रहते थे। जब भी दरवाज़ा खुलता तो वे भूखे, पसलियों के ढेर, आधे नंगे, चीखते हुए बाहर निकलते थे। कुछ उनमें अस्सी साल के बूढ़े भी होते जो बचपन से ही वहाँ बन्द थे। कुछ

जवान थे तो कुछ दरम्यानी उमर के। ये सब बादशाह के लम्बे-चौड़े खानदानों के हरम की जायज-नाजायज औलादें होती थीं जिन्हें कभी इस बात का अहसास तक नहीं होने दिया जाता था कि गद्दी से उनका कोई ताल्लुक़ भी है। हालाँकि वे भी, कहीं-न-कहीं उसी तैमूरी खानदान से जुड़ते थे।'' वह विवान का हाथ पकड़े बोलते रहते थे, ''कच्ची दीवारें, बदशक्ली, पतन, गर्दिश, वहशत और भुखमरी सिर्फ़ इनसानों में ही नहीं होती, घरों में भी दिखती है। लालकिले में यही हो रहा था। अँग्रेज़ी फ़ौज ने दिल्ली फतह की तो इन्हें आज़ाद किया। इनमें से ही एक हमारे अपने खानदान के बुजुर्ग थे। उन्होंने लखनऊ जाकर अँग्रेज़ी फ़ौज़ की बड़ी मदद की। जब फ़ौज़ रेजीडेंसी को आज़ाद कराने जा रही थी, तो वे ही थे जिन्होंने पुरपेंच गलियों से, निकालकर, देसी सिपाहियों के हथियारों से बचाते हुए, अँग्रेज़ी फ़ौज़ को रेजीडेंसी पहुँचाया था। वह इतने ख़ुश थे कि वह सेना के आगे-आगे नाचते चल रहे थे। उन्हें फिर बाद में इनाम मिला। कुछ जागीर मिली। उसी से हम सब आगे ख़ुशहाल रहे, दौलतमन्द रहे।'' वह चुप हो जाते।

विवान उनसे कहना चाहता था कि अक्सर ग़लत जगह घर बने होने से भी कमरों की दीवारें ढहती हैं। पर तब तक विवान के हाथों में उनकी हथेलियों का पसीना आ जाता, पर वह विवान का हाथ नहीं छोड़ते। धीरे-धीरे उनकी स्मृतियों का आख़िरी पड़ाव भी आ जाता। वह विवान को बताते कि तैमूर लंग हिन्दुस्तान में था जब मुहर्रम पड़ा। वह हर साल कर्बला जाता था। उस बार नहीं जा पा रहा था, तब उसने यहाँ कर्बला की शक्ल के ताजिए पहली बार बनवाए। उसी ने मुहर्रम में ताजिए शुरू किये। फिर वह समरकन्द की उसकी दावतों के बारे में बताते जिनमें कतार से लगे सैकड़ों शामियानों में शराब के बड़े-बड़े मटके होते थे। कुछ शामियानों के बाहर बाजीगर अपना तमाशा दिखाते थे, तो कुछ में औरतें भेड़ और बकरी की खाल पहनकर भागती थीं और आदमी शेर और चीते की खाल पहनकर उन पर झपटने का खेल खेलते थे। पिंजरों में दूसरे मुल्क़ों के जानवर बन्द रहते थे। भट्टियों पर बेशुमार भेड़, घोड़े, बकरे भुनते रहते थे। अलग तरीकों से पकाये गये चावलों की सैकड़ों किस्में होती थीं, फल होते थे। तैमूर लंग की तारीफ़ करते हुए वह बेख़्याली में यहाँ तक पहुँच जाते कि नादिरशाह की तारीफ़ करते हुए बताते कि वह तैमूर की आत्मकथा हमेशा अपने साथ रखता था। वह अपने समय, अपने मुल्क़, अपनी तारीख़ को भूल जाते। ऐसा शायद इसलिए था कि समरकन्द और तैमूर की शान के साये में वह अपने सलातीन होने की दुर्दशा को शायद छुपाना और भूलना चाहते थे। दिल्ली की उस शानो-शौकत से अपनी वाबस्तगी दिखाना चाहते जो उनकी भी हो सकती थी। जो भी था, समरकन्द उनकी आख़िरी शरण होता था और तैमूर लंग आख़िरी इनसान जिस पर वह अपनी बात अचानक ख़त्म कर देते।

फिर वह अचानक ख़ामोश हो जाते। विवान जानता था कि स्मृतियाँ इसी तरह अचानक किसी अन्धे मोड़ पर साथ छोड़कर गुम हो जाती हैं। विवान धीरे-से उन्हें दीवान पर लिटा देता और चला आता।

समरकन्द की ये दावतें सदर के अन्दर भी थीं और देवकी गुरु के अन्दर तो दावतों के लिए बनायी जानेवाली उसकी भट्ठियाँ पहले से ही थीं।

देवकी गुरु की दो विशेषताएँ थीं जिनकी वजह से उन्हें शहर में जाना जाता था। पहली यह, कि वह शहर के हलवाइयों की भट्ठी के सबसे बड़े उस्ताद थे, दूसरी यह कि वे तीन तरह की आवाज़ों में बात करते थे। बातें करते-करते वे अचानक अपने मुँह से निकलनेवाली आवाज़ का स्वर, गहराई, दूरी, सान्द्रता, सब इस तरह बदल देते थे कि वह किसी दूसरे के गले से आती हुई मालूम पड़ती। जो उनके साथ लम्बे समय से रहते आये थे वे उनकी आवाज़ों के परिवर्तनों के कारण और उसके उद्देश्यों को अच्छी तरह समझते थे। इसके क्रम को भी जानते थे।

इन तीन आवाज़ों में से एक आवाज़ तो तब निकलती थी जब उनकी वोकल कार्ड (स्वर नली) हलवाइयों पर चिल्लाते-चिल्लाते थक जाती थी। तब वे उसे दबाकर धीमी आवाज़ में फुसफुसाते हुए बोलते। उनकी यह आवाज़ मिट्टीवाली किसी दीवार को खुरचने जैसी होती थी। इसमें वैसी ही खरखराहट थी। इससे शब्द भी उसी तरह झरते थे जैसे ऐसी दीवार के खुरचे जाने के बाद मिट्टी करती है। दूसरी आवाज़ उनकी सामान्य आवाज़ थी जिसमें वह सबसे ज़्यादा बोला करते थे। तीसरी आवाज़ बीड़ी पीते हुए हलवाइयों को गालियाँ देते हुए निकलती थी। इसमें बीड़ी के धुँए का ठसका और कड़वाहट, हलवाई के प्रति गहरा आक्रोश या कि घृणा और अपने थरथराते क्रोध को थामने की कोशिश होती थी। इस तीसरी आवाज़ में वह ज़्यादा देर तक नहीं बोल पाते थे। उनकी वोकल कार्ड थक जाती और तब अचानक वह अपनी पहली आवाज़ में फुसफुसाने लगते थे। इन आवाज़ों के क्रम बहुधा इस प्रकार थे कि पहले उनकी सामान्य आवाज़ फिर बीड़ी पीने के बाद हलवाई के लिए हिकारत की आवाज़, फिर वोकल कार्ड थकने की बाद की फुसफुसाती आवाज़ होती थी। तीन भावनाएँ या कि वस्तुएँ एक साथ सँभालने और प्रस्तुत करने की कोशिश में उनकी आवाज़ का उतार-चढ़ाव तेज़ी से घटता-बढ़ता रहता था।

भट्ठी और देवकी गुरु के बीच गहरा रिश्ता था। पूरे शहर में देवकी गुरु किसी भी

आयोजन में हलवाइयों की भट्ठी के सम्पूर्ण मर्मज्ञ समझे जाते थे। यह मर्मज्ञता उन्हें विरासत में मिली थी। 'गुरु' शब्द उन्हें इसी मर्मज्ञता के अकल्पनीय ज्ञान और निरन्तर चलनेवाले शोध और प्रयोगों के लिए मिला था। सदर अगर अपने खानदान को तैमूर से जोड़ता था तो देवकी गुरु भी अक्सर अपनी गौरव गाथा के उद्दीप्त क्षणों में, अपने इस हुनर को पीछे खींचते हुए बनारस के राजाओं तक पहुँच ही जाते थे। ऐसा कोई भी शाकाहारी व्यंजन, जिसे खाया जा सकता था, अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में कितने प्रकार से खाने के योग्य बनाया जा सकता है, देवकी गुरु इसके प्रचंड ज्ञानी थे। उन दिनों शहर में भट्ठियाँ रोज़ ही सुलगती थीं। शादी, जनेऊ, मुंडन, मृत्युभोज की या फिर सदर की तरह शौक़ीन लोगों की दावतें होती रहती थीं। ऐसे किसी आयोजन का सबसे पहला चरण यही होता था कि देवकी गुरु के सम्पूर्ण नियन्त्रण और निरीक्षण में भट्ठी सौंप दी जाती। पहले दिन देवकी गुरु अपनी पारम्परिक पोशाक में आते। इस पोशाक में गोल, काली टोपी, चुन्नटदार धोती, मलमल का चुन्नटदार कुरता, पैरों में नफ़ीस काला नागरा होता था। कानों में इत्र की फुरेरी ठुँसी होती और होंठों में कभी अलग न होनेवाली बीड़ी होती।

सबसे पहले वह भट्ठी लगानेवाले स्थान की पूजा करते। यह विधि वह स्वयं की आवश्यकतानुसार तय करते। ख़ास तरह की मिट्टी, जिसमें भूसा और कुछ अन्य मन्त्र सिद्ध सामग्रियाँ मिली होतीं, उससे भट्ठी बनाते। देवकी गुरु भट्ठी को उसी श्रद्धा और प्रेम से बनाते जैसे अमानुल्ला ने ताजमहल बनाया था, पिकासो ने गुएर्निका बनायी थी या कुमार गान्धर्व आलाप लेते थे। भट्ठी बनने के बाद उसमें अग्नि प्रतिष्ठित की जाती। इस अग्नि की भी पूजा होती जिसमें उससे उचित ताप पर निरन्तर प्रज्वलित रहने और कृपा रखने की प्रार्थनाएँ होतीं। उसके बाद देवकी गुरु कुर्सी डालकर भट्ठी के पास स्वयं भी स्थापित हो जाते। वहाँ से फिर तभी हटते जब भट्ठी विधिवत् बुझाकर तोड़ दी जाती। इस पूरे क्रम में देवकी गुरु भट्ठी के पास बैठे हुए एक पैर के घुटने पर, दूसरा पैर मोड़कर, उसका पंजा टिकाकर रखते और उस मुड़े पैर को, निरन्तर आवाज़ें बदलने के साथ-साथ हिलाते रहते। भट्ठी के पास बैठे हुए देवकी गुरु उसके बर्तनों में डाली जानेवाली हर सामग्री को ध्यान से देखते रहते। उसका रंग, अनुपात और गन्ध पर नज़र रखते। बीच-बीच में वह बीड़ी पीते हुए ही हलवाई से अपनी तीसरी आवाज़ में बात भी करते रहते जो बहुधा हलवाई के प्रति गालियों का अनिर्वचनीय शब्दकोश होता। हलवाई की बनायी हुई चीज़ों को वह चखते और फिर अगर उसमें कमी पाते तो अवसरानुकूल स्त्री या पुरुष के विशेष अंगों से उसे जोड़कर अलौकिक उपमाएँ देते। मसलन रसगुल्ले की आकृति व आकार को उसके अंडकोष से और लड्डू के लिए बनायी गयी बूँदी की आकृति, आकार, मुलायमियत व गोलाई को कन्या के

अविकसित स्तनाग्र से जोड़कर उसे समझाते। इमरती की चाशनी की सान्द्रता और चिकनाई वीर्य से तो सोहनपापड़ी के लच्छों के रेशों की मुलायमियत और घनत्व जाँघों के बालों से करके उसे बताते। यह उनका शालीन तरीक़ा था जो तीसरी आवाज़ तक ही रहता था। इसके बाद जब उनकी वोकल कार्ड थक जाती, तो वह पहली आवाज़ में फुसफुसाहट के साथ बोलते हुए, हलवाई को अश्लील गालियाँ देते और भट्ठी से हटाकर खुद उसकी जगह बैठ जाते। उसे वह व्यंजन खुद बनाकर खिलाते। उसे अपने पूर्वजों का कोई किस्सा सुनाते हुए, फिर अपनी कुर्सी पर उसी तरह बैठ जाते। बीड़ी सुलगाकर मुँह में रखते। एक घुटने पर दूसरे पैर को मोड़कर उसका पंजा टिकाते, उस पैर को हिलाते हुए अपनी दूसरी आवाज़ में बोलने लगते।

तैमूर लंग और राजा बनारस की पीढ़ियों का यह अद्‌भुत और धर्मविहीन मिश्रण, किताबों में पढ़ाई जानेवाली, भारत की गंगा-जमुनी तहज़ीब और संस्कृति के मिश्रण रूप में अधिक प्रामाणिक व विश्वसनीय ढंग से, सदर के घर की इन दावतों में जीवित दिखता था।

मुकुन्दी इन्हीं देवकी गुरु का लड़का था।

शुरू में विवान ने मुकुन्दी को कई बार सदर के घर की दावतों में ही देखा था। वह कोई सामान लेकर अक्सर देवकी गुरु के साथ ही आता था। उसकी उमर सत्रह बरस की थी। देवकी गुरु उसे भी भट्ठी का मर्मज्ञ बनाना चाहते थे। अपने पूर्वजों की परम्परा के साथ-साथ मुकुन्दी के आर्थिक भविष्य को भी एक ठोस व निश्चित रूप देना चाहते थे। मुकुन्दी ने कुछ दिनों तक इसके लिए कोशिश भी की पर भट्ठी में उसका मन नहीं लगा। उसका मन गंगा के किनारे की रेती पर पतंग के पेंच लड़ाने में, मालिश कराने में और तैरने में लगता था। वह अपना पूरा दिन गंगा में तैरने में बिता देता। नदी उसे अच्छी लगती थी। नदी की हर चीज़ अच्छी लगती थी। धीरे-धीरे वह नदी के अन्दर बहुत देर तक रहने लगा। वह घंटों नदी के अन्दर गुम रहता। लोग कहने लगे कि वह मछलियों से बातें करता था। उसके नदी में उतरते ही मछलियाँ उसे घेर लेतीं। अपने घर ले जातीं। वह उन्हें कहानियाँ सुनाता था। कुछ लोग कहने लगे थे कि वह सड़क पर चलता नहीं मछलियों की तरह तैरता है। कुछ को उसकी शक्ल में वे बदलाव दिखने लगे थे जो उसके चेहरे को मछलियों की तरह बना रहे थे। नदी में इस तरह रहने और इतनी देर तक रहने से, वह धीरे-धीरे शहर का सबसे बड़ा तैराक और गोताखोर बन गया। बरसात के दिनों में जब गंगा का दूसरा पाट नहीं दिखता था, वह एक ओर से दूसरी ओर तक तैर जाता था।

देवकी गुरु ने भट्ठी में जितना नाम कमाया था, उतना ही नाम मुकुन्दी ने बहुत जल्दी, नदी में रहने में कमा लिया था।

मुकुन्दी के नदी में रहनेवाले दिनों में भी विवान की उससे मुलाकात होती रहती थी। मुकुन्दी कभी व्रत के दिनों में देवकी गुरु का घर से बना खाना लाता, कभी उन्हें स्कूटर पर छोड़ने आता, कभी कोई दवा देने। इस छोटे से शहर में विवान को मुकुन्दी सड़क पर भी, और सड़क पर नहीं, तो नदी के किनारे तो मिल ही जाता था। वह जब भी मिलता, झुककर विवान का अभिवादन ज़रूर करता था।

उन दिनों नदी साल में बारह महीने पानी से लबालब भरी रहती थी। साल में तीन महीने तो उसका पानी अथाह होता था। डराता हुआ, तेज़ आवाज़ें करके उछाल मारता हुआ। नदी में हर साल बाढ़ आती थी। एक साल बहुत ज़्यादा बाढ़ आयी। लोग बाढ़ का पानी देखकर हैरान थे। घाट की कुछ और सीढ़ियाँ रोज़ पानी में डूबती जाती थीं। लोग बाढ़ में शहर के बहने की आशंकाओं और कल्पनाओं में रहने लगे थे। पुल पर खड़े होकर वे उसके खम्भों से टकराती लहरों और उसमें बनती भँवर को खौफ़ से देखते। इसे देखने वे दूर-दूर से आते थे और इस खौफ को अपने साथ ले जाते थे।

उन्हीं दिनों में सदर की माँ, लैला के रंग जैसे शहतूत बेचनेवाले से बाढ़ के बारे में पूछने अपनी खुली हुई, बड़ी खिड़की पर आयी, तो ज़्यादा झुक जाने पर खिड़की से नीचे गिर गयी। कुछ ही देर में वह मर गयी। सदर के पिता को जब यह बताया गया तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि कोई इस तरह बाढ़ के बारे में पूछते हुए भी खिड़की से गिरकर मर सकता है। बाद में सदर ने जब उन्हें समझाया कि नदी तो उनके घर के लिए शुरू से ही शुभ और दयालु नहीं रही है। घड़ियाल इसके पहले लड़के को खींच चुका है, उसी तरह अब बाढ़ ने माँ को खींच लिया है। नदी का ज़िक्र अब घर में नहीं होना चाहिए। बाढ़ की यह मौत बहुत दिनों तक नदी के साथ शहर में रही, हालाँकि बीच में कुछ लोगों ने यह भी कहा कि शहतूत भी ऐसा कर सकते हैं। वे इनसान को भी खींच लेते हैं। ख़ासतौर से जब उनके साथ लैला का ज़िक्र किया जाये। लैला, शहतूत और बाढ़ में सदर को माँ की मौत किसने की, यह बात कभी साफ़ नहीं हुई पर नदी सदर के घर में हमेशा के लिए बुरी याद की तरह रह गयी।

बाढ़ के उन्हीं दिनों में, एक शाम विवान जब बकरमंडी से लैम्पपोस्ट जलाता हुआ नाचघर जा रहा था, तभी उसने मुंशी के एक रिश्तेदार को सड़क पर रोते और नदी की तरफ भागते देखा। विवान उस रिश्तेदार को पहचानता था। मुंशी की औरत दरगाह पर चढ़ानेवाली चादरें बनाती थी। उसके लिए वह दफ़्तर के पीछे की खुली जगह का पूरा इस्तेमाल करती थी। यह रिश्तेदार उन चादरों को दरगाहों पर बेचता

था। पैसों का हिसाब मुंशी की औरत को देता था। मुंशी का इससे कोई सरोकार नहीं था, सिवाय इसके कि उसके तख़्त पर वह रिश्तेदार अक्सर उस दिन दोपहर को देर तक सोता था, जिस दिन हफ़्ते का पैसे लाकर उसकी औरत को देता था।

विवान ने समझ लिया कि कुछ अनहोनी हुई है। उसके साथ और लोग भी थे जो उसके पीछे तेज़ चलते हुए उसी तरफ जा रहे थे। विवान ने उनसे पूछा तो पता चला कि उसकी जवान लड़के की शादी कुछ महीने पहले हुई थी। वह शादी के बाद की कोई पूजा करने नदी पर गया था। वह नदी में नहाने के लिए उतरा फिर नहीं दिखा। विवान ने लैम्पपोस्ट बुझे ही छोड़ दिये। लौटकर उसने मुंशी को दफ़्तर में यह बात बतायी। मुंशी भी नदी की तरफ़ भागा। विवान को उसने साथ ले लिया।

घाट पर बहुत भीड़ थी। वे सावन-भादों के दिन थे। लोग नदी के किनारे उसकी अजगर की तरह सर पटकती लहरों को देख रहे थे। लड़के के डूबने का शोर मच गया था। लोग घाट पर भागते चले आ रहे थे। रोता हुआ रिश्तेदार वहाँ खड़े मल्लाहों के, पुलिसवालों के हाथ जोड़ रहा था कि कोई तो पानी में उतरे। उसे पुलिस का गोताखोरों वाला स्टीमर दिलाये। हो सकता है उसका बेटा अभी मरा न हो। हो सकता है उसमें अभी जान हो। मर भी गया हो तब भी उसका शरीर तो चाहिए ही। किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी जो उस फुफकारती नदी में उतरता।

विवान ने तभी मुकुन्दी को देखा। वह घाट के एक कोने में चुपचाप खड़ा, चाय पीता हुआ सब देख रहा था। उसने भी विवान को देख लिया। वह विवान के पास आया। विवान ने उसे बताया कि रोता हुआ आदमी उसका परिचित है और लड़के का शरीर तो मिलना ही चाहिए। लाल कपड़ों में लिपटी, सिसकती हुई उसकी बीबी उसके मरने को मानने को तैयार ही नहीं थी, जब तक कि उसका शरीर न मिले।

मुकुन्दी ने विवान से धीरे-से पूछा कि अगर वह चाहता हो और उसकी बात हो, तो वह नदी में उतरे। विवान ने मुकुन्दी से नदी में उतरने को कह दिया।

मुकुन्दी ने चाय ख़त्म की और कपड़े उतारकर घाट के सबसे ऊँचे पत्थर पर खड़ा हो गया। उसे सबने खड़े होते हुए फिर नदी में छलाँग लगाते हुए देखा। पूरे घाट पर सन्नाटा छा गया। नदी मुकुन्दी के लिए इतनी अधिक परिचित थी कि वह उसके हर मोड़, हर गड्ढे को पहचानता था। उसे पता था कि बरसात के दिनों में किन गड्ढों में उतरनेवालों के पाँव धँस जाते हैं। कहाँ घुमाव ज़्यादा है, कहाँ भँवर शरीर को निगल लेते हैं। वह दो बार साँस लेने के लिए पानी के ऊपर निकला। वह कुछ दूर तैरता, फिर गोता मारता, फिर तैरता। तीसरी बार उसने हाथ का इशारा किया। घाट की पुलिस का स्टीमर भी तब तक आ गया था। मुकुन्दी ने जहाँ बताया, वहाँ स्टीमर रोककर गोताखोर उतरे। लड़के का पूरा शरीर वहीं, एक गड्ढे में फँसा

था। मुकुन्दी ने घाट पर आकर चुपचाप अपने कपड़े पहने और चला गया।

इसके बाद नदी सूखने लगी थी। इतनी अधिक सूख गयी कि मुकुन्दी ने वहाँ जाना छोड़ दिया। मुकुन्दी के इस किस्से को सदर ने भी सुना था। उसे मुकुन्दी हमेशा पसन्द था। मुकुन्दी की उमर बढ़ रही थी। उसकी शादी भी होनी थी। उसके पास कोई काम नहीं था। नदी के सूखने के बाद वह भी अब कुछ करना चाहता था। देवकी गुरु ने सदर से कई बार अपने इस दुख को रोया था कि मुकुन्दी भट्ठी से दूर रहना चाहता है। वह उसकी रोजी-रोटी चलाने के लिए और क्या करवा सकते हैं?

सदर जिस तरह लावारिस मय्यत कमेटी का सदर था, उसी तरह शहर के कुछ साल पहले, नये खुले चिड़ियाघर की कमेटी का भी ज़िम्मेदार सदस्य था। उसने चिड़ियाघर के जानवरों के खाने के सामान का ठेका मुकुन्दी को दिलवा दिया। उसमें शाकाहारी और मांस दोनों तरह के खाने शामिल थे। मुकुन्दी ने अपने एक खटिक दोस्त के साथ मिलकर ठेका लिया था। सुअर के मांस के इन्तज़ाम की ज़िम्मेदारी उसकी थी, बाकी सब मुकुन्दी की। देवकी गुरु को भी सन्तोष था कि भट्ठी न सही, पर उसी से जुड़ा, उसी तरह का कुछ काम मुकुन्दी करने लगा है। चिड़ियाघर के तेरह शेर, बाघों और पाँच भालुओं और दूसरे जानवरों के लिए रोज़ करीब पाँच सौ किलो मांस चाहिए होता था। खटिक और उसके सारे नाते-रिश्तेदार सुअर पालते थे। उसकी साझेदारी में मुकुन्दी चिड़ियाघर में जानवरों के लिए खाना पहुँचाने लगा।

एक दिन चिड़ियाघर के बाघों का परीक्षण हुआ तो उनके हृदय में कैलोस्ट्रॉल की मात्रा बहुत ज़्यादा निकली। यह पाया गया कि सुअर के मांस में कैलोस्ट्रॉल बहुत होता है इसलिए उसे तत्काल बन्द करके दूसरे जानवर के मांस का इन्तज़ाम किया जाए। अनाज और सब्ज़ियों के लिए भी, चिड़ियाघर की अपनी सैकड़ों एकड़ खाली पड़ी ज़मीन पर खेती की जाने लगी। कुछ ही दिनों में चिड़ियाघर में मुकुन्दी का काम बन्द हो गया। इधर मुकुन्दी को काम पर लगा देखकर देवकी गुरु ने उसकी शादी भी कर दी थी। नदी सूखने के बाद, बाघों के हृदय का कैलोस्ट्रॉल बढ़ना मुकुन्दी के लिए दूसरा बड़ा झटका था।

एक शाम मुकुन्दी मय्यत कमेटी के दफ़्तर में आया। विवान के पास कुछ देर बैठने के बाद वह धीरे-से बोला, "मैंने आज आपके नाम से आधा किलो चाँदी ख़रीद ली है।"

विवान ने हैरान आँखों से मुकुन्दी को देखा। उसकी समझ में नहीं आया कि मुकुन्दी क्या कह रहा है?

"आपको कुछ नहीं करना है। बस मैंने बता दिया।"

विवान कुछ नहीं बोला। बीस दिन बाद मुकुन्दी फिर आया। कुछ देर बैठा,

फिर बोला, ''मैंने आपकी आधा किलो चाँदी आज बेच दी।''

विवान ने उसे फिर हैरानी से देखा।

''कौन-सी चाँदी?''

''आपको याद नहीं, मैंने बीस दिन पहले आपके नाम से ख़रीदी थी।''

''तो?''

''कुछ नहीं, बस आपको बता दिया।''

फिर हर महीने-दो महीने में मुकुन्दी एक बार आता और विवान को बता जाता कि आज उसके नाम से इतनी चाँदी ख़रीदी, इतनी बेची।

विवान उससे कभी नहीं पूछ पाया कि वह यह क्यों करता है। विवान घाट की वह शाम नहीं भूला था। मुकुन्दी ने उस समय विवान से यह नहीं पूछा था कि वह नदी में क्यों उतरे? उसने तब कोई हिसाब भी नहीं किया था। इसी तरह कई सालों तक मुकुन्दी विवान को शहर के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग समय मिलता रहा। नाचघर, बकरमंडी, गोल दरवाज़ा, टोपी बाज़ार, अफ़ीम कोठी, शुतरख़ाना, फेथफुलगंज, कहीं भी अचानक मुकुन्दी को विवान दिख जाता। तो वह दौड़ता हुआ आता।

''मैं आपकी चाँदी ख़रीद और बेच रहा हूँ।''

विवान हैरानी से मुकुन्दी को देखता। वह इस बात को भूल चुका होता।

''कौन-सी चाँदी?''

''आपको बताया था न, आपके नाम से ख़रीदी थी।''

विवान चुपचाप सर हिला देता। वह देवकी गुरु के बारे में पूछता। मुकुन्दी तब विवान को कोने की चाय की दुकान पर ले जाता। चाय पीते हुए धीरे-धीरे उदास आवाज़ में विवान को बताता कि देवकी गुरु अब बहुत बीमार रहने लगे हैं। भट्ठियों का काम बहुत पहले ही ख़त्म होने लगा था। लोग सीधे होटल में ही सब कुछ करने लगे हैं। काम जाननेवाले वैसे हलवाई भी नहीं रह गये हैं। खाने की नयी-नयी चीज़ें आ गयी हैं जिनका नाम भी उन्होंने कभी नहीं सुना है। जैसे भट्ठी के लिए चाहिए होते हैं, वैसे बरतन भी नहीं मिलते हैं। नदी सूखने से वैसी मिट्टी नहीं मिलती। उस मिट्टी में डालनेवाले, मन्त्र सिद्ध करनेवाले दाने भी नहीं मिलते। काम ही ख़त्म हो गया है। देवकी गुरु घर पर ही रहने लगे हैं। मुकुन्दी ने विवान को बताया कि एक दिन अचानक उनको लकवा मार गया। शरीर का एक हिस्सा पूरी तरह बेकार हो गया। आवाज़ भी चली गयी। अब मुँह से एक चौथी तरह की आवाज़ निकलती है। इसमें शब्द नहीं होते बस अजीब ढंग से गू-गा करते हैं। मुकुन्दी ने विवान से कहा कि उसने तो उनकी तीनों आवाज़ें सुनी हैं। यह चौथी आवाज़ वह सुनना चाहे तो उसके घर आ जाए। उसे तो समझ में नहीं आता, पर हो

सकता है विवान शायद उसका मतलब समझ ले। मुकुन्दी ने बताया कि लकवे के बाद वह किसी तरह गुसलख़ाने तक चले जाते हैं पर बैठ नहीं पाते। खड़े-खड़े ही सब करते हैं। उसे ही उन्हें धोना, साफ़ करना पड़ता है। मुकुन्दी ने बताया कि कई बार तो पख़ाना इतना कड़ा हो जाता है कि उँगली डालकर निकालना पड़ता है। उसे घर में भी इसीलिए ज़्यादा देर तक रहना पड़ता है कि पता नहीं कब उन्हें पख़ाना जाना पड़ जाये। घर में यह काम कोई दूसरा नहीं करता। इस वजह से वह चाँदी के काम को ज़्यादा समय नहीं दे पा रहा है। हो सकता है विवान को कुछ घाटा उठाना पड़ जाये।

विवान डगलस हैरानी से मुकुन्दी को देखता रहता। जो नदी सूख गयी थी वह उसे मुकुन्दी की आँखों में दिखती। उसे लगता कि पहले मुकुन्दी नदी में रहता था, सूखने के बाद अब नदी मुकुन्दी की आँखों में रहने लगी है।

मुकुन्दी हड़बड़ी में अपनी चाय ख़त्म करता।

''जरा चलूँगा अभी, एक अच्छा सौदा होना है। हो सकता है आपका नुक़सान कुछ कम हो जाए।'' हाथ के नीचे छोटा-सा बैग दबाये मुकुन्दी चायवाले को पैसे देता और भीड़ में गुम हो जाता।

देवकी गुरु का मरना भी विवान को बहुत दिन बाद पता चला। सदर की मौत भी हो चुकी थी। विवान ने लैम्पपोस्ट जलाने का काम भी बन्द कर दिया था। मुकुन्दी का मिलना भी धीरे-धीरे कम होता गया। विवान भी सड़कों पर कम निकलता था। मुकुन्दी से विवान दूर हो गया था।

मुकुन्दी अचानक तीन दिन पहले ही विवान के पास दफ़्तर आया था।

''मैं छुट्टीवाले दिन शाम को आऊँगा। उसी समय, जब अज़ान होती है, जब बिरयानीवाला आ जाता है, जब बिजली चली जाती है। आपकी चाँदी का पूरा हिसाब कर दूँगा। मैं अब यह काम बन्द करनेवाला हूँ।''

विवान कुछ नहीं समझा था। उसने हर बार की तरह चुपचाप सर हिला दिया था। आज वही छुट्टी का दिन था। अब अज़ान हो चुकी थी। बिरयानीवाला आ चुका था। बिजली चली गयी थी। अब मुकुन्दी को आना था। विवान उसका इन्तज़ार कर रहा था।

कमरे में मोमबत्ती की लौ काँप रही थी। काँपती लौ की परछाईं भी काँपती थी। उस परछाईं में जितनी चीज़ें होती थीं वे सब भी काँपती थीं। जब परछाईं काँपती थी तो वे चीज़ें भी अपने काँपने से ज़िन्दा लगने लगतीं। विवान को कभी लगता था कि जैसे वे भी साँस लेती हैं। लौ में काँपती परछाइयों से गुज़रते हुए कई बार विवान को

लगा था कि उसने उनका स्पर्श किया है, उनके स्पन्दन को महसूस किया है। विवान डगलस के जीवन की एक नयी अवस्था थी जिसमें वास्तविकताएँ और उनकी छायाएँ आपस में गड्डमड्ड हो जाती थीं।

सीढ़ियों पर आहट हुई। विवान ने सर घुमाकर देखा। मुकुन्दी ही था। उसकी बाँह के नीचे छोटा-सा बैग दबा था। कमरे के एक कोने में चप्पल उतारकर वह अन्दर आया। इधर-उधर देखा उसने। कमरे में दूसरी कुर्सी नहीं थी।

''इधर'' विवान ने पलँग की ओर इशारा किया, ''इस पर बैठो।''

मुकुन्दी पलँग के कोने पर बैठ गया। पलँग ऊँचा था। उसके पंजे ज़मीन से उठ गये। वह अपने दोनों पैर हवा में हिलाने लगा। इसी तरह पैर हिलाते हुए कुछ देर उसने विवान के कमरे के अँधेरे उजाले में चीज़ों को देखा, आँखों को उस रोशनी का अभ्यस्त किया फिर बैग मेज पर रख दिया।

''काग़ज़ निकालूँ?'' उसने विवान से पूछा।

''कैसा?''

''हिसाब का।''

''कौन-सा हिसाब?''

''वही चाँदी। मैंने अब यह काम बन्द कर दिया है। मैंने देखा था। आपने बड़ा नुक़सान उठाया है। मैं समझता रहा आपको फायदा हो रहा है। आप ठीक समय और ठीक पैसों में चाँदी ख़रीद-बेच रहे हैं। पर ऐसा नहीं था। जब ख़रीदनी चाहिए थी तब आपने बेची, जब बेचनी चाहिए थी, तब आपने पकड़कर रखी। सट्टे की दुनिया में सबसे ज़रूरी होता है बज़ार की सही नब्ज़ को पकड़ना। आप नहीं पकड़ पाये, देखिए'', मुकुन्दी ने बैग की तरफ हाथ बढ़ाया। ''मैंने पूरा हिसाब लिखा है। आपने कुल मिलाकर चालीस हज़ार रुपये का नुक़सान उठाया है। मुझे बड़ा दुख है कि इतने सालों तक काम करने के बाद भी आपके पास से जाता ही रहा और आपको पता भी नहीं चला।''

विवान मुकुन्दी को देख रहा था और मुंशी के बारे में सोच रहा था। विवान को मुंशी से नाव की फिर नाव से नदी की याद आयी। नदी की याद से मुकुन्दी का नदी में रहना याद आया। यह भी याद आया कि जवानी में मुकुन्दी नदी में ही रहता था इसलिए नावों के बारे में, उसकी कीलों के बारे में भी ज़रूर जानता होगा। उसे पता होगा कि पानी में हमेशा डूबी रहनेवाली कील नाव के किस हिस्से में होती है। कितनी बड़ी होती है और ऐसी नाव कहाँ मिलेगी।

''आपने चाँदी की बजाय अगर जीरा या इलायची पकड़ी होती, उसे ख़रीदा और बेचा होता तो शायद आपको नुक़सान नहीं होता। आपको चाहिए तो मैं यह पूरा हिसाब आपको दे दूँ।''

''मुझे नाव की कील चाहिए।'' विवान बुदबुदाया।

मुकुन्दी एकदम से चुप हो गया। हैरानी से विवान को देखने लगा।

''नाव की ऐसी कील जो हमेशा पानी में डूबी रहती हो।''

मुकुन्दी ने कुछ देर विवान को खाली आँखों से देखा फिर सर झुका लिया।

''मैं अब नदी में नहीं जाता।'' मुकुन्दी बोला।

''मैं नाव की बात कर रहा हूँ।''

''नाव नदी होने से ही होती है। अब नदी नहीं है तो नाव कहाँ से होगी?''

''मुझे आज रात नाव की कील चुरानी है।'' विवान ने कहा।

मुकुन्दी ने विवान को फिर हैरानी से देखा। मुकुन्दी उस रात नदी में कूद गया था। हालाँकि नदी में बहुत जल था। पर मुकुन्दी में तब उतना ही आत्मविश्वास भी था। नदी सूखती गयी, मुकुन्दी भी नदी के साथ सूख गया। उसका आत्मविश्वास, उसकी शक्ति सूख गयी।

''पुल में गुज़रते हुए देखा है मैंने। दूसरी धार जहाँ मन्दिर के पास मुड़ती है,वहाँ नावें रहती हैं। वहाँ पानी हमेशा होता है। उस नाव की पेंदी की कीलें हमेशा पानी में डूबी रहती हैं। वहाँ तक जाना होगा।'' मुकुन्दी धीरे-धीरे बोला।

''मैंने जूते निकाल लिये हैं।'' विवान ने मुकुन्दी को बताया, ''दूसरी धारा तक पहुँचने में बालू भी होगी, कीचड़ भी।''

''और सूखी नदी भी।'' मुकुन्दी बुदबुदाया। मेज़ पर रखा बैग उसने उठा लिया।

''मैं चलूँगा। मैंने आपको चाँदी के बारे में बता दिया। आपका हिसाब मेरे पास हमेशा रहेगा। जब चाहें देख लें।''

''अब क्या करोगे?'' विवान ने मुकुन्दी से पूछा।

''पता नहीं...एक मन्दिर में पुजारी की जगह खाली हुई है, शायद मिल जाये।'' मुकुन्दी धीरे-से मुस्कराया फिर सीढ़ियाँ उतर गया।

विवान ने ग़ौर किया कि बात करते हुए मुकुन्दी की आवाज़ भी बदल रही थी। विवान ने तब यह ध्यान भी दिया कि मुकुन्दी भी इतनी देर से दो आवाज़ों में बोल रहा था। नदी की बात करते समय उसकी आवाज़ देवकी गुरु की बदली आवाज़ की तरह हो गयी थी। मुकुन्दी अपनी तीसरी आवाज़ में भी जल्दी बोलने लगेगा। या शायद बोलता ही हो, अभी न बोला हो, विवान डगलस ने सोचा।

विवान ने घड़ी देखी। अभी समय था। हो सकता था कील चुराने में पूरी रात निकल जाये। विवान को अचानक लगा कि वह कुछ देर सो सकता है। वह कुर्सी से उठा और पलँग पर लेट गया। मोमबत्ती की काँपती लौ में छत के कड़े की सिर्फ़ छाया ही काँप रही थी या फिर शायद कड़ा भी हिल रहा था। वास्तविकता और

परछाईं आपस में गड्डमड्ड हो गये थे।

विवान डगलस ने आँखें बन्द कर लीं।

रिमाडी के जंगलों में सत्रह साल तक विवान डगलस ने अपना चेहरा नहीं देखा। उसके चेहरे के बारे में दूसरे लोग उसे बताते रहे। अब भौहों के बाल सफ़ेद हो गये हैं, जबड़ों की हड्डियों का गोश्त कम हो गया है, होंठों पर तिरछापन रहने लगा है, आँखों की चमक कमज़ोर पड़ गयी है। इन सत्रह सालों में विवान ने अपनी परछाईं ज़रूर रोज़ देखी थी। धूप में भी, चाँदनी में भी। परछाईं में यह सब नहीं दिखता था। वह हमेशा एक-सी होती थी। उसकी लम्बाई-चौड़ाई में फ़र्क़ आता था पर उसके अन्दर रहनेवाले विवान डगलस के सत्रह सालों का परिवर्तन उसमें नहीं दिखता था। अपनी इस परछाईं को विवान बहुत अच्छी तरह पहचानने लगा था। इतनी अच्छी तरह, कि जब यह दूसरी परछाइयों में मिल जाती थी, तब भी विवान उसकी रेखाएँ, आकृति और व्याप्ति पहचान लेता था। यह परछाईं अक्सर बाबू, सोनिया या दूसरे साथियों की परछाइयों के साथ मिलने के बाद एक विशालकाय संरचना का हिस्सा बनी रहती, पर जब कभी अवसर मिलता विवान इसे अलग करके अकेले में देख लेता। इस तरह अलग करके हर बार विवान देखता था कि उसकी परछाईं उससे ज़्यादा बड़ी है, जैसी पहली रात थी।

इन सत्रह सालों में विवान कभी घर नहीं आया। घर ही उसके पास कभी-कभी आ जाता था। वह घर वैसा ही होता था जैसा वह अँगूठी में देखता था। वह उसी तरह आता था जिस तरह अँगूठी में आता था। विवान इन सालों में केवल माँ को ही कुछ पंक्तियों का पत्र लिखता रहा था जिसमें वह सिर्फ़ इतना बताता था कि आज उसने उसे देखा, यह भी कि वह ठीक है और जल्दी ही मिलने आएगा। यह पत्र माँ को हमेशा कमरे में बन्द दरवाज़े के नीचे की झिर्री से सरकता हुआ मिलता था। माँ के मरने की ख़बर भी विवान को इन्हीं सालों में मिली। बाद में यह ख़बर भी कि घर और कारखाना बेचकर विन्सेंट मौसी के साथ हमेशा के लिए इंग्लैंड चला गया। यह भी कि घर का सब सामान उसने वैसे ही बेच दिया है। मौसी अपने साथ अपने दोनों सन्दूक ले गयी थी।

इन सत्रह सालों में ही विवान उस साँवले जंगल को भी देखता रहा था जो उसके चारों तरफ़ के जंगल से अलग उसके अन्दर रहता था। जिस तरह विवान अपनी परछाईं को दूसरी परछाइयों से अलग पहचान लेता था, उसी तरह उस जंगल को भी चारों ओर फैले जंगल से अलग पहचानता था। उसमें अभी तक गन्ध थी, ऊष्मा थी, फुसफुसाहट थी, आँखों का तरल जादू था।

इन सत्रह सालों में विवान के अन्दर कोई भी स्मृति न तो बुझी, न तिरोहित हुई। वे विवान के अन्दर हमेशा आलोकित रहीं, अनश्वर रहीं, अलबत्ता उनकी आवृत्ति कम हो गयी थी। वे विवान के अन्दर अब देर तक नहीं रहती थीं। वे छोटे-छोटे स्फुलिगों की तरह अचानक किसी क्षण चमकतीं और बुझ जातीं। नयी स्मृतियाँ भी बनी थीं। विवान को जिनकी आदत थी, जिनको वह अपनी हथेली की रेखाओं की तरह पहचानता था, जिनके साथ वह बड़ा हुआ था, इन सत्रह सालों में वे कम आती थीं। अब जो नयी स्मृतियों की तरह आती थीं, वे विवान के अन्दर कभी नहीं कौंधा हुआ कोई क्षण होता था, अनुभव की कोई ऐसी तरंग होती थी, जिसमें से विवान पूरी बेख़्याली से गुज़र गया होता था, पर जब वह अचानक अनायास कौंधता था, तब विवान उसे पहचान लेता था कि यह उसका ही वह जीवन है जिसे वह भूल गया था। विवान के अन्दर ये क्षण अनियन्त्रित वेग के साथ अनाहूत तरीक़े से चले आते थे। विवान ने इनके लिए कोई अवरोध पैदा करना छोड़ दिया था। इन क्षणों से ही विवान ने यह सीख लिया था कि जीवन में बहुत कुछ ऐसा आता है जिसे लौटाना अक्सर सम्भव नहीं होता। इन क्षणों में जीवन के सूक्ष्मतम रेशे भी होते थे। अन्धकार से धीरे-धीरे प्रकाश में प्रवेश करता एक विकलाँग, अर्थी से गिरा फूल उठाकर भागता बच्चा, धूप में कूबड़ खुजलाता आदमी, धूल में पंख टूटा हुआ कीड़ा, माँ का सफ़ेद बाल, गुल्लू के बाथरूम के कैलेंडर की लड़की के स्तन का तिल। ये क्षण विवान की पुरानी स्मृतियों की तरह नाख़ून गड़ाकर विवान के अन्दर धँसे हुए नहीं थे, पर विवान के जीवन में थे।

इन सत्रह सालों में ही स्मृति से जन्म न लेकर एक नयी और अलग तरह की जिजीविषा विकसित हुई थी। यह प्रत्यक्ष थी क्योंकि मृत्यु भी इन सालों में प्रत्यक्ष थी, तत्काल थी। चीते की तरह घात लगाए मृत्यु से हर क्षण भागना था। इन सालों में विवान ने मृत्यु के बहुत रूप देखे थे। वह मृत्यु के प्रति धीरे-धीरे संवेदनहीन हो गया था। उसने जंगल के दलदल में फँसे छटपटाते हिरन को देखा था, उस हिरन की तरफ़ दलदल में ही धीरे-धीरे बढ़ते हुए बाघ को देखा था। बाघ को आता देख हिरन भय से, आतंक से काँपता था तो दलदल उसे और खींचती थीं। शान्त रहता, तो बाघ की गर्म साँसें पास आ रही थीं। एक देह थी, दो मृत्यु थीं। इन सालों में ही विवान को बहुत बार लगा था कि वह भी किसी ऐसे बाघ में बदल गया है और उसे इस तरह बदलने का पता ही नहीं चला। इन सत्रह सालों में उसने उस हिरन जैसी भय से फटी आँखें बहुत बार देखीं थीं जिन्हें अस्वीकार करके वह यहाँ आया था। अब वह स्वयं इन आँखों को जन्म देता था। मौत की सजा पाने के बाद, अपनी क़ब्र खोदते हुए किसी विश्वासघाती की या फिर कनपटी से सटी नलीवाले शत्रु की आँखें वैसी ही होती थीं। ये आँखें गोया के चित्र की तरह मरते हुए आदमी की होती

थीं, गुएर्निका की होती थीं, इतिहास की असंख्य दरारों से झाँकते हुए लोगों की होती थीं।

इन सत्रह सालों में विवान ने बहुत-सी हत्याएँ कीं। वे शत्रुओं की थीं, विश्वासघातियों की थीं, साथ छोड़नेवालों की थीं। विवान ने इन्हीं सालों में रेडियो से गुप्त सन्देश दिये, कुछ इंटरव्यू दिये, अपनी नीतियों, संघर्ष और सफलताओं को पर्चों में बँटवाया। विवान के पोस्टर बहुत-सी दीवारों पर लगे, जिनमें उसके सर पर इनाम था। इन पोस्टरों में विवान की जो शक्ल थी विवान ने उसे नहीं देखा था। टोपी, जैकेट, जूते और दाढ़ी। लोग बताते रहे कि यह तुम हो, विवान मानता रहा कि वह यही है।

इन सत्रह सालों में विवान ने तीन लड़कियों से देह संसर्ग किया। पहली लड़की एक दक्षिण भारतीय नर्स थी। बुख़ार से तपते हुए विवान को एक गाँव के जर्जर, खाली सरकारी अस्पताल में उसके दो साथी ले गये थे। तेज़ बारिश की रात थी। वीरान अस्पताल का डॉक्टर अपनी फ़सल का हिसाब लेने गाँव गया था। एक नर्स थी जो साथ में बने एक कमरे के क्वार्टर में रहती थी। अस्पताल में विवान को उसी ने देखा था। उसने कुछ दवाएँ लिखी थीं। एक लड़का पास के बड़े क़स्बे में दवाएँ लेने गया था। दूसरा विवान के कमरे के बाहर बैठा था। रात-भर विवान अस्पताल के एक खाली कमरे में, जो गोदाम की तरह भी इस्तेमाल होता था, रुका था। रात से, बारिश से, अपने अकेलेपन से और विवान के साथियों से डरी हुई नर्स ने विवान को दवाएँ दीं और रात भर उसके माथे पर गीली पट्टियाँ रखीं। माथे पर गीली पट्टी रखने और हटाने के क्रम में वह झुकती तो उसकी छातियाँ विवान के सीने से दबती थीं। नींद, बेहोशी और तपती देह में भी विवान इसे महसूस कर रहा था। दवाओं के असर से कुछ देर बाद वह चैतन्य हुआ तब उसने उस अँधेरे में, गहरे काले रंग की चमकदार आँखोंवाली दुबली-पतली नर्स को देखा, जो केरल के किसी सुदूर गाँव से आकर इस गाँव के निर्जन अस्पताल की पुरानी इमारत में, उसके माथे पर पट्टियाँ रख रही थीं। कमरे के कोने की टपकती हुई छत, खिड़की के बाहर तेज़ बारिश में टूटते नींबू के फूल, फ़र्श भिगोती बौछारें, गन्ध, रोशनी के गुच्छे, एकान्त में स्त्री देह, बुख़ार की तपन और उसकी मुलायम छातियों की हल्की-हल्की सुलगती उत्तेजना में, विवान ने उसकी उँगलियाँ अपनी उँगलियों में फँसाकर उसे खींचा तो वह विवान के सीने पर सर रखकर लेट गयी।

दूसरी बार विवान पुलिस के मुख़बिर को, जो उनका सामान पूर्ति करने वाला मुख्य व्यक्ति था, गोली मारने गया था। मोटर साइकिल पर उसके साथ एक लड़का था। रात में, मुख़बिर को उस लड़के के साथ बहाने से मोटरसाइकिल पर बाहर भेजकर, विवान उसके घर रुक गया था। उसकी लड़की खाना बना रही थी। वह

विवान को पहचानती थी। डरी हुई, झोंपड़े के कोने में चूल्हे की आँच में साफ़ खुले रंग पर चमकते पसीने की बूँदों को पोंछती हुई, खाना बनाते-बनाते बीच में वह खाट पर बैठे विवान को देख लेती थी। लड़की जब खाना लेकर आयी और विवान को देने के लिए झुकी, तब विवान ने उसके ढीले कपड़े के अन्दर दो नन्हें चाँद देखे। वे सुडौल, गोल और बहुत पास थे। विवान उन्हें पकड़ सकता था। खाट पर थाली रखकर विवान ने उस लड़की को खींचा था। डर से काँपती हुई लड़की, जिसका पिता कुछ देर पहले गाँव की सीमा के बाहर गोली से मारकर कीचड़ में फेंक दिया गया था, खाट पर चुपचाप लेट गयी थी। विवान बाद में जीवन-भर उसे अपने द्वारा किये गये बलात्कार की तरह मानता रहा था।

तीसरी लड़की एक पत्रकार थी जो विवान के साथ जंगल में चार दिन रही थी। उसकी दिनचर्या के बारे में लिखती, तस्वीरें खींचती, उसकी नीतियों पर, काम के तरीक़े पर उससे गम्भीर बहस करती। उसका इंटरव्यू लेती, विवान की कविताएँ सुनती। दो दिन बाद, दो रात वह विवान के साथ स्वेच्छा से सोयी थी।

सत्रह सालों के ये तीन सम्बन्ध विवान की स्मृतियों में उस तरह कभी नहीं रहे जिस तरह गुल्लू की बीबी, साँवले जंगल की तरह उसके अन्दर, उसकी स्मृतियों में हमेशा रहती थी।

इन सत्रह सालों में विवान सात बार सीमा पार गया। दूसरे देशों के सक्रिय दलों से मिला। उनके साथ हथियारों के सौदे किये। इन सालों में ही बाबू और विवान के बीच बहुत-सी बहसें होती रहीं। इन बहसों में सोनिया भी होती थी जो अब थकने लगी थी। बातों में वह कभी पश्चात्ताप भी करने लगी थी कि नासा में वैज्ञानिक बनती तो शायद मनुष्य के अधिक काम आती। इन बहसों में बाबू का स्वर धीरे-धीरे बदलता हुआ इस तरह का हो गया था कि सत्ता में हिस्सेदारी करके ही व्यवस्था को बदला जा सकता है। वह लोकतन्त्रीय प्रक्रिया में उतरकर सत्ता में भागीदारी की बात सोचने लगा था। वैधानिक रूप से चुनी हुई सरकारों से संघर्ष करते हुए, उसे परास्त करने की नीति बाबू को ग़लत लगने लगी थी। वीवा का हिंसक और आतंक पैदा करनेवाला चेहरा अब बाबू से बड़ा हो गया था। दूसरे समूहों और दूसरे क्षेत्रों में वीवा के प्रभाव में अधिक गुरिल्ले थे। बाबू वीवा के इस चेहरे से संगठन की मुक्ति चाहने लगा था। उसने कई बार सारे समूहों की बैठक में इस बात को रखा था कि उन्हें एक नया दल बनाकर लोकतन्त्रीय प्रक्रिया के माध्यम से सत्ता लेनी चाहिए। यह आसान और लक्ष्य तक जल्दी पहुँचानेवाला मार्ग था। वीवा की छवि इसमें अब बड़ी बाधा थी। वह यह चाहने लगा था कि विवान उससे अलग दिखे। इन सत्रह सालों के आख़िरी पाँच सालों में विवान का कार्यक्षेत्र बाबू से बिल्कुल अलग हो गया था। बाबू ने उसे दूर के सीमान्त क्षेत्रों में नये लोगों के साथ

नया दल बनाने का दायित्व दिया था। वर्चस्व और नियन्त्रणवाले पुराने क्षेत्रों पर बाबू का ही अधिकार था। इन सालों के अन्त तक विवान बाबू से अलग और दूर हो गया था। ज़मीन से भी और विचारों से भी। प्रत्यक्ष रूप से बहुत साफ़ न दिखनेवाले इस विभाजन में वीवा अपने आपमें एक शक्ति केन्द्र बन गया था। बाबू दूसरा शक्ति केन्द्र था। दोनों के बीच बहुत से जंगल थे, पहाड़ थे, वैचारिक भिन्नताएँ थीं। भिन्न छवियाँ थीं, अलग लक्ष्य थे। उन तक पहुँचने के अलग मार्ग थे।

इन सत्रह सालों में विवान को एक बार भी पता नहीं चला कि उसे रक्त में आनन्द आने लगा था। वह कुछ दिनों के अन्तराल में किसी-न-किसी बहाने से, किसी व्यक्ति की हत्या करता था। अदालत लगाकर किसी विश्वासघाती की या घात लगाकर शत्रु की। इन हत्याओं को वह अतिरिक्त क्रूरता के साथ करता था। विश्वासघाती से अपनी क़ब्र वह खुद खुदवाता था। शत्रु अपने को खुद गोली मारता था और उसे इस सीमा के मानसिक उद्वेलन तक पहुँचाने के लिए वीवा उसके अन्दर के भय से खेलता था। उसे धीरे-धीरे बड़ा करता रहता था। अपनी मुद्राओं से, बातों से, अपने संकेतों से, अपनी छवि से। क्रान्ति विरोधी शोषक को उसके परिवार के सामने ही गोली मारता था। विवान रक्त की अपनी इस प्यास को बहुत कुशलता के साथ, अपने लक्ष्य की पवित्रता और रणनीति की आवश्यकता से ढकता रहता था। अपने उच्चतम आदर्शों की प्राप्ति या मनुष्यों की मुक्ति का एकमात्र मार्ग मानता था। उन्हीं सालों में वीवा ने एक विख्यात इंटरव्यू दिया था जिसमें एक अख़बार का प्रतिनिधि अपने फोटोग्राफर के साथ तीन दिन वीवा के साथ घूमा था। उसने वीवा की दिनचर्या, उसके वक्तव्य, और अनेक चित्र छापे थे। इन चित्रों से ही वीवा अपनी दिखनेवाली एकाग्रता, निष्ठा, संयम, दृढ़ता और जबड़ों के कठोर कसाव के लिए मशहूर हुआ था। इन चित्रों में वीवा श्रेष्ठतम गुरिल्ला दिखता था। वीवा के वाक्य उद्धरणों की तरह छपे थे।

'महान उद्देश्यों के लिए चूहों की बलि ज़रूरी है।'

'रक्त की आवाज़ तत्काल नहीं सुनायी देती।'

'रोशनी में खड़े होकर शीशे को मत देखो।'

'आग से जब बर्तन उतार लो तो आग का कोई निशान नहीं रहना चाहिए। उसे राख के साथ मिला दो।'

इन सत्रह सालों में वीवा गुरिल्लों की उच्चतम समिति का महत्त्वपूर्ण सदस्य बना था। उसमें बाबू के अलावा तीन लोग और थे। इनके संयुक्त निर्णयों से ही सारी रणनीतियाँ तय होती थीं। इसी समिति में तय हुआ था कि सत्ता के लिए लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में शामिल हुआ जाये। वीवा ने अपनी असहमति जतायी थी। उन लोगों ने भी तब यह मान लिया था कि वीवा वस्तुत: लक्ष्य से भटककर एक हत्यारे में

तब्दील हो चुका है जो ऐसे संघर्षों की सबसे सामान्य परिणति होती है। राजनैतिक प्रभुत्व अब उसका उद्देश्य नहीं है। सम्पूर्ण परिवर्तन लक्ष्य नहीं है। बल्कि अधिनायकवादी, निरंकुशता उसका स्वभाव बन गयी है और वह उनके इस पवित्र युद्ध के लिए अप्रासंगिक होकर, एक ख़तरा बनता जा रहा है। वीवा को उन सबके चेहरों पर थकान और सत्ता की काली लिप्सा दिखी थी। समिति के निर्णय में बाबू की मुख्य भूमिका थी। समिति में निर्णय लिया गया कि सीमा से सटे बिल्कुल नये क्षेत्र में वीवा को संगठन का काम दिया जाये। वीवा ने सत्रह साल पहले भी शुरुआत यहीं से की थी। वीवा स्वेच्छा से तैयार हो गया। वह अपने तीन साथियों के साथ नये क्षेत्र में सक्रिय हुआ था। कुछ महीनों बाद ही वीवा मुठभेड़ में पकड़ा गया। वीवा को पकड़नेवाले पुलिस अधिकारी ने वीवा को बताया था कि उसे वीवा की सूचना बाबू के सूत्रों से मिली थी। उसने तभी वीवा की वह तीसरी तस्वीर खींची थी जिसमें वीवा पूरी तरह परास्त, शिथिल, भयभीत और खंडित था। एक टूटी झोपड़ी, मिट्टीवाले फ़र्श पर वीवा को दो दिन ज़ंजीरें बाँधकर रखा गया था। वीवा ने अफसर से गोली मारने की याचना की थी। उसने यह नहीं किया। वीवा को जेल भेज दिया गया था।

वीवा के उन सत्रह वर्षों का वह आख़िरी दिन था और विवान डगलस के जीवन का वह पहला दिन, जब उसे जीवन में पहली बार परित्यक्त ईश्वर की नहीं, सृष्टा और नियन्त्रक ईश्वर की प्रतीति हुई थी।

ईश्वर अनायास नहीं आया था। विराट और घनीभूत होते हुए एकान्त से होकर आया था।

जेल एक पुरानी विशाल इमारत के अन्दर था। शहर में जब पहला चर्च बना, जब शहर की बदनाम, बारीक कणों की लू, शाम तक आसमान में उड़ा करती थी, तब गंगा के इस घाट पर व्यापार करनेवाली नावों के परमिट बनते थे। खपरैल की छतोंवाले चार छोटे कमरों का सरकारी दफ़्तर था। उन कमरों में ही रसीद कटती, पैसे जमा होते। जब्त माल भी रखा जाता और कभी-कभी आदमी भी बन्द कर दिये जाते। इन चार कमरों में अक्सर खजाना कई हज़ार रुपयों तक पहुँच जाता। इसलिए एक छोटी तोप के साथ दो सिपाही भी हमेशा तैनात रहते। धीरे-धीरे यह शहर की अस्थायी जेल, अस्थायी मालखाना, हथियारों का अस्थायी गोदाम बन गया। बाद में जब शहर में तीन चर्च और बने, एक घंटाघर बना और धूल भरी गलियों की जगह ठंडी सड़क, नहर और नाचघर बने, तब बागियों ने गदर में इस इमारत का खज़ाना लूटकर क़ैदी छुड़ाये। हथियारों को कब्जे में ले लिया। इमारत के काग़ज़ात में आग

लगा दी। इमारत की छत उस समय ढह गयी और दीवारों के आर-पार दिखायी देनेवाली दरारें पड़ गयीं। अँग्रेज़ों ने शहर पर जब दुबारा कब्ज़ा किया, तब गंगा-किनारे के इस परमिट दफ़्तर को जेल में बदल दिया गया। वहाँ कई महीनों तक मुकदमे चलते रहे, गवाहियाँ होती रहीं, सजायें हुईं। धीरे-धीरे समय और ज़रूरत के हिसाब से जेल बड़ी और उसकी चहारदीवारी ऊँची होती गयी। वहाँ फिर आसपास के जिलों के क़ैदी भी लाये जाने लगे। यह जेल एक खूँखार, डरावनी और बदनाम जेल में बदल गयी जिसके खौफनाक किस्से, हस्बेमामूल शहर की गलियों, चबूतरों, पनवाड़ियों और चाय के अड्डों पर डरावनी रातों में घूमने लगे। इनमें क़ैदी, जेल के फाँसी देनेवाले जल्लाद, उसके दरोगा,जेल में सामान लेकर क़ैदियों से मिलनेवाले लोग, जेल की रसोई का खाना, घूस, हथियारों और क़ैदियों की बदफ़ैली के क़िस्से होते। जेल से शहर और शहर से जेल पहचाना ज़ाने लगा। सजा मिलने के बाद विवान डगलस को इसी जेल में लाया गया था।

झोपड़ी में दो दिन रखने के बाद विवान को जब हथकड़ी, बेड़ियाँ लगाकर गाड़ी पर बैठाया गया, तब उसने मृत्यु को देख लिया था। उसके अन्दर एक गहरी थकान थी बस। वह इस मृत्यु से मुक्ति नहीं चाहता था। जीने की लालसा भी नहीं थी। वह दोनों के सन्धिस्थल पर था, जो भी अपनी तरफ़ खींच लें। हमेशा की तरह विवान ने अपने को छोड़ दिया था। जो उस तक आ रहा है, उसे स्वीकार है। उसके लिए कोई प्रतिरोध नहीं था।

गाड़ी से जेल के दरवाज़े के अन्दर प्रवेश करते समय विवान ने छोटी-सी जालीदार खिड़की से बाहर देखा था। ख़त्म होती रात के झुटपुटे में सामने किसी मिल की ऊँची चहारदीवारी थी। उसके सामने एक छोटे-से तम्बू के अन्दर लोग बैठे थे। तम्बू पर लाल झंडा लगा था। कुछ पोस्टर लटके थे। उसके सामने की सड़क को बाँटनेवाले पत्थर पर एक मूर्ति का धड़ था जिस पर बल्ब लटके थे। विवान ने दरवाज़े पर रुकी गाड़ी से उसे पढ़ लिया था। वह हैनीमैन की मूर्ति थी। उसके नीचे, उसी पत्थर पर, काले कपड़ों में लिपटी एक और तस्बीह के दानों पर उँगलियाँ चला रही थी। उसके पास ही दो लड़कियाँ रस्सी कूद रही थीं।

कचहरी, थाने और दूसरी कई अस्थायी जगहों से होते हुए विवान को अन्ततः इस जेल में लाया गया था। विवान की गाड़ी जब जेल के अन्दर गयी और पीछे दरवाज़ा बन्द हुआ, तब विवान ने समझ लिया कि उसका एक जीवन पूरा हुआ। एक पटाक्षेप हुआ। अब एक नया रंगमंच था, नया बैकड्राप था, नया जीवन था।

विवान को दूसरी मंज़िल पर एक अकेली कोठरी दी गयी। विवान के कमरे के बाहर गलियारा था। उसे मोटे सीखचों से बन्द किया गया था। कोठरी से बाहर आते और उसमें जाते समय, विवान को गलियारे से कुछ देर के लिए थोड़ा बड़ा

आकाश, थोड़ी बड़ी धरती, और कुछ इनसान दिख जाते थे। गलियारे से एक ओर दूर गंगा का तट दिखता था। उस तट पर बने मन्दिरों के घंटे सुनाई देते थे। उस पर उड़ती चिड़ियों का झुंड दिख जाता था। विवान की कोठरी की सलाखों से गलियारे की सलाखों का एक छोटा हिस्सा दिखता रहता था। अपनी कोठरी की सलाखों से, इन सलाखों को देखते हुए, विवान जब चाहता, आँख बन्द करके इस दृश्य को देख सकता था।

विवान के पास अब सिर्फ़ स्मृतियाँ थीं। विवान हैरान था कि इन स्मृतियों में रिमाडी के जंगलों की कोई स्मृति नहीं थी। बाबू की, सोनिया की, विवान के जिए हुए सत्रह वर्षों की भी कोई स्मृति नहीं थी। जो स्मृतियाँ थीं, वे वही थीं जो जंगल में जाने से पहले विवान के अन्दर रहती थीं।

तीन साल विवान कोठरी में अकेला रहा। उसके साथ कोठरी में वह सब था जो उसे नष्ट करने के लिए होना चाहिए था। अनन्त एकान्त, ऊब, प्रतीक्षाविहीन आनेवाला क्षण, निरुद्देश्यता और धीरे-धीरे शिथिल पड़ता दैहिक संज्ञान। इन स्मृतियों ने ही विवान की जिजीविषा को जीवित रखा। माँ ने, परित्यक्त ईश्वन ने, साँवले जंगल ने, ग़ालिब ने, अँगूठी ने, सत्यनारायण की लड़की ने रखा। उस कोठरी की सलाखों से सर टिकाकर विवान ने कई बार सोचा कि वह छूट जाये, उसे जाने भी दिया जाये, तो वह कहाँ जाएगा? उसके पास कोई जगह नहीं थी।

तीन साल बाद उसकी कोठरी का दरवाज़ा खुला था। उस कमरे में एक बूढ़ा आया था। उसके चेहरे पर सफ़ेद दाढ़ी थी। सलवटों से खाली चौड़ा माथा था। थोड़ी-सी झुकी कमर थी और गहरी काली आँखें थीं। उसकी हथेलियाँ और पंजे छोटे और मुलायम थे। वे इतने साफ़ और चिकने थे जैसे उसने पहली बार उन्हें फ़र्श पर रखा हो। उसके चेहरे की झुर्रियाँ भी गुलाबी थीं। उसके चेहरे पर विलक्षण कान्ति थी। निर्मलता थी, आनन्द था। वह अपने साथ कई चीज़ें लाया था। इनमें चश्मा था, किताबें थीं, काग़ज़ थे, कलम थी और विवान के लिए ईश्वर भी था।

विवान को देखकर वह मुस्कराया था। दया और ममता की मुस्कराहट। उसने बहुत दिनों तक विवान से कोई बात नहीं की। विवान के जेल से छूटने के बारह सालों तक, उसने टुकड़ों में विवान से बहुत बातें की थीं। एक मौसम से दूसरे मौसम तक, चाँदनी में, धूप में, बारिश में की हुई बातें थीं। इन बातों में बहुत-से दुख थे, स्वप्न थे, राग थे, विराग थे। इन बातों के टुकड़ों में ही उसने विवान को फ़ारसी, अरबी और ईश्वर की लिपि पढ़ना सिखाया था।

वह रोज़ सुबह उठता। घुटने मोड़कर, आँख बन्द करके कुछ देर बैठा रहता फिर धीरे-से पहला वाक्य बोलता, ''मैं सज गया, अब तुम नाचो।'' रात को लौटने से पहले वह फिर उसी तरह घुटने मोड़कर, आँख बन्द करके कुछ देर बैठता फिर

वही बात कहता, "मैं सज गया, अब तुम नाचो।"

उसे किस बात की सजा हुई थी, उसने नहीं बताया। विवान को किस बात के लिए जेल में बन्द किया गया, उसने नहीं पूछा। उससे थोड़े-थोड़े दिनों बाद कोई मिलने आता था। पर वह उससे नहीं मिलता था। जो आता था वह अपने साथ कुछ चीज़ें लाता था, जिन्हें वह रख लेता था। वे अक्सर बेहद मामूली चीज़ें होती थीं। किसी पत्थर का छोटा टुकड़ा, कोई फटी तस्वीर या पंख या घुँघरु का दाना। उसे जो भी मिलता वह अपने सिरहाने जमा करता रहता। वह सब जो उसके पास आता था, किसी-न-किसी का दुख होता था। शोक का चिह्न, क्षण या भावनाएँ होती थीं। जो चीज़ें उसके पास आती थीं वे चमकती हुई, नाचती हुई, रंगों से भरी नहीं होती थीं। जो उससे मिलने आता था वह एक था या कई थे, विवान नहीं जानता था। पर वह जो भी था या जो भी थे, वह उन सबके दुख, जो उनकी लायी हुई चीज़ों में होते थे, अपने सिरहाने रख लेता था। वह कोठरी उन चीज़ों से भरने लगी। कोठरी छोटी पड़ने लगी। विवान को विश्वास था कि किसी भी दिन पुलिसवाले यह सब उठाकर बाहर फेंक देंगे। पर वे सब भी शायद अकेले में उसे चुपचाप अपने दुख दे जाते थे। बहुत बार विवान का मन हुआ कि वह उसे देखे जो उससे मिलने आता था, यह सब लाता था। पर विवान उसे नहीं पहचानता था। वह भी विवान को नहीं पहचानता था। विवान को उसके आने से अधिक उत्सुकता इस बात की रहती कि वह अपने साथ क्या लाएगा? कभी जली हुई मोमबत्ती का टुकड़ा, कभी किसी डिबिया में राख। चाँदनी जिन दिनों विवान की कोठरी में कुछ क्षणों के लिए आती और उसके सिरहाने रखी चीज़ें उसमें चमकने लगतीं, तब उसके चारों तरफ़ एक जादुई दुनिया खिंच जाती, जिसमें बिल्कुल असम्पृक्त होकर, वह आँख बन्द करके सोया रहता। उन चमकती चीज़ों से भी अधिक चमकता हुआ। तब वह इस धरती का नहीं होता था। इस पार्थिव भ्रूण का नहीं होता था। स्वयं से इतर वह परात्पर होता था। किसी द्युमान लोक का, जहाँ सब कुछ अलौकिक था। उस चाँदनी के जर्जर आलोक में उससे अधिक चमकता हुआ।

वह जब भी, जो भी बोलता, उसके पीछे गहरी करुणा, विषाद और कविता होती। जीवन का सूक्ष्मतम, कोमलतम अनुभव होता। उसमें निरीह कातर ध्वनियाँ होतीं। यह सब शायद वह अपने सिरहाने की चीज़ों से इकट्ठा करता रहता था।

ईश्वर को वह पहले दिन ही अपने साथ लाया था। उस रात सोते समय उसने वही वाक्य बोला, जो हमेशा बोलता था। सुबह जब विवान ने उसे दूसरी बार वही वाक्य बोलते हुए सुना तब विवान को समझ में आया कि रात में उसने जो कहा था, वह अन्त था। इन दो वाक्यों के बीच प्रत्यक्षत: कुछ नहीं था। न कोई नर्तन था, न गति थी। इनके बीच जेल की दिनचर्या थी। टोकरियाँ बनाना, खाना देना, कपड़े

धोना था। रात को जब वह अपना अन्तिम वाक्य बोलता, तो लगता जैसे पूरा दिन उसके अन्दर कोई नाचता रहा है। यह कौन था? वह किससे नाचने के लिए कहता था, विवान नहीं समझ पाया था। वह कैसे सज जाता था विवान नहीं जानता था।

कई बार अचानक नींद में उठकर विवान ने देखा कि उसकी जगह खाली है। वह नहीं था। वह बाहर कहीं नहीं जा सकता था क्योंकि दरवाज़ा बाहर से बन्द रहता था। उसके सिरहाने की चीज़ें रखी रहती थीं पर वह नहीं होता था। क्या वह सलाखों से बाहर जा सकता है जैसे चिड़िया, जैसे छोड़ी हुई साँस, जैसे स्मृतियाँ? विवान को कई बार लगा था कि जेल में सब कुछ उसके नियन्त्रण में है। सब उसका सम्मान करते हैं। उसके अनुचर हैं। हो सकता है कोई ताला खोल देता हो या बन्द ही न करता हो। विवान हर बार बैठा रहा कि वह उसे आते हुए देखेगा। पर हर बार विवान जाग नहीं पाता। सो जाता। जब उठता, तो वह अपनी जगह पर सोया हुआ मिलता। विवान को तब लगता कि उसका न होना विवान ने नींद में देखा था, स्वप्न की तरह। वह स्वप्न ही इतना साक्षात था कि जागृति लगता था।

उसके कोठरी में आने के बाद विवान के अन्दर बहुत कुछ बदल गया था। वह सब अपने आप बदलता रहा था। विवान ने उसके लिए कोई कोशिश नहीं की थी। उसे बदलते हुए रोका भी नहीं था। कोई प्रतिरोध नहीं किया था। स्मृतियाँ, स्वप्न, ईश्वर, अनजान लोगों का छोटे-छोटे दुखों के साथ आना, उनके बीच गहरी निसंगता, करुणा, विषाद और अन्दर किसी के नाचने की प्रार्थना। यह सब विवान उससे सीखता रहा।

इन सबके बीच विवान के अन्दर जो पूरी तरह लुप्त हो गया, वह वीवा का जीवन था। विवान को लगता था कि वह न भी आता, तब भी यह परिवर्तन होता। तब शायद गहन, विराट और निरन्तर रहनेवाले एकान्त से होता। पर उसने ऐसा नहीं किया था। उसने विवान के अन्दर के एकान्त को नहीं, उसमें रहनेवाले जगत को आलोकित किया था। उसे आलोकित करने के लिए इन बारह सालों में उसने विवान को अपनी करुणा, शान्ति, निसंगता दे दी थी। अपने अन्दर के ईश्वर का नर्तन दे दिया था। वे सब छोटी-छोटी चीज़ें, जो वह अपने सिरहाने जमा करता था, वे सब दे दी थीं। बाद में विवान भी इन्हीं चीज़ों को सिरहाने रखकर सोने लगा था।

विवान जब जेल से बाहर निकलने लगा, तो वह विवान को छोड़ने दरवाज़े तक आया। उसने अपनी करुणामयी, उदास आँखों से विवान को विदाई दी थी, फिर अन्दर चला गया था। किसी दूसरे क़ैदी के साथ रहने के लिए।

मुंशी खाना ले आया था। विवान डगलस ने जब पलँग से उसे देखा तो वह हाथ में

थाली लिये दिखा था। उसे लगा शायद मुंशी बहुत देर से खड़ा था। विवान को उठता देखकर मुंशी ने थाली मेज पर रख दी। विवान पलँग से उतर गया। रसोई के नल पर उसने हाथ धोए फिर कुर्सी पर बैठ गया। थाली में सुबह का बना हुआ करेला, प्याज,रोटी और दो उबले आलू थे।

"उसने खाया?" विवान ने पूछा।

"किसने?"

"बिल्ली ने?"

"हाँ, मैं समझा आप लड़की के बारे में पूछ रहे हैं।"

विवान ने सोचा कि उसे लड़की के बारे में पहले पूछना चाहिए था। मुंशी शायद चाहता था कि विवान उससे लड़की के बारे में बातें करें।

"और उसने?"

"नहीं, वह इन दिनों कहाँ खाती है। जबरदस्ती खिलाओ तो बाहर निकाल देती है, शायद कल जब अँगूठी पहन ले, खा ले। क्या आप भी चलेंगे?"

"चल तो रहा हूँ।"

"नहीं, तान्त्रिक के पास।"

"क्या मुझे जाना चाहिए? हो सकता है वह न चाहता हो कि कोई दूसरा तुम्हारे साथ हो।"

मुंशी कुछ देर सोचता रहा।

"आप ठीक कहते हैं। आप नदी से ही लौट जाइएगा।"

विवान खा रहा था। मुंशी खड़ा था। मुंशी इसलिए खड़ा था कि विवान खाना ख़त्म कर ले तो वह थाली ले जाये। मुंशी ने खड़े-खड़े पलँग के बाहर निकले हुए विवान के जूते देखे।

"आपके पास जूते हैं?"

"हाँ।"

"मैंने आपको पहले कभी पहने हुए नहीं देखा, मैं सोचता था नहीं हैं।"

"मैं भी भूल गया था। पर नदी सूखी है। बिना जूते के वहाँ तक जाने में पैर फँसेंगे...तुम? तुम्हारे पास हैं?" विवान ने मुंशी को देखा।

"मेरे पास हैं... हम कब चलेंगे।" मुंशी ने पूछा।

"रात ज़्यादा हो चुकी है। हमें चलना चाहिए। अगर पैर फँसेंगे तो देर होगी। हो सकता है लोग जाग जाएँ।" विवान ने खाना ख़त्म कर दिया। मुंशी ने थाली उठा ली।

"मैं भी खाकर तैयार हो लेता हूँ, जूते पहन लेता हूँ। थैले में औजार भी रख लूँगा। और कुछ तो नहीं लेना होगा?"

''शायद नहीं।''

''पर आप दवा ले लें। साँस नली की सूजन बढ़ी तो खाँसी आ सकती है।''

विवान उठ गया।

''ले लूँगा। तुम जब तैयार हो जाओ तो मुझे आवाज़ देना, मैं नीचे आ जाऊँगा।'' मुंशी ने सर हिलाया और सीढ़ियों से उतर गया।

विवान ने रसोई के नल पर हाथ धोए। मुँह धोया। हवा अब ठंडी हो गयी थी। पतझड़ की हवाएँ रात को अचानक ठंडी हो जाती थी। मुंशी ने ठीक कहा था। सूजन बढ़ने से खाँसी आती है। चौर्यशास्त्र में लिखा है कि खाँसी चोर की सबसे बड़ी शत्रु है। विवान ने अलमारी खोली। कोने में रखे कत्थई रंग के मफलर को गले में लपेट लिया। चूसनेवाली एक गोली मुँह में दबा ली। दो जेब में रख लीं। एक पुरानी ऊनी सदरी भी पहन ली। वापस पलँग पर बैठकर जूते पहने। वह अब तैयार था। मुंशी की आवाज़ जब भी आये। वह नीचे उतर सकता था।

मुंशी की आवाज़ ही थी। ओस के गिरने की, चिड़िया की, पत्तियों के टूटने की नहीं थी। मुंशी गला दबाकर फुसफुसाता हुआ आवाज़ निकाल रहा था। उसमें शब्द नहीं थे। उत्तेजना से वह सिर्फ़ साँप की हिस-हिस की तरह फुफकार रहा था। विवान ने पलँग से उठकर देखा। मुंशी सीढ़ी के नीचे खड़ा था। उसके कन्धे पर एक झोला लटका था। उसने भी कोट और जूते पहन लिये थे। विवान ने सीढ़ी की रस्सी पकड़ी और धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतर आया।

सीढ़ियाँ दरवाज़े से बाहर एक गली में आती थीं। गली एक छोटी सड़क में उतर जाती थी। छोटी सड़क, शहर की सबसे चौड़ी सड़क में ख़त्म होती थी। सबसे चौड़ी सड़क आगे जाकर नदी में मिलकर नदी बन जाती थी।

सीढ़ियों का अँधेरा गली में भी आया था। दोनों ओर घरों की बाहरी दीवारें थीं जो बदसूरत और बदरंग थीं। दीवारों के बाहर निकले टेढ़े-मेढ़े कोनों पर, खाली हो चुकी ईंटों की जगहों पर, पौधे उग आये थे। घरों का बहता हुआ पानी दीवारों के साथ या लोहे के पाइप से नीचे बनी नाली में गिरता था। पानी के लगातार एक ही जगह गिरने से दीवार उतने हिस्से में काली हो गयी थी। उस पर मोटी, चिकनी, काई जमी थी। नाली में कूड़ा भरा होने से पानी गली में भरता था। घरों की बाहरी दीवारों से कई रंग की रोशनियाँ गली में गिर रही थीं। इन रोशनियों की आकृतियों में भी छोटे जंगली पौधे थे जो अँधेरे के ऊपर बिखरे थे। इन रोशनियों के साथ कुछ गन्ध थीं जो उन रोशनियों के पौधों से पैदा होने का भ्रम देती थीं। रोशनी में ही कुछ आवाज़ें थीं, जो गली में थोड़ी दूर जाकर दम तोड़ देती थीं। वे जब ख़त्म होने लगती

थीं तो बाहरी दीवारों के साथ चिपककर गिरते हुए पानी में गुम हो जाती थीं। घरों से आती इन रोशनियों में, इन आवाज़ों में, इस गन्ध के साथ हमेशा थोड़ी-सी रात, थोड़ी-सी नींद होती थी। थोड़े-से सपने, थोड़ी-सी बेचैनियाँ, थोड़े दुख, थोड़ी-सी कराहें, थोड़ी प्रार्थनाएँ होती थीं।

"आपने पहले कभी चोरी की है?" मुंशी ने पूरी गोपनीयता दिखाते हुए गला दबाकर फुसफुसाहट के साथ विवान से पूछा। विवान कुछ नहीं बोला। मुंशी के जूते की एक एड़ी में अन्दर की तरफ़ रिज बन गयी थी जो उसकी एड़ी में चुभ रही थी। वह लँगड़ाकर चल रहा था। चलते हुए वह विवान से पीछे छूट जाता था। विवान रुकता था। मुंशी लँगड़ाता हुआ उसके पास आता था। विवान फिर चलने लगता था। विवान ने उसके सवाल पर कुछ कहना चाहा पर मुंशी तब तक पीछे छूट गया था। विवान खड़ा होकर उसका इन्तज़ार करने लगा। मुंशी तेज़ी से लँगड़ाता हुआ विवान के पास आया। तब तक वह भूल चुका था कि उसने विवान से कुछ पूछा था और विवान उसे कुछ बताना चाहता था।

गली छोटी सड़क में आयी। पुराना शहर इसी के चारों तरफ बसा था। इस सड़क पर सब कुछ पुराना था। घरों के बीच जटाएँ फुलाता बरगद था, पीपल की शाखाएँ थीं। छोटी छतों, छोटे दरवाज़ोंवाली पुरानी, छोटी-छोटी दुकानें थीं। इनमें लकड़े के पट्टे लगे दरवाज़े थे। इनके ऊपर घर थे। कुछ दुकानों के पट्टों की सूखी लकड़ी की दरारों से रोशनी बाहर गिर रही थी। इस रोशनी में भी गली की रोशनी की तरह गन्ध थी, आवाज़ें थीं, छायाएँ थीं। दुकान बन्द होने के बाद भी उनके अन्दर काम चलता रहता था। या तो घरों की औरतें, बच्चे नीचे जाकर बन्द दुकानों में छुपकर काम करते या फिर रात पाली के कारीगर। हथौड़ी से पीटकर चाँदी के वरक बनानेवाले, पतंग बनानेवाले, कढ़ाई के कुर्ते बनानेवाले, मन्दिरों के लिए सुबह की मालाएँ तैयार करनेवाले थे। इन दुकानों के ऊपर बने घरों में छज्जे थे। छज्जे सड़क से भी पुराने थे। इनमें ढले हुए, नक्काशीदार पत्थर लगे थे जो डेढ़ सौ साल पहले आधुनिक कलाकृतियाँ होते थे। छज्जों के ये बाहरी पत्थर, बेलों, काई, पेड़ों के पत्तों, और कबूतरों से ढके रहते थे। हर छज्जे पर घर का नाम लिखा था। छज्जों पर जालियाँ थीं, जालियों में धागे थे, धागों में गाँठें थीं। इन गाँठों में बहुत-सी मुरादें थीं जो डेढ़ सौ सालों से उनमें फँसी, बेचैन रूहों की तरह आज़ाद होने के लिए छटपटा रही थीं। रातों में ये मुरादें इन गाँठों से छूटने के लिए फड़फड़ाती रहती थीं जिनका शोर ऊपर आकाश तक जाता था। इन दुकानों के बाहरी पत्थरों पर थके हुए पल्लेदार, दिन भर बोझ ढोनेवाले, सोने की तैयारी कर रहे थे। पत्थरों के नीचे की नाली पर दिन भर के फेंके गये फलों के छिलके, खाने के टुकड़े और पत्तों के दोनों पर कुत्ते घूम रहे थे। फिर पीछे छूट गया मुंशी लँगड़ाकर दौड़ता हुआ विवान के पास आया।

''मुझसे तान्त्रिक ने पहले पूछा था कि क्या मेरी लड़की की अँगूठीवाली उँगली उसकी पहली उँगली से बड़ी है? मुझे पता नहीं था। उसने कहा कि जाकर देखो। ऐसा ही होगा। ऐसा हुआ तो नाव की कील की अँगूठी बनाकर उसी उँगली में पहनानी होगी, तभी वह ठीक होगी। मैं घर आया। मैंने देखा। लड़की की अँगूठीवाली उँगली पहली से बड़ी थी। इसीलिए कील की ज़रूरत पड़ रही है।'' विवान के साथ चलने की कोशिश में मुंशी हाँफने लगा।

''तुम जूता उतार दो,'' विवान रुक गया, ''अभी नदी नहीं है। हो सकता है तुम्हें नदी की बालू में या फिर कीचड़ में भी ज़रूरत न पड़े।''

''यही ठीक है।'' मुशी सड़क पर बैठ गया। उसने जूते के फीते खोले। जूते उतारे। जूते झोले में रख लिये फिर उठ गया।

''यह ठीक रहेगा।''

विवान फिर चलने लगा। मुंशी अब उसके साथ चल रहा था।

''हमें कभी पता नहीं चलता और कितना कुछ हमारे साथ होता रहता है, जैसे कि यही उँगलीवाली बात। हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है।'' मुंशी बड़बड़ा रहा था। विवान कुछ नहीं बोला।

''मुझे लौटने में सुबह हो जाएगी। उसने कहा था कील लेकर सीधे आना। कहीं रुकना मत। मैं नदी से सीधे उसके पास चला जाऊँगा। आप घर लौट जाइएगा।''

''नाव नहीं मिली या नाव में कील नहीं मिली तो?'' विवान ने पूछा।

''तो?'' मुंशी चुप हो गया। कुछ देर बाद धीरे-से बोला, ''पता नहीं, मैंने यह सोचा ही नहीं। मैंने तो सोचा था कि आप हैं तो कील मिल ही जाएगी। आपको सब पता होगा।''

''मुझे नहीं, मुकुन्दी को नदी के बारे में सब पता है। वह उसमें रहता था। मैंने उससे कहा था कि हमारे साथ चले पर वह नदी के सूखने से डर गया था। फिर भी, उसने बताया है कि जहाँ अभी पानी है, वहाँ नावें हैं, कील हैं।''

''उसने कहा है तो होगी, वहीं होगी। वह सबसे बड़ा गोताखोर था। नदी को उससे ज़्यादा कोई नहीं जानता।''

छोटी सड़क अब चौड़ी सड़क में मिल गयी थी। पुराना शहर एक झटके से पीछे छूट गया था। इस सड़क पर नयी इमारतें थीं। इन इमारतों ने बहुत तेज़ी के साथ सदरलैंड हाउस, पुराना बूचड़खाना, पुराना टाकीज़, होटल डी कश्मीर, नूर मंज़िल, सबको निगल लिया था। इन निगली हुई इमारतों में बहुत-से फायर प्लेस, आर्च, गोथिक शैली के खम्भे, दुछत्तियाँ, गोलम्बर, मुँडेरें और कँगूरे थे। इन नयी इमारतों की रोशनियाँ भी निगली हुई इमारतों से अलग थीं। वे दयनीय या मरती हुई या

जलती-बुझती हुई अँधेरे के बीच उसे पार करने की कोशिशों वाली नहीं थी। वे एक चीख़ की तरह सीधे ऊपर तनती थीं और अँधेरे को पूरी तरह चीर देती थीं।

इस सड़क के एक मोड़ से नदी जानेवाली सड़क जुड़ती थी। दोनों इसपर मुड़ गये। इस सड़क पर भीड़ थी। सड़क के एक ओर बनी चौड़ी, खुली नाली के पत्थरों पर रखे मिट्टी के चूल्हों पर रोटियाँ सिंक रही थीं। एल्युमिनियम के बर्तनों में खाना उन्हीं पत्थरों पर रखा था। रिक्शेवाले, मज़दूर, बेघर, लावारिस, नालियों के ऊपर बैठकर मच्छरों, बदबू और कूड़े के ढेर के बीच, कपड़ों की, टीन या पुरानी दफ़्तियों की बनी छत के नीचे झुंड में उकड़ूँ बैठकर खा रहे थे। वे चुप थे, काले कपड़ों में थे। उनकी आँखें, मुँह से निकली हुई लार के साथ सने भोजन के स्वाद और आनन्द में डूबी थीं। वे बहुत धीरे-धीरे खाना चबा रहे थे। जितनी देर वह टुकड़ा उनके मुँह में था, उनका सुख भी उनके मुँह में था।

''ये दुकानें बहुत बढ़ गयी हैं।'' मुंशी बोला, ''इतनी रात तक भी खुली हैं। पहले इतनी दुकानें नहीं थीं।''

''खानेवाले बढ़े होंगे तभी दुकानें बढ़ी हैं।'' विवान बुदबुदाया, ''ये सब वे ही हैं जिनके पास खाना खाने के लिए कोई घर नहीं है।''

''ये खानेवाले बढ़ते जाएँगे। ये दुकानें बढ़ती जाएँगी, पर जब बहुत बढ़ जाएँगे तो कहाँ जाएँगे? आगे तो नदी है फिर'', मुंशी अचानक चुप हुआ। कुछ देर बाद बहुत डरी हुई आवाज़ में बोला, ''घर नहीं है तो ये मरते भी सड़क पर होंगे, लावारिस। ये बढ़ते जा रहे हैं। क्या हमें इनकी मय्यतें भी उठानी पड़ेंगी? क्या हमारा काम बहुत बढ़नेवाला है? पर हमारे पास तो इतना पैसा भी नहीं है। हमें जल्दी ही कुछ करना होगा। मैं सुबह लौटकर लड़की की उँगली में अँगूठी पहनाकर आपके पास आऊँगा। मज़मून लेकर निकल जाऊँगा। बकरों की क़ुर्बानी शुरू होने से पहले ही हम उनपर अपना हक़ बना लेंगे। उन्हें बताएँगे कि ये लावारिस लाशें बढ़नेवाली हैं। हमने उन्हें देखा है। अभी वे ज़िन्दा हैं, खा रहे हैं पर हम जानते हैं कि उनके पास कोई घर नहीं है। वे सब सड़क पर मरेंगे। हमें ही उन्हें, उनकी ज़िन्दगी के आख़िरी छोर तक पहुँचाना होगा।''

डर, आशंकाओं और दुस्वप्नों से डरा हुआ मुंशी फिर लँगड़ाने लगा था। वह भूल गया था कि उसने जूता झोले में रख दिया है। विवान कुछ नहीं बोला।

नदी की गन्ध आने लगी थी। वे दोनों जहाँ तक आ गये थे वहाँ तक चूल्हे की मिट्टी, गोबर के कंडे, बासी अनाज,पसीने, मसाले और दवा के मरहम की गन्ध उन्हें छोड़ने आयी थी। अब वह सब पीछे छूट गया था। आगे नदी थी। घाट की सीढ़ियों तक जाकर सड़क ख़त्म हो गयी। सीढ़ियाँ नीचे उतरकर गन्दी कीचड़ में चली गयी थीं। चाँद की रोशनी में सीढ़ियों के किनारे बने छोटे-छोटे मन्दिर,

उसके अन्दर के रंग-बिरंगे छोटे-छोटे ईश्वर, दरवाज़ों पर लेटे भिखारी चमक रहे थे।

''चाँद भी चोर का शत्रु है, जैसे खाँसी।'' विवान ने मुंशी से कहा। मुंशी कुछ नहीं बोला। नदी अभी दूर थी पर मुंशी एकदम से चौकन्ना हो गया था। वह लँगड़ाना भूल गया था।

''जूते पहन लूँ?'' फुसफुसाकर उसने विवान से पूछा।

''हाँ, ठीक रहेगा।''

पहली सीढ़ी पर मुंशी बैठ गया। झोले से उसने जूते निकाल लिये। पैरों को जूतों में डालकर फीते कसे फिर खड़ा हो गया।

नीचे कीचड़ थी, फिर बालू थी, फिर एक पतली धारा थी। इस धारा में कोई नाव नहीं थी। उस धारा के पार फिर बालू थी, फिर बड़ी धारा थी। उस पानी में दो नावें खड़ी थीं। धारा से पहले वाली बालू पर तीन नावें उलटी पड़ी थीं। उनकी पेंदी में तारकोल लगा था। उनकी मरम्मत हुई थी। पहली धारा को पार करके दूसरी धारा तक जाने के लिए बाँसों का पतला पुल बना था।

दोनों सीढ़ियाँ उतरे। विवान आगे था। मुंशी पीछे था। आख़िरी सीढ़ी ख़त्म होने के बाद कुछ दूरी पर पत्थर के टुकड़े पड़े थे। उन पर पाँव रखकर जाने से कीचड़ से बच सकते थे।

''आओ...। उधर से।'' विवान ने उन पत्थरों की ओर इशारा किया। मुंशी चुपचाप विवान के पीछे चल दिया। विवान ने पहले पत्थर पर पैर रखा। पत्थर थोड़ा-सा हिला। विवान दूसरे पत्थर पर चला गया। जहाँ विवान ने पाँव रखा था, उसी जगह मुंशी ने पाँव रखा। धीरे-धीरे उन पत्थरों पर पाँव रखकर वे कीचड़ से पार हो गये। कीचड़ के बाद बालू थी। बालू पर खड़े होकर विवान ने जूते देखे। वे थोड़ा-सा भीग गये थे। विवान ने वापस घूमकर उन सीढ़ियों को देखा जिनसे वे उतरे थे। वे ऊपर उठती चली गयी थीं। उनके ऊपर टीन की छतें थीं जिनके अन्दर पंडों की गद्दियाँ थीं। टीन पर बन्दर ऊँघ रहे थे।

''क्या यही वह समय है?'' मुंशी विवान के कान में फुसफुसाया।

''कौन-सा?''

''वही, जब नयी दुल्हन से चिपककर उसके गहने उतारे जा सकते हैं?''

''पता नहीं...पर आधी रात हो गयी है, चलो।'' विवान फिर घूम गया। दोनों बालू पर पाँव जमाते हुए आगे बढ़ गये।

बालू के बीच-बीच में खेती थी। ककड़ी, खीरा, खरबूजों के पौधे थे। उसके पत्ते, बेलें फैली थीं। झाड़ियों की एक दीवार बनी थी। बालू पर कुछ झोंपड़ियाँ थीं। सफ़ेद बालियोंवाली ऊँची घास थी। वहाँ एक कुत्ता था। उनकी आहट से वह सर

उठाकर गुर्राया, फिर भौंका। झोंपड़ी में किसी ने करवट बदली और नींद में डूबी आवाज़ में चिल्लाया।

''कौन है?''

''पार जा रहे हैं।'' विवान ने जवाब दिया।

वह फिर सो गया। कुत्ता भी चुप हो गया। आगे बाँस का पुल था, फिर बालू थी फिर दूसरी बड़ी धारा थी। पुल पार करके, बालू पार करके वे धारा पर आ गये। किनारे की उलटी पड़ी नावों के पेंदें की कीलें दिख रही थीं।

''ये नहीं लेनी हैं'', मुंशी विवान के कान में फुसफुसाया, ''ये पानी में डूबी नहीं हैं।''

धारा में दो नावें थीं। विवान ने एक बार चारों ओर देखा फिर धारा में उतर गया। विवान के पाँवों के नीचे बालू खिसकी। कन्धे पर झोला लटकाए मुंशी उसके पीछे-पीछे उतरा। वह विवान के साथ आ गया। अगले क़दम में विवान लड़खड़ाया। उसने मुंशी के कन्धे पर हाथ रखा। दोनों धीरे-धीरे नाव तक पहुँच गये। नाव के दूसरी तरफ, पानी में खड़े होने पर वे बालू की तरफ़ से नहीं दिखते थे। पानी उनके घुटनों तक आ गया था। विवान ने झुककर नाव की तली में हाथ फेरा। कुछ ही देर में उसकी उँगलियाँ कील से टकरायीं।

''लाओ।'' विवान ने प्लास माँगा। मुंशी ने झोला नाव पर रखकर उलट दिया। झोले में प्लास, रस्सी का गोला, पैसे, फिर एक चौड़े मुँह की बन्द बोतल निकली। विवान ने प्लास उठा लिया। पानी में डूबी कील ज़ंग खाकर पटरे से चिपक गयी थी। विवान ने कील के माथे को हल्का-सा उठाया फिर प्लास से कील उखाड़ ली। प्लास में ही दबाए हुए उसने मुंशी की तरफ़ कील बढ़ायी।

''रुकिए।'' मुंशी ने झोले के निकले हुए सामान से वह बोतल उठायी। उसका ढक्कन खोला। उसके अन्दर एक छोटा-सा ताबीज़, एक सिक्का, कुछ चावल और लोहे का छोटा-सा सिन्दूर लगा बेढंगा टुकड़ा था। मुंशी ने विवान को इशारा किया। विवान ने प्लास की कील बोतल के अन्दर छोड़ दी। मुंशी ने ढक्कन बन्द कर दिया।

''और?'' विवान ने पूछा।

''नहीं, उसने मना किया था इसके लिए। इससे अँगूठी बन जाएगी न?'' मुंशी ने कील की मोटाई लम्बाई देखी।

''चलो।'' विवान ने प्लास उसे वापस दे दिया। मुंशी ने सब सामान वापस झोले में डालकर उसे कन्धे पर लटका लिया।

दोनों उसी तरह, घुटने-घुटने पानी में होते हुए बालू पर वापस आ गये। बालू ने बाँस के पुल पर, पुल से फिर बालू पर, फिर कीचड़ पर रखे पत्थरों से होते हुए,

सीढियाँ चढ़कर सड़क पर आ गये।

''मैं यहाँ से अलग हो जाऊँगा। आपसे बाद में मिलूँगा।'' मुंशी ने कहा और तेज़ी से आगे निकल गया।

विवान लौटकर उसी चबूतरे पर आया जो उसे खिड़की से दिखता था। दूर बरगद के नीचे एक दूसरे बरगद की तरह एक आदमी बैठा था। उसके खुले हुए लम्बे बाल, कन्धों के नीचे चले गये थे। लम्बी दाढ़ी थी। बालों के बीच उसका चेहरा अलक्षित था। अँधेरे में झूलती बरगद की जटाओं के अन्दर के अँधेरे में, ईंटों के बीच दहकते हुए कुछ अंगारे दिखायी दे रहे थे। उन अंगारों की रोशनी थी, लपट थी, आँच थी। उन सबका एक वृत्त बना हुआ था। उसके बाद अँधेरा था जो दूर होता हुआ गाढ़ा हो गया था। रोशनी के उस वृत्त के अन्दर एक कुत्ता पंजों में सर घुसेड़े दुबका था। उसकी खाल के रोएँ उड़ चुके थे। रोशनी के उस वृत्त में ही वह आदमी भी था। उसका कला रंग, काला लबादा, काले बाल थे। उस गर्म रोशनी के सुख में वे दोनों एक-दूसरे को गीली आँखों से देख रहे थे। विवान ने उन्हें कुछ देर देखा फिर चलता हुआ हैनीमैन की मूर्ति तक आया। हैनीमैन की मूर्ति के ऊपर का बल्ब जल रहा था। विवान ने कुछ क्षण उसे देखा फिर हैनीमैन की मूर्ति के पत्थर से सर टिकाकर सो गया।

तेज़ कोलाहल से विवान डगलस की आँख खुली। सामने अँधेरे में देखा उसने। जेल की ऊँची दीवार के साथ-साथ एक जुलूस गुज़र रहा था। गहरे अँधेरे में। उसके ऊपर जेल के कँगूरे से फेंकी जानेवाली रोशनी का वृत्त था। वे सब उस रोशनी के नीचे, उसके छूटे हुए उजाले में चमक रहे थे। वे सब चुपचाप, सर झुकाए, धीरे-धीरे चल रहे थे। उनके दोनों हाथ पीठ की तरफ़ थे। उनकी गर्दनें टूटी हुई लग रही थीं। गहरे काले कपड़ों में ढके, वे कुछ बुदबुदा रहे थे। विवान देख रहा था। सर झुकाए, मोटे काले लबादों में लिपटे,पीली रोशनी के वृत्तों में घिरे वे अनन्त जीवन विवान डगलस के सामने से गुज़र रहे थे। ग्रीक नाटकों के कोरस की तरह, काँपते हाथों से, आगे वाले के लबादे के सिरे पकड़े हुए, वे इतिहस की गहनतम, अन्तहीन गुफाओं से निकलते चले आ रहे थे। धीरे-धीरे अपनी प्रार्थनाएँ, अपने शाप बुदबुदाते हुए। अपने पाँवों के साथ लिथड़ती, अतृप्त लालसाएँ, पंखनुचे स्वप्न और सूखकर काली पड़ चुकी आकांक्षाएँ लिये। भोर से पहले के आख़िरी अँधेरे की, आख़िरी, काँपती शहतीर में विवान डगलस सबको देख रहा था। विवान डगलस उन सबको पहचानता था। वे सब विवान की स्मृतियों में थे, जीवन में थे, उसके साथ छुट्टी के दिन में थे।

हर जीवन एक महागाथा है, एक द्युमान लोक है,एक परम सत्य है। ये जीवन ही पतझर की पत्तियों की तरह चारों ओर बिखरे हैं। नदी की तरह प्रवाहमान हैं। इनका अस्तित्व ही दिशाओं का आधार है। इनकी व्याप्ति ही अन्तरिक्ष है। इनकी गति ही अहर्निश है। इनकी निरन्तरता ही महाकाल है। यही जीवन ऋतु हैं, ब्रह्म हैं, चराचर का आधार हैं।

विवान डगलस ने सर उठाकर देखा। आसमान के कोने से सुबह की पहली किरन फूटनेवाली थी। छुट्टी का दिन बीत चुका था। नया दिन शुरू हो गया था। विवान डगलस उठा और जुलूस के पीछे-पीछे चलता हुआ उनके कोरस में शामिल हो गया।

●●●

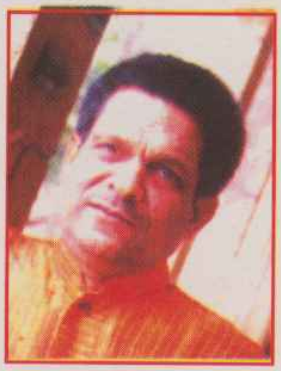

प्रियंवद

जन्म : 22 दिसम्बर, 1952, कानपुर (उ.प्र.)।

शिक्षा : एम. ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति)।

प्रकाशित पुस्तकें : 'परछाईं नाच', 'वे वहाँ कैद हैं' (उपन्यास); 'एक अपवित्र पेड़', 'खरगोश', 'फाल्गुन की एक उपकथा' (कहानी-संग्रह), 'भारत विभाजन की अन्त:कथा' (अध्ययन)।

सम्पर्क : 15/269, सिविल लाइन्स,
कानपुर-208001
मो. 09839215236

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003

संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन